सामाजिक मूल्यों का स्वरूप अश्क के उपन्यासों में

SAMAJIK MOOLYOM KA SWAROOP ASK KE UPNYASOM MEIN

Thesis submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the degree of
Doctor of Philosophy

By
TRESA MINI VARGHESE

Head of the Department
Prof. (Dr.) P. V. VIJAYAN

Supervising Teacher
Prof. (Dr.) S. SHAJAHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1993

C E R T I F I C A T E

This is to certify that this **THESIS** is a bonafide record of work carried out by **TRESA MINI VARGHESE** under my supervision for Ph.D and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

Prof(Dr.) S.SHAJAHAN
(Supervising Teacher)

Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi-682 022

Dated: 30th December 1993.

DECLARATION

I declare that the present thesis entitled **"Samajik Moolyom Ka Swaroop Ask Ke Upanyasom Mein"** is a record of bonafide research carried out by me under the supervision of Prof.(Dr) S.Shajahan Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology. I further declare that no part of this work has hitherto been submitted for a Degree in any University.

Kochi-682022 **TRESA MINI VARGHESE**

30.12.1993

प्राक्कथन

"सामाजिक मूल्यों का स्वरूप अश्क के उपन्यासों में" शीर्षक इस शोध प्रबन्ध में उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यासों में उभरनेवाले सामाजिक मूल्यों का अध्ययन करने का प्रयास मैं ने किया है । अश्क जी के आज तक प्रकाशित नौ उपन्यासों के अध्ययन को इस शोध प्रबन्ध में शामिल किया गया है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क प्रेमचन्द युग के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं । आलोचक उन्हें व्यक्तिवादी उपन्यासकार मानते हैं लेकिन उनका व्यक्तिवाद सामाजिक चेतना के स्वरूप को नकारता नहीं है । इसलिए अश्क की रचना प्रक्रिया व्यक्तिवादी होते हुए भी सामाजिक चेतना की पोषक शक्ति बन जाती है । निम्न-मध्यवर्ग का सूक्ष्म निरीक्षण एवं जीवनानुभव दोनों को उन्होंने अपने उपन्यासों में उचित स्थान दिया है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विभाजन चार अध्यायों में हुआ है ।

पहला अध्याय है "सामाजिक मूल्य - अवधारणा एवं विश्लेषण" इस अध्याय में सामाजिक मूल्य की व्याख्या एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । देशकाल एवं संदर्भों के अनुसार सामाजिक मूल्यों में आये - बदलाव, वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन में सामाजिक मूल्यों का महत्व, पुराने मूल्यों का नये मूल्यों में परिवर्तन, परंपरा के साथ सामाजिक मूल्यों का संबन्ध आदि पर भी विचार विश्लेषण किया गया है । मूल्य के प्रति मानव की आस्था और अनास्था की स्थितियाँ, भारतीय समाज में आये हुए मूल्य परिवर्तन, मूल्य सापेक्षिकता और रचना दायित्व आदि बातों पर भी प्रकाश डाला गया है ।

इस शोध प्रबन्ध का दूसरा अध्याय आकार में बड़ा बन गया है । इस अध्याय का शीर्षक है "अश्क की रचना धर्मिता" । प्रस्तुत अध्याय को

हमने दो भागों में विभक्त किया है । प्रथम भाग में अश्क के उपन्यासों के कथ्य, पात्र एवं उनकी मानसिकता का अध्ययन हमने प्रस्तुत किया है । दूसरे भाग में उपन्यासों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है । अश्क के उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताओं और भाषा शैली पर भी इस भाग में विस्तृत विवेचन किया गया है ।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है "अश्क के उपन्यास-सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में" । इस अध्याय में अश्क के उपन्यासों में चित्रित नैतिकता, स्त्री पुरुष संबन्धों में दिखाई पडनेवाले मूल्य संदर्भ और विघटन की स्थितियाँ, पारिवारिक संबन्धों की शिथिलता, उपन्यासों में अर्थ की प्रतिष्ठा, नारी के प्रति दृष्टिकोण, अश्क के उपन्यासों में चित्रित व्यक्ति, समाज एवं मान्यताएँ आदि पर हमने विचार विश्लेषण किया है । इसके आधार पर अश्क जी के उपन्यासों में उभरनेवाले सामाजिक मूल्यों के स्वरूप को निरूपित करने का प्रयास भी किया गया है। इस अध्याय में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार मूल्य परिवर्तन का स्वरूप अश्क जी के उपन्यासों में उभर रहा था ।

चौथा अध्याय है "मूल्य समाज और लेखकीय दृष्टि" । इस अध्याय में अश्कजी के उपन्यासों को आधार बनाकर तत्कालीन भारतीय सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालने की कोशिश हमने की है । अश्क की प्रतिबद्धता एवं लेखकीय दृष्टि आदि पर भी इसमें चर्चा हुई है । अश्क की रचना दृष्टि की सीमाएँ और संभावनाओं पर भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

उपसंहार में प्रस्तुत अध्ययन के परिणाम स्वरूप उभरनेवाले निष्कर्षों पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय, हिन्दी विभाग के प्रो. आदरणीय गुरुवर डा. एस. शाहजहाँ के निर्देशन में संपन्न हुआ है । इस शोध प्रबन्ध के अथ से इति तक मुझे उनसे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलते रहे । मुझे उनसे दिशा एवं दृष्टि मिली है । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ । विभाग के अध्यक्ष प्रो. डा. पी. वी. विजयन के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती तंपुरान के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ । इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति के लिए जिन गुरुजनों, बन्धुजनों और मित्रों से मुझे प्रेरणा एवं सहायता मिली है, उन सब के प्रति मैं आभारी हूँ ।

ट्रीसा भिनि वर्गीस

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय,
कोचिन - 682022.

तारीख: 30 दिसंबर, 1993.

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

अध्याय - 1 — 1 - 19

सामाजिक मूल्य-अवधारणा और विश्लेषण

मूल्य - मूल्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में-सामाजिक मूल्यों का महत्व - व्यक्ति और मूल्य - परंपरा और मूल्य - मूल्य - आस्था और अनास्था की स्थितियाँ - मूल्य परिवर्तन भारतीय समाज में - मूल्य सापेक्षिकता और रचनादायित्व

अध्याय - 2

अश्क की रचनाधर्मिता

भाग-1 — 20 - 41

अश्क के उपन्यासों का कथ्य और पात्रों की मानसिकता - सितारों के खेल - गिरती दीवारें - गर्मराख - बडी बडी आँखें - पत्थर अल पत्थर - शहर में घूमता आईना - एक नन्हीं किन्दील - बाँधो न नाव इस ठाँव - निमिषा

भाग - 11 — 142 - 213

अश्क के उपन्यासों का परिवेश - सामाजिक - राजनीतिक - आर्थिक - रूढि, परंपरा और संस्कृति - अश्क के उपन्यासों के शिल्प तथा अश्क की भाषा शैली

अध्याय - 3 180 - 213

अश्क के उपन्यास - सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में; -

उपन्यासों में नैतिकता - स्त्री पुरुष संबन्ध-मूल्य संदर्भ और विघटन की स्थितियाँ - परिवार और संबन्धों की शिथिलता - अर्थ की प्रतिष्ठा - नारी के प्रति दृष्टिकोण-व्यक्ति समाज और मान्यताएँ

अध्याय - 4 214 - 227

मूल्य, समाज, और लेखकीय दृष्टि

समसामयिक भारतीय समाज अश्क जी के उपन्यासों के संदर्भ में - अश्क के उपन्यासों में परिवर्तन की सूचनाएँ - अश्क की प्रतिबद्धता एवं लेखकीय दृष्टि - अश्क की रचना दृष्टि - सीमाएँ और संभावनाएँ

उपसंहार 228 - 230

अध्याय - 1

सामाजिक मूल्य - अवधारणा और स्वरूप

मूल्य

"मूल्य" शब्द संस्कृत की "मूल्" धातु में "यत्" प्रत्यय लगाने से बनता है जिसका अर्थ है कीमत या मजदूरी । वस्तुतः मूल्य अंग्रेजी के value शब्द का पर्याय माना जाता है । value शब्द लैटिन भाषा के valere से बना है जिसका अर्थ "अच्छा" या "सुन्दर" है । इसलिए मूल्य की परिभाषा यह बनती है कि "जो कुछ भी इच्छित है वह मूल्य है ।" मूलतः मूल्य अर्थशास्त्र का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है विनिमय क्षमता । आधुनिक युग में मूल्य शब्द केवल अर्थशास्त्र तक सीमित नहीं है । वह दर्शन, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र आदि का भी विषय बनता है ।

भारत में मूल्य संबन्धी समस्त चिन्तन पुरुषार्थ के अन्तर्गत ही हुआ है ।* संस्कृत साहित्य में प्रारंभ में ही पुरुषार्थ को जीवनादर्श माना गया था । इस संदर्भ में जीवनादर्शों का समन्वित रूप ही दृष्टिगोचर होता है । परंपरागत विश्वास के अनुसार मूल्य शब्द के अन्तर्गत ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी के सम्मिलित रूप से उत्पन्न चरम लक्ष्य का भाव विद्यमान है ।

जो पदार्थ जीवन के उपयोगी उपादानों को उपलब्ध कराने में जितना सक्षम है उतना ही उसका मूल्य है । प्रत्येक समाज में व्यवहार से संबन्धित कतिपय मान्यताएँ होती है वही मूल्य के आधार है । मूल्यों का सामाजिक सन्दर्भो से विशिष्ट संबन्ध होता है । समाज और सभ्यता के विकास

---

* स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में मानवमूल्य और उपलब्धियाँ -डा. भगीरथ बडोले, पृ. 31.

में मूल्य बहुत ही श्रेष्ठ भूमिका अदा करते हैं यद्यपि स्वयं मूल्य समाज की ही आवश्यकताओं के अनुसार रूपायित होते हैं । वस्तुतः "मूल्य समाज के वे आधार स्तंभ है जिन पर समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का भव्य भवन आधारित होता रहता है ।"[1] रामधारी सिंह के अनुसार " मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही है, जिनकी उपेक्षा करनेवालों को परंपरा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है ।"[2]

मूल्यों की उत्पत्ति और गठन सहसा नहीं होती है । इसके पीछे कोई दैवी प्रवृत्ति भी नहीं है । मानव का विकास इस समाज में ही होता है । इसलिए मूल्यों का आविर्भाव भी इस समाज के साथ होता है । जितना समाज प्राचीन होगा, उतने ही मूल्य भी पुराने होंगे । "मानव जीवन की विभिन्न स्थितियाँ, संघर्ष एवं अनुभव ही मूल्यों का जन्मदाता है ।"[3] किसी भी समाज में मूल्यों का निर्माण परंपराओं द्वारा होता है । वह किसी एक व्यक्ति के मूल्य नहीं होते हैं । वह तो संपूर्ण सदस्यों के मूल्य होते हैं ।

मूल्य -- सामाजिक परिप्रेक्ष्य में

सामाजिक मूल्यों का आशय व्यक्ति की सामाजिकता का उन्नयन करने वाली जीवन दृष्टियों से होता है । समाज में अपने सदस्यों के आचरण के लिए कुछ "प्रतिमान" या "धारणाएँ" बनायी गयी है । इन

---

1. स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य-डॉ. रामगोपाल दिनेश, पृ. 54
2. साहित्यमुखी - दिनकर, पृ. 56
3. छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डा. अरुणा गुप्ता, पृ. 14

प्रतिमानों का, सब मूल्यों का स्रोत मानव विवेक ही है । समाज चाहता है कि इन प्रतिमानों के अनुसार व्यक्ति आचरण करें । "सामाजिक मूल्य एक मानदण्ड होते हैं जो समाज के प्राणियों की इच्छाओं, संवेदनाओं, आवश्यकताओं व अभिरुचियों को प्रभावित करते हैं ।"[4] एक ही समाज द्वारा अपने विभिन्न स्तर के सदस्यों के लिए अलग अलग कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है और कर्तव्यों का पालन के लिए विविध आचरणों को भी अपनाया जाता है । आचरणों का स्वभाव मूल्य निर्धारण में विशेष भूमिका अदा करता है ।

जीवन के पारिवारिक, सामूहिक, नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी पक्षों से संबन्धित आचरणों के प्रतिमान समाज बनाता है और ये प्रतिमान मानव के आचरण को निर्देशित, नियंत्रित एवं मूल्यांकित करते हैं । इस प्रकार हर समाज में आचरण से संबन्धित कुछ नियमों का जन्म होने लगता है । देश भक्ति, बडों का आदर, सतीत्व, परोपकार, त्याग, सद्व्यवहार आदि इन आचरणों में से कुछ है । इस व्यवस्था के अनुसार समाज में कुछ आचरणों का निषेध किया जाता है । झूठ बोलना, व्यभिचार, चोरी, हत्या, शोषण, दायित्व-हीनता, कायरता आदि पर आधारित व्यवहार निषेध की सीमा में आता है । इस प्रकार "सामाजिक-मूल्यों से अभिप्राय मनुष्य की सामूहिकता, जातीय सुरक्षा, सहानुभूति तथा सन्तानोत्पत्ति आदि मूल्य प्रवृत्तियों की तुष्टि से संबन्धित उन प्रतिमानों से हैं जो मनुष्य की सामाजिकता के उत्थान हेतु आवश्यक होते हैं ।"[5]

---

4. साठोत्तर हिन्दी कहानी : मूल्यों की तलाश - डॉ. वसुदेव शर्मा - पृ. 17
5. हिन्दी उपन्यास और सामाजिक मूल्य - डॉ. मोहिनी शर्मा, पृ. 101.

सामाजिक मूल्य व्यक्ति की संवेदनाओं, अनुभूतियों, संकल्पनाओं, प्रतिमानों, आदर्शों, आचरणों तथा अभिरूचियों से संबंधित होते हैं । हरेक संस्कृति के अपने मूल्य होते हैं । ये मूल्य समाज के व्यवहारों को संचालित करते हैं । सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के कारण मूल्य विकसित होते रहते हैं ।

सामाजिक मूल्य देश, काल, वर्ग, आर्थिक-स्थिति इत्यादि के अनुसार बदलते रहते हैं । एक देश के लोग जब दूसरे देश में जा बसते हैं तो उनके सामाजिक मूल्य नये देश के सामाजिक मूल्यों से प्रभावित होते हैं । उदाहरण के लिए संयुक्त परिवार का जो महत्व भारत में है, वह पश्चिमी देशों में नहीं है । पुराने हिन्दु समाज में विवाह पवित्र, धार्मिक तथा आत्मिक संबंध के रूप में स्वीकार किया जाता था इसलिए यहाँ सति प्रथा का प्रचलन था । विवाह-परिच्छेद और विधवा विवाह निन्दनीय थे । आज भी भारतीय समाज में वैवाहिक संबंध का अपना महत्व है । लेकिन इसके विपरीत अमेरिका में विवाह की धारणा में भिन्नता है । वहाँ विवाह परिच्छेद एवं विधवा विवाह निन्दनीय नहीं है । उसी प्रकार यौन शुद्धता पश्चिमी देशों में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं लेकिन पश्चिमी प्रभावों के बावजूद आज भी हमारे यहाँ यौन शुद्धता एक महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्य है । इसी प्रकार कहीं प्रतिव्रत धर्म की महिमा है तो कहीं पत्नीव्रत, कहीं एक पत्नीत्व की, कहीं बहुपत्नीत्व की और कहीं केवल क्षणिक स्त्री-पुरूष संबंधों की ।

एक ही देश के विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं । उदाहरण के लिए राजस्थान और बंगाल भारत के ही दो विभिन्न

स्थान है । राजस्थान में पर्दा-प्रथा का प्रचलन है तो बंगाल में वह अशुभ माना जाता है । हमारे मूल्य कालानुसार भी बदलता है । एक ही देश और काल में रहने वाले विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न सामाजिक मूल्य होते हैं । सामाजिक मूल्य विभिन्न संदर्भों में भी विभिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं । सामान्य रूप में यह माना जाता है कि नरहत्या करना पाप है, लेकिन विशेष संदर्भों में इस अवधारणा में परिवर्तन आता है । उदाहरण के लिए रक्षा के लिए शत्रु पक्षों के लोगों की हत्या करना उचित माना जाता है । उसी प्रकार आत्मरक्षा के संदर्भ में और न्यायपालन की दृष्टि से नरहत्या भी माननीय हो जाता है ।

सामाजिक मूल्यों का महत्व

सामाजिक अन्तः प्रक्रिया की व्यवस्था को संघठित करने में मूल्य सहायक होते हैं । मूल्यों के आधार पर सभ्यता तथा संस्कृति का गठन होता है । मूल्य जनमानस की वह रीढ़ है जिसके सहारे समाज अस्तित्ववान होता है । मूल्यहीन समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास में मूल्य सहायक होते हैं । राष्ट्रीय स्तर पर भी मूल्यों का अपना महत्व है । प्रत्येक राष्ट्र अपने मूल्यों पर गौरवान्वित होता है । सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन का रक्षा कवच है । किसी समाज की संस्कृति का अध्ययन उस समाज में प्रचलित मानव-मूल्यों के आधार पर ही संभव है ।

सामाजिक मूल्य सामाजिक संबन्धों को बढ़ाते हैं, विकसित करते हैं, सुधारते हैं और विभेद के समय मानव को एक साथ बाँधते हैं । मूल्य सामाजिक भावनाओं से संबद्ध होते हैं । अतः एक व्यक्ति अपनी हित-कामना के अनुसार समाज की हितकामना के विरुद्ध न खड़ा हो सकता, इससे अलग होकर

जी नहीं सकता । यदि मानव व्यक्तिगत स्तर पर मूल्यों का उल्लंघन करता है तो समाज में अपराधवृत्ति पनपती है । सामूहिक हित के विपरीत व्यक्ति कार्य करता है तो वहीं "गैर मूल्य" की स्थिति उत्पन्न होती है । समाज की सुरक्षा, शान्ति एवं प्रगति के मार्ग पर ये गैर मूल्य बाधा बन जाते हैं और समाज में अराजकता की स्थिति उत्पन्न होती है । अतः एकदम किसी स्थापित मूल्यों के अतिक्रमण सहज भाव से हम नहीं कर सकते । उदाहरण के लिए उत्तर भारत में हिन्दुओं में सगोत्र विवाह की प्रथा नहीं हैं । यदि कोई व्यक्ति इसका अतिक्रमण करता है तो बिरादरी से उसे निकाल दिया जाता है । इस प्रकार व्यक्ति समाज स्वीकृत मूल्यों को अपनाने के लिए बाध्य हो जाता है । मूल्य में निहित समाज कल्याण की भावना के कारण आम जनता इसे स्वीकार कर लेती है । इस सामूहिक स्वीकृति के कारण समाज के व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों का पालन करना पडता है ।

व्यक्ति और मूल्य

सामाजिक व्यवस्था में ईकाईभूत व्यक्ति का योग महत्वपूर्ण है । व्यक्ति स्वयं को इस बृहद समाज का अंग मानता है और इस कारण ही समाज में मूल्यगत एकरूपता विद्यमान है । अपने को एक व्यवस्थित समाज के अंग मानकर वह संतोष का अनुभव करता है । स्वयं को सुरक्षित भी अनुभव करता है । व्यक्ति की अन्तः प्रक्रिया की व्यवस्था को संघठित करने में मूल्य सहायक है । मूल्यों से मानव किया-कलापों, सामाजिक अन्तःप्रक्रियाओं तथा व्यवहारों को नियामित किया जाता है । मूल्य वह मानदण्ड है जिससे व्यक्ति मर्यादित होता है । ऐसे ही व्यक्ति उच्चकोटि के व्यक्तित्ववाले होते हैं जिन में उच्चकोटि के मूल्य रूढमूल रहते हैं । यह प्रतीक्षा की जाती है कि व्यक्ति अपने आचरणों के माध्यम से मूल्यों

को शुद्ध बनाये और उनको परिमार्जित करें । इस प्रकार व्यक्तित्व और सामाजिक मूल्यों का घनिष्ठ संबन्ध है । मूल व्यक्ति का नियंत्रण ही नहीं करते हैं अपितु उसके व्यक्तित्व का संस्कार भी करते हैं । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार " सामाजिक मूल्य समाज को केन्द्र में रखकर चलते हैं । व्यक्ति की सत्ता उन्हें समाज की इकाई के रूप में ही स्वीकार्य है.- व्यष्टि का हित समष्टि के हित में ही निहित रहता है । इस दृष्टि से नैतिक मूल्यों के साथ सामाजिक मूल्यों का घनिष्ठ संबन्ध है । दोनों में व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के योगक्षेम की भावना ही प्रमुख रहती है ।"[6]

जिस तरह सामाजिक मूल्य व्यक्ति की सुरक्षा और प्रतिष्ठा के प्रहरी बने रहते हैं उसी प्रकार कभी कभी व्यक्ति भी सामाजिक मूल्यों की स्थिति में हेरफेर ला सकता है । महान व्यक्तित्व रखनेवाले युगद्रष्टा लोग सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं । अहिंसा के महत्व को कर्मक्षेत्र में प्रतिष्ठित करके गाँधीजी ने भारतीय सामाजिक मूल्यों की पंक्ति में अहिंसा को जोड दिया । शान्तिपूर्ण आन्दोलनों की सृष्टि, धरना देने की प्रवृत्ति असहयोग की भावना ऐसे तत्व है जो काँग्रेस की शुद्ध राजनैतिक दृष्टि के परिणामस्वरूप मूल्यवत्ता स्वीकार कर दिये । उसी तरह काँग्रेसी राज की स्थापना के परिणाम-स्वरूप रूपायित होनेवाली स्वार्थता ने राजनीति को भ्रष्टता से संपूर्ण करके दिया घूसखोरी और साम्प्रदायिकता जैसे मूल्यों को बढावा दिया । धीरे धीरे व्यक्तियों और दलों के द्वारा स्वीकृत मान्यतायें व्यावहारिकता के स्तर पर विजयी सिद्ध होकर मूल्य का रूप धारण करते हैं जिसको शुद्ध दृष्टि से लोग 'मूल्यच्युति' कहते हैं । इस प्रकार व्यक्ति या निश्चित व्यक्ति समूह कभी कभी सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित करने में या नयी अवधारणाओं को जोडने में सफल निकलते हैं । इस प्रकार सत्ता, प्रभुता और पाशविक शक्ति के बल पर समाज के किसी निश्चित जनसमुह के

---

6. साहित्य का समाज शास्त्र - डा. नगेन्द्र - पृ. 157

बीच उभरने वाले उस "जनसमूह के मूल्य" समूचे समाज के लिए कभी कभी हानिकारक सिद्ध होते हैं । इन को "सार्वजनीन मूल्य के रूप में" स्थान नहीं प्राप्त हो सकता । फिर भी उस निश्चित दल या समूह के लिए वे मूल्य ही बने रहते हैं । समूचे वातावरण को नकारात्मक स्थितियों से कलुषित करने में इस प्रकार का सीमित जन समूह का मूल्यपक्ष सहायक सिद्ध होता है ।

जनकल्याण में सहायक मानवतावादी दृष्टि को बढावा देनेवाले रूप इस तरह से रूपायित नहीं होती । स्वार्थ की पूर्ति और राजनैतिक लाभ की प्राप्ति को लक्षित करनेवाले दलों के, जुटों के, समूहों के "तथाकथित मूल्य" विघटन, अराजकता, अविश्वास और विध्वंस के साधन ही बन सकते हैं ।

परंपरा और मूल्य

मानव जीवन में मूल्यों का महत्व निर्विवाद है । मानव समाज स्वयं मूल्यों का संगठन एवं संकलन है । मूल्यों के सोपानों के सहारे ही मनुष्य अपनी इच्छाओं आकांक्षाओं एवं आदर्शों को प्राप्त करते हैं । मूल्य निराधार अथवा कपोल कल्पित नहीं होते हैं । किसी भी समाज में मूल्यों का निर्माण परंपराओं द्वारा होता है और मूल्य एक प्रकार से सांस्कृतिक स्थापना है और यह परंपरा का ही भाग है । उनकी जडें बहुत गहरी है । संक्षेप में "मूल्य ऐसे अतिरिक्त विधान है जिनका समाज में परंपरा से अनिवार्य पालन होता आया है । पारिवेशिक परिवर्तन में जब परंपरागत मूल्य सारहीन प्रतीत होते हैं तब उनके स्थान पर युगानुकूल नवीन मूल्यों की स्थापना होती है ।"[7]

---

7. स्वाधीनताकालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य - सं. डा. रामगोपाल शर्मा दिनेश - पृ. 54

समाज में मूल्य बनते मिटते आये हैं कभी कभी मूल्य व्यक्ति की आकांक्षाओं की पूर्ति में काल सापेक्षता की दृष्टि से सावधान घटा करते हैं और व्यक्ति को लगता है कि वह अनावश्यक रूप में मूल्यों के बंधन में जकडा गया है । ऐसे अवसर पर प्रचलित मूल्यों के प्रति संघर्ष करने के लिए वह तडपता है और परिणामस्वरूप मूल्य परिवर्तन की स्थितियाँ आती है ।

वैसे मूल्यों को पूर्ण रूप से परंपरा के साथ बाँधकर रखना विकास की यात्रा में रोडे अडकाना है । समय सापेक्षिकता के आधार पर समाज की यात्रा की सुगमता को ध्यान में रखते हुए सहायक तत्वों का निर्धारण करना आवश्यक होता है । ऐसी स्थिति में कभी कभी परंपरा दत्त विश्वासों को और प्रमाणों को अनदेखा करना भी पडता है । जनहित की दृष्टि से अप्रांसगिक मानदण्डों को तिरस्कृत करना ही पडता है । परंपरा और जनहित दोनों की तुलना करते समय समसामायिकता और जनहित के पक्ष में मूल्यों का पुनर्निर्धारण आवश्यक बन जाता है । इस तरह परंपरा और मूल्य एक दूसरे से जुडते हुए भी एक दूसरे से अलग होने के लिए बाध्य किये जाते हैं । परंपरा और मूल्यों के संबन्धों की विडंबना यहीं पर द्रष्टव्य होते ।

मूल्य-आस्था और अनास्था की स्थितियाँ

प्रत्येक समाज के सदस्य अपने अस्तित्व को समाज में बनाये रखने के लिए उस समाज में मूल्यों का पालन करते हुए जीवन बिताना चाहते हैं । लेकिन वे ऐसा करने में पूर्णतया समर्थ न हो सकते क्योंकि जीवन आज इतना जटिल बन गया है और आज मानव इतना विवश हो गया है कि उसे अपने जीवन में

किसी न किसी मात्रा में सामाजिक मूल्यों का कभी न कभी उल्लंघन करना पडता है । ऐसा करने के लिए उसकी विभिन्न स्थितियाँ उसे प्रेरित करती हैं । मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में समय के अनुसार परिवर्तन आते रहते हैं । जब से मानव यह सोचने लगा कि उसके लिए पुराने मूल्य उपयोगी नहीं है तब से उसे अनेक पुराने मूल्य अप्रासंगिक लगने लगे । एक दृष्टि से देखा जाय तो मूल्य उपयोगिता के आधार पर ही समाज में प्रतिष्ठित होने लगते हैं । जब उनकी प्रासंगिकता नष्ट हो जाती है तब से उनकी आस्था नष्ट हो जाती है । आस्था के नष्ट हो जाने पर मूल्य मृत हो जाते हैं । अनास्था की स्थिति मूल्य परिवर्तन की संभावना को उजागर करती है । मूल्य को लेकर आस्था और अनास्था के बीच होनेवाला संघर्ष काफी समय तक चलता रहता है और इस संघर्ष की वेला को हम मूल्य संक्रमण की स्थिति कहते हैं । जनमानस जब परंपरा द्वारा प्रदत्त मूल्य बोध को अस्वीकार करता है तब अनास्था संपूर्ण हो जाती है और पिछले युगों के मूल्य पीले पत्ते के समान गिर पडते हैं । आदर्शों का टूटकर बिखर जाना पुरानी मान्यताओं को नकारा देना और उन पर चलानेवालों का पराजित होना यह सिद्ध करता है कि समाज प्राचीन अवधारणाओं को मान्यता प्रदान करने के लिए तैयार नहीं है । जो लोग पुरानी पीढी के बने रहना चाहते हैं और पुरानेपन पर स्थिर रहना चाहते हैं वे रूढीवादी कहलाते हैं और रूढिवाद का जवाब हमेशा नये बोध से दिया जाता है । पुरानी और नयी पीढी का संघर्ष जब ज़ारी रखता है तब उनके बीच जन्म लेनेवाली वैचारिक आदान-प्रदान की शून्यता आस्था और अनास्था की स्थितियों को अधिक जटिल और संकीर्ण बना देती है । इसे पीढी-दर अन्तर हम कहते हैं जो असल में आस्था और अनास्था के बीच का टकराव ही है । संक्षेप में "आज हमारी परंपराएँ टूट रही है और नवीन आस्थायें जन्म ले रही है । युग के साथ जो चलने में समर्थ है, युगानुकूल अपने आपको बदलाने में जो सक्षम है

उनका ही अस्तित्व मान्य होता है ।"[8]

मूल्य परिवर्तन - भारतीय समाज में

प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक मूल्यों का आधार आध्यात्मिकता से जुटा हुआ है । लेकिन भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति ने मूल्यों में परिवर्तन की संभावना को अधिक प्रासंगिक बनाया है । आज लोगों के मन में ईश्वर के प्रति कोई आस्था नहीं है । विश्व के अन्य देशों के समान भारत में भी परंपरागत और नये मूल्यों का संघर्ष अत्यन्त प्रबलता से अनुभव किया जा रहा है । हमारे परंपरागत सामाजिक मूल्य टूट रहे हैं और नवीन आस्थाएँ जन्म ले रही है । युगगत परिस्थितियों के अनुरूप मूल्यों के प्रति हमारे दृष्टिकोण भी बदल रहे हैं । स्वतन्त्रता के बाद परंपरा से चली आनेवाले अनेक मूल्यों में परिवर्तन आया है । "स्वतन्त्र भारत के सामाजिक मूल्यों में, वैचारिक जगत में, दृष्टिकोण में, प्रतिमानों में स्पष्ट रूप से नवीनता झलकती है । परंपराओं के प्रति विद्रोह होता है । नवीनता का आकर्षण नवीन आस्थाओं को जन्म देता है ।"[9]

व्यक्ति समाज का न्यूनतम इकाई है । पहले हमारे यहाँ समाज सापेक्ष व्यक्ति चिन्तन की प्रधानता थी । पर आज स्थिति बदल गयी है व्यक्ति में अहं की भावना जागृत होने के कारण आज समाज निरपेक्ष व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की चेतना बहुत प्रबल है । पुरुष वर्ग में ही नहीं स्त्री वर्ग में भी व्यक्ति स्वातन्त्र्य की ओर यह झुकाव अधिक प्रबल हो रहा है । अब नारी

---

8. स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य में जीवन मूल्य - सं. डा. रामगोपाल शर्मा दिनेश - पृ. 53
9. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - हेमेन्द्र पानेरी, भूमिका पृ. 31।

पुरुष-सापेक्ष जीवन बिताना नहीं चाहती है वह अपना अलग अस्तित्व रखना चाहती है । आज की नारी घर के चार दीवारी की बंधिनी नहीं है । वह स्वतन्त्र है । कहीं चाहती है वह जाती है जो चाहे वह कर सकती है । पुरुष के समान वह भी काम करती है और पैसा कमाती है । उसने पुरुष को यह दिखा दिया है कि नारी उससे किसी भी स्तर पर कम नहीं है । इस प्रकार स्त्री स्वातन्त्र्य और नारी प्रतिष्ठा की भावना ने हमारे अनेक परंपरागत मूल्यों को परिवर्तित कर दिया है ।

अहं और अर्थ की भावना ने पारिवारिक मूल्यों को भी विघटित किया है । आज व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है कि उसके पारिवारिक संबन्धों में भी दरारें पड रहे हैं । आज परिवार के सदस्यों के बीच संबन्ध स्थापित करनेवाला तत्व "लहू" नहीं है, अर्थ है । पति और पत्नी के बीच का संबन्ध भी आर्थिक स्तर पर है । माँ-बाप बच्चों को जितना देने में समर्थ होते हैं बच्चे उन्हें उतना ज़्यादा प्यार करते हैं । बच्चे माँ-बाप से स्वतन्त्र होकर जीना चाहते हैं । सब अपने आप के लिए जीते हैं । आज घरों में वृद्धजन अनावश्यक मानते हैं उनके प्रति नयी पीढी के मन में स्नेह या आदर की भावना नहीं है । आज संयुक्त परिवार की भावना शिथिल हो गयी है और पाश्चात्य प्रभाव से आणविक परिवार इसका स्थान ले रहा है ।

वैवाहिक जीवन में भी अनेक मान्यताएँ बदल रही है । पुराने समय हमारे यहाँ पति-पत्नी संबन्ध सुदृढ था लेकिन आज पति-पत्नी संबन्ध मैत्री संबन्ध बन गया है । आज विवाह समझौता मात्र है । विवाह अब जन्मजन्मान्तरों का आत्मिक संबन्ध न होकर कुछ वर्ष के लिए स्त्री-पुरुष को एक साथ रहने का करार मात्र रह गया है । वैवाहिक जीवन में तलाक की स्वीकृति ने हमारे

परंपरागत गार्हस्थ्य जीवन संबन्धी मूल्यों पर आघात किया है । आज प्रेम-विवाह अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह आदि को भी स्वीकृति मिल गयी है । सतीत्व भारतीय स्त्री के लिए आज भी महत्वपूर्ण मूल्य होगा लेकिन उस मूल्य को भी आज एक नयी दृष्टि से देखा जा रहा है । "सामाजिक मूल्याग्रहों के कारण आज की स्त्री तन, मन, धन, आत्मा जीवन लोक-परलोक, आर्जित पुण्य इत्यादि सब कुछ अपने पति को समर्पित करने के लिए तैयार है । किन्तु अपनी बुद्धि नहीं । वह पति से स्वतन्त्र अपनी सोच रखना चाहती है ।"[10] आज हमारे युवा पीढी ऐसी एक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं कि बिना विवाह किये ही वे वैवाहिक जीवन की स्वच्छन्दताओं का उपभोग करें ।

आज कोई भी चीज़ सस्ती मिल सकती है तो वह है मानव जीवन । आज का मानव स्वार्थ की भावना से बुरी तरह जकडा हुआ है । अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए दूसरों के जीवन को बरबाद करने में उसे तनिक हिचक नहीं है । "अहिंसा" आज एक प्राचीन मूल्य बन पडा है । लोग नरहत्या को आज पाप नहीं समझते हैं । आज भ्रूणहत्या की संख्या भी बढ रही है । आबादी को रोकने के लिए सरकार द्वारा इसका वैधानिक स्वीकृति भी मिली है । आज लोग दयावध को स्वीकृति दिलाने की कोशिश में लगे हुए हैं ।

राजनैतिक मूल्यों में स्वार्थ की प्रवृत्ति एवं अवसरवादिता का ज़ोर है । आज राजनीति राष्ट्रहितों के बदले व्यक्ति हितों से जुडी हुई है । राजनीतिक नेताओं के मन में आज समाज कल्याण की भावना नहीं है । वे सब स्वार्थ की भावनाओं से ग्रस्त है । सब स्वयं के लिए अर्थ और अधिकार

---

10. साहित्य और सामाजिक मूल्य - डा. हरदयाल पृ. 20

पाने की कोशिश में लगे हुए है । विभिन्न राजनीति अपने अपने दल की विचारधारा को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए हीनवृत्तियों को अपनाते जा रहे हैं । वे जनता को दिग्भ्रमित कर रहे हैं । उन्हें धोखे दे रहे हैं । चुनावों पर भी संकुचित राष्ट्रीयता एवं सांप्रदायिकता का जोर है । आज भारत में जो अशान्ति व्याप्त है इसका मूल कारण यह मूल्य-च्युति की स्थिति है । मूल्यहीनता की यह स्थिति दिनों दिन खराब होती जा रही है ।

आज हमारे यहाँ दो नये ही मूल्य दृष्टिगत होते है, वे हैं अर्थ और सत्ता । आज हमारे सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों की गति अर्थ और सत्ता पर आधारित है । अर्थ और सत्ता की लालसा व्यक्ति को स्वार्थ बना देता है । अर्थ और सत्ता की प्राप्ति के लिए आज का मानव नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई की चिन्ता खोकर प्रवर्तमान होता है, अर्थ के प्रति मोह ने समाज में चार से अधिक वर्गों की सृष्टि की है और इन वर्गों के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है । जिसके पास अर्थ और सत्ता है उसकी ही विजय हमेशा होती है । यह संघर्ष सामाजिक व्यवस्था को अन्तर ही अन्तर खोखला बना देता है । आज रिश्वत् लेना, थोडी सी बेईमानी करना और ज़रा सा झूठ बोलना सब स्वीकार्य मूल्य बन गये हैं । "सत्य मेव जयते" जैसी सूक्तियाँ आज निरर्थक बनी पडी है । काम मिलने के लिए या पढाई में प्रवेश पाने के लिए आज रिश्वत देना सर्वमान्य बन गया है । पुराने समय में लोग रिश्वत गुप-चुप कर देते और लेते थे । आज खुल्लंखुल्ला रिश्वत का आदान प्रदान होता है ।

इस प्रकार भारतीय समाज में मूल्य परिवर्तन की प्रवृत्ति तीव्रगति से बढ रही है । लेकिन यह मूल्य परिवर्तन युग की एक आवश्यकता है ।

यदि पुराने मूल्य परिवर्तित नहीं होते तो मानवीय जीवन में गतिशीलता नहीं होता ।* लेकिन ऐसे मूल्य भी है जो काल निरपेक्ष मूल्य है । वे मूल्य परिवर्तित नहीं है । वे सदा के लिए अपने अस्तित्व बनाये रखेंगे । इस प्रकार सामाजिक मूल्यों में कई दृष्टियों से परिवर्तन दृष्टिगत होने लगता है । मूल्य परिवर्तन की स्थितियाँ परिवार तक सीमित न रहकर राजनीति, संस्कृति, धर्म और न्याय-पालिका के दायरों में भी प्रवेश कर गयी है । इसके परिणाम स्वरूप नयी पीढी परंपरागत मान्यताओं को नकारती हुई नई अवधारणाओं की खोज में निकल पडी है और इस यात्रा में प्राचीन मान्यताएँ पूर्ण रूप से तिरस्कृत होती गयी ।

मूल्य सापेक्षिता और रचना दायित्व

समाज और साहित्य का दोहरा संबन्ध है । समाज जैसा होगा वैसा ही उसका स्वरूप साहित्य में प्रतिबिंबित होगा । यदि समाज में मूल्यगत अराजकता है तो साहित्य में भी मूल्यगत अराजकता होगी । इसके विपरीत जब समाज में विकासोन्मुख और मानवतावादी मूल्य प्रतिष्ठित होते हैं तब साहित्य में उन्हीं का चित्रण भी होना अवश्यंभावी है । साहित्य समाज की प्रामाणिक जानकारी देने में सबसे आगे हैं । समाज से प्रेरणा पाकर साहित्यकार साहित्य सृजन करता है । इसलिए तत्कालीन सामाजिक मूल्यों का चित्रण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उसकी रचना में प्रतिबिंबित होता है । उदाहरण के लिए आधुनिक भारतीय समाज में नारी के प्रति जो दृष्टिकोण है इसका यथार्थ चित्रण समानान्तर हिन्दी साहित्य में देखा जा सकता है । यदि भारतेन्दु साहित्य में घर की चहार दीवारी में बन्द नारी का चित्रण मिलता है तो नारी के बदलते हुए रूप का चित्रण द्विवेदी युग, छायावादी युग और प्रगतिवादी युग के हिन्दी साहित्य में देखा जा सकता है । प्रयोगवादी युग

---

* साठोत्तर हिन्दी कहानी में मूल्यों की तलाश - डा. वसुदेव शर्मा, पृ. 16

तक आते आते नारी के इस रूप का चित्रण है जो बन्धनमयी नहीं है, किसी की दया का पात्र नहीं है और वह पुरुषों के बराबर खडी होने में सक्षम है ।

साहित्य समाज का स्वरूपांकन करता है और कभी कभी उस स्वरूप से स्वयं प्रभावित हो जाता है । साहित्य में निहित आलोचना के कारण ही साहित्य सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित करने में तथा नये नये मूल्यों के निर्माण में सहायक होता है ।

साहित्य रचना एक व्यक्ति द्वारा होती है । समाज एक अत्यन्त व्यापक इकाई है जिसमें रचनाकार जीता है । लेकिन समाज अनेक छोटे छोटे वर्गों में विभाजित है । रचनाकार इन्हीं वर्गों में से किसी एक वर्ग से संबद्ध होता है इसलिए हरेक साहित्यकार अपनी निजी धारणाएँ रखता है और वह अपने उस विशिष्ट वर्ग या परिवार से प्राप्त मूल्यों से प्रेरित रहता है । इसलिए हमेशा यह संभव नहीं है कि उसके द्वारा उभारने वाले मूल्य नैतिक हो या सर्वसम्मत प्रतीत हो । इसके उदाहरण के रूप में हम रामायण के मूल्य को ले सकते हैं । रामायण में राम का सीता परित्याग कुछ आलोचकों को मानवीय दृष्टि से अनुचित लगता है लेकिन आदर्शवादियों की दृष्टि में राम की इस प्रवृत्ति के पीछे मर्यादा पालन का मूल्य ही निहित है और ऐसे आदर्शवादियों की दृष्टि में राम लोकनायक है । इस प्रकार साहित्य में गृहीत मूल्य साहित्यकार के व्यक्तित्व के संस्पर्श से जन्म लेता है । इस दृष्टि से साहित्यकार को अपनी रचना का स्वरूप निर्धारण करने में पूरी आज़ादी है । लेकिन उसको अपने इस स्वातन्त्र्य का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए । उसकी यह स्वतन्त्रता उस पर एक दायित्व थोपती है । डॉ. ओम प्रकाश सारस्वत के शब्दों में " उसका दायित्व किसी

वर्ग, जाति अथवा राष्ट्र आदि एवं देश और कालगत स्थिर रूपों के प्रति न होकर संपूर्ण मानवता के प्रति है, जिसका निर्णय उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व ही कर सकता है ।"[11]

प्रत्येक युग के समाज के सदस्यों की मनोवृत्ति भिन्न भिन्न होती है । इन भिन्न भिन्न मनोवृत्तियों से उद्भूत मूल्यों के अनुरूप साहित्यकार को साहित्य सृजन करना पडता है । इसलिए साहित्यकार युगद्रष्टा ही नहीं युगसृष्टा भी है । लेखक हर समय समाज में चिर प्रतिष्ठित धर्म और समाज का अनुगमन नहीं करता है । वह मनुष्य के अतृप्तियों से परिचित है और तृप्ति के मार्ग की बाधाओं को वह जानता है इसलिए परंपरा के प्रति विद्रोह भी करता है । वह समाज के कुछ चिर प्रतिष्ठित मूल्यों की अवहेलना करता है । समाज की अस्वस्थ एवं पतनशील व्यवस्था पर उसके मन में आक्रोश की भावना उत्पन्न होती है और उसका मन उनको बदलने की कामना से अतृप्त रहता है और वह अपनी रचनाओं द्वारा अपनी यह भावना व्यक्त करता है । इस प्रकार लेखक एक क्रान्तिकारी के समान समाज में हलचल मचाता है । अनेक देशों का साहित्य इसका साक्षी है । फ्राँस की क्रान्ति में राजनैतिक नेताओं की भाँति साहित्यकारों का भी अपना महान योगदान रहा था । भारत में 1857 के विद्रोह के बहुत पहले ही हिन्दी के चारण कवि बंकीदास ने अंग्रेज़ी सत्ता के विरोध आवाज़ उठायी थी । लेकिन यह प्रवृत्ति आज के साहित्यकारों में कम दिखाई पडती है । आज के साहित्यकार किसी वर्ग या राजनीतिक दल का पक्ष लेकर साहित्य सृजन करता है । इस प्रकार साहित्यकार केवल युग का चित्रण ही नहीं करता अपितु उसे एक नवीन दिशा और गति देता है । समाज को अपने साहित्य

---

11. बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक - डा. ओम प्रकाश सारस्वत, पृ. 18
* साहित्य मूल्य और प्रयोग - डा. वैजनाथ सिंहल, पृ 11

द्वारा विशिष्ट मूल्यबोध प्रदान करता है । कामायनी, रामचरित मानस आदि सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ इसके प्रमाण है ।

साहित्यकार दो प्रकार के हैं । कुछ साहित्यकार आदर्शमूल्यों का पक्षपाती है तो कुछ यथार्थ का । सच्चा साहित्यकार वही है जो इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करके नये मूल्यों की स्थापना करता है । मध्यकाल में कबीर, तुलसी तथा अनेक साहित्यकारों ने इस समन्वय नीति को अपनाकर जनता को नये मूल्य प्रदान किया । वह समन्वयात्मक दृष्टि ही मानव को नयी दिशा प्रदान करती रही ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि रचनाकार समय सापेक्षिता के अनुकूल अपने दायित्व को निभाने के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है । सकारात्मक प्रवृत्तियों को बढावा देनेवाले लेखकों ने जीवन बोध के उज्ज्वल पक्ष को स्वीकारने का प्रयास किया है । परन्तु आधुनिक युग बोध की संकल्पना सकारात्मक भूमिका मात्र नहीं अदा करती है, नकारात्मक पक्ष को भी उभारकर रखती है क्योंकि आधुनिक रचनाकार अपने समाज के बोध को उसकी संपूर्णता से युक्त बनाकर प्रतिष्ठित करना चाहता है ।

जहाँ तक अश्क की उपन्यासों का सवाल है, इस समय सापेक्षित का दायित्व निभाने में वे एक सीमा तक सफल हुए हैं । उनके उपन्यास कहीं कहीं यथार्थ को अतिरंजित करके प्रस्तुत करते हैं तो कहीं कहीं मानव जीवन की निजी स्थितियों से अनुवाचक को परिचित भी कराते है । इस दृष्टि से युग चेतना का स्वरूपांकन हल्के-हल्के रंगों से युक्त होकर अश्क के उपन्यासों में

---

* हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डा. रमेशचन्द्र लवानिया, पृ. 28

प्रतिबिंबित होता है । समय सापेक्षिकता लेखकीय दायित्व को इस हद तक ले जाती है कि सत्य का चेहरा बहुत ही विकृत सा देखने लगता है । शोषण उत्पीडन, जीवन की असहायता आदि का जो रंग है वह इस तरह बहता है कि पाठक यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि आज़ादी के पूर्व की जनमानसिकता आज़ादी के बाद भी परिवर्तित नहीं हो पायी है । अश्क शायद समसामयिक जीवन स्पन्दनों को भले ही पकड नहीं पाये हैं फिर भी समय सापेक्षिकता की दृष्टि से उनकी रचना अप्रासंगिक नहीं है ।

अध्याय - ।।

अश्क की रचना-धर्मिता

भाग - ।

अश्क के उपन्यासों का कथ्य और पात्रों की मानसिकता

कथ्य

कथ्य के अन्दर इन सारे तथ्यों का समावेश हो जाता है जो कथानक, घटनाएँ, स्थितियाँ और परिवेश से जुडे रहते हैं । इस कारण कथ्य के अन्तर्गत कथावस्तु मात्र नहीं अपितु कथावस्तु को रूपायित करनेवाली, उसको विकसित करनेवाली और उसमें जीवन्तता लानेवाली सभी स्थितियों का अंकन होता है । सामाजिक और वैयक्तिक संघर्ष के स्वरूप को उचित वातावरण में प्रस्तुत कर लेखक अपनी रचना-धर्मिता को नये क्षितिजों तक ले जाते हैं और समूची कथ्यात्मकता में एक आन्तरिक सामंजस्य की स्थापना होती है ।

अश्क के उपन्यासों का कथ्य कई स्तरों से जुडता हुआ तत्कालीन जीवन की स्थितियों और गतियों की झलक प्रस्तुत करता है । अश्कजी अपने समूचे उपन्यासों में निम्न-मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय जीवन की विरोधात्मक और गत्यात्मक स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं । उन्होंने पात्रों के अन्दर जीवंतता को उभारने का प्रयास किया है । इस प्रयास में कल्पना की अतिरंजना, घटनाओं की ऊहात्मकता, विवरणों का स्थूलात्मक स्वरूप आदि का चित्रण करने के लिए अश्क बाध्य से हो गये हैं । वस्तुत: अश्क के उपन्यासों की कथ्यात्मकता घटना क्रम का रेखांकन मात्र नहीं है उसके पीछे जीर्ण-शीर्ण सामाजिक आचरणों, शोषण की अमानवीय स्थितियों, गरीबी, लाचारी, बेरोज़गारी आदि से पीडित युवावर्ग की मनोकांक्षाओं का भी प्रबल चित्रण मिलता है ।

प्रस्तुत अध्ययन में अश्कजी के नौ उपन्यास §1§ सितारों के खेल §2§ गिरती दीवारें §3§ गर्मराख §4§ बडी बडी आँखें §5§ पत्थर अल पत्थर

§6§ शहर में घूमता आईना §7§ एक नन्हीं किन्दील §8§ बाँधो न नाव इस ठाँव §भाग । और ।।§ एवं §9§ निमिषा पर विवेचन किया गया है ।

इन उपन्यासों की कथ्यात्मक विविधता रचना के परिप्रेक्ष्य को व्यापक बना देती है । यद्यपि एक ही पात्र के चारित्रिक विकास को चार उपन्यासों तक ले जाकर प्रयोग की दृष्टि से उपन्यासकार ने एक नयी शुरूआत की हैं फिर भी प्रभावात्मकता की दृष्टि से यह प्रयोग सफल रहा है या नहीं यह विवादास्पद है । उपन्यासों के कथ्य का अध्ययन अश्क की दृष्टि को और उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता को समझने में सहायक सिद्ध होता है ।

सितारों के खेल

सितारों के खेल अश्क का पहला उपन्यास है । जीवन में नियति के व्यापार एवं महत्व को समझाना ही इसका उद्देश्य है । व्यक्ति का शत्रु नियति है । नियति जो चाहती है वही व्यक्ति के जीवन में होता है । वही उसके जीवन को नियंत्रित एवं परिवर्तित करती है, जीवन को गति देती है । इस उपन्यास का मुख्य विषय प्रेम तथा विवाह की समस्या है ।

सितारों के खेल भारतीय मध्यवर्ग के जीवन से संबन्धित है । बंसीलाल, लता और जगत एक ही कालेज में पढते हैं । कालेज में वैवाहिक रीति-रिवाज़ पर वाद विवाद होता है । इसमें ये तीनों भाग लेते हैं । इनमें लता और जगत के दृष्टिकोण भारतीय चिन्तनधारा के अनुकूल है । लेकिन बंसीलाल तो हमारे जीर्णशीर्ण और जर्जर वैवाहिक नियमों के विरुद्ध है और वह पाश्चात्य आदर्शों का समर्थन करता है । बंसीलाल को उसके मित्र बधाईयाँ देते हैं ।

लता अपने पिता की इकलौती पुत्री है । वह जगत के दिखावापूर्ण व्यवहार से आकर्षित होकर उसकी ओर खिंच जाती है । बंसीलाल के मन में लता के प्रति प्रेम है लेकिन लता उसे नफ़रत करती है । लेकिन जगत के मन में लता के प्रति जो प्रेम है वह वासना से युक्त है । लता के पिता उदार विचारवाले व्यक्ति है । वे अपनी बेटी की शादी जगत से कराना चाहते हैं ।

लता शादी का प्रस्ताव जगत के सामने रखती है । लेकिन जगत उसे ठुकरा देता है । लता को तभी जगत का वास्तविक रूप मालूम होता है ।

एक दिन बंसीलाल लता से प्रेम निवेदन करने के लिए रात उसके कमरे में आता है । लता की उपेक्षाभरी दृष्टि से दुखी होकर वह मकान की छत से नीचे कूदता है और बंसीलाल अस्पताल में पहुँचता है । लता के हृदय में बंसीलाल के प्रति प्रेम और दया की भावना उत्पन्न होती है । अस्पताल में डा. अमृतराय बंसीलाल को बचा लेता है । अपने पिता की आज्ञा को ठुकराते हुए लता अपना पूरा समय बंसीलाल की सेवा शुश्रुषा में बिताती है । बंसीलाल को नव जीवन प्रदान करने के लिए लता उसे रक्त देती है और बंसीलाल की बहिन राजरानी उसे अपने शरीर का गोस्त भी देती है । परंतु बंसीलाल के टूटे दिल और खण्डहर शरीर में नवजीवन नहीं आता है । बंसीलाल की माँ अपने बेटे की इस स्थिति में पागल होकर मर जाती है । राजरानी अनाथ बन जाती है । लता उसे कालेज में प्रवेश कराती है । बंसीलाल के प्रति लता का त्योग और निष्ठा का भाव देखकर डा. अमृतराय उसकी ओर आकर्षित होता है । राजरानी के मन में डा. अमृतराय के प्रति मौन प्रेम है ।

विज्ञान से हारकर लता बंसीलाल को लेकर तीर्थाटन करती है । वह बंसीलाल के साथ योगियों की खोज में चल पडती है । उनके साथ डा. अमृतराय भी है । वे पहाडी प्रदेश के एक सराय में रहते हैं । लेकिन बंसीलाल की स्थिति और भी दयनीय बन जाती है । डा. अमृतराय लता के त्याग भाव पर मुग्ध होकर अपने प्रेम भाव को उसके सामने व्यक्त करता है । लता के मन में भी डा. अमृतराय के प्रति आकर्षण पैदा होता है । लेकिन वह कुछ भी नहीं कर सकती क्योंकि बंसीलाल का मांस-पिंड रूपी शरीर इन दोनों के बीच दीवार बनकर खडा है । लता बंसीलाल के घावों एवं चीख-पुकार से परेशान हो जाती है । इस प्रकार पारिस्थिति जन्य विकृतियाँ तथा दबावों से प्रेरित होकर लता अपनी कुंठा की चरमसीमा पर पहुँचती है और वह बंसीलाल को विष देकर उससे छुटकारा

पा लेती है । लेकिन यह कृत्य डा. अमृतराय को अस्वाभाविक एवं क्रूर लगता है । उसने पहली एक बार बंसीलाल को विष देने का प्रयास किया था । फिर भी उसने कभी नहीं सोचा था कि भावना की झोंके में लता ऐसा कर सकती है । लता के प्रति उसकी आस्था पर भी यह घटना गहरा आघात पहुँचाती है ।

बंसीलाल की मृत्यु के बाद लता लाहौर लौट आती है । अब वह पहले की लता नहीं रह गई । उसका जीवन तेजी से मौत की ओर बढने लगता है । अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में वह डा. अमृतराय से अनुरोध करती है कि वे रानी को अपनी जीवन संगिनी बना ले । वह रानी को अपनी बसीयत नामा देकर कहती है । "मेरी तरह स्वतन्त्र रहकर न भटकना । प्रकृति ने जिस उद्देश्य से पुरुष-स्त्री का सृजन किया है, उसी उद्देश्य पूर्ति का मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है"[12] डा. अमृतराय उसका अनुरोध स्वीकार कर लेता है और उनके आश्वासन के साथ ही लता सदा के लिए मृत्यु की गोद में सो जाती है ।

इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार वैवाहिक जीवन की श्रेष्ठता को सिद्ध करना चाहते हैं । उनके अनुसार स्वतन्त्र प्रेम को महत्व देना मूर्खता है । लता के शब्दों में "खुला रहकर प्रेम भटक जाता है, आवारा रहकर सूख जाता है, बन्धन में ही वह पनपता है ।"[13] इस प्रकार उपन्यासकार की यह मान्यता है कि स्त्री-पुरुष स्वतन्त्र न रहकर आपस में बंधे जाये तो जीवन के उद्देश्य को वे सफल बना सकते हैं । यहाँ लेखक ने प्रेम की समस्या को उभारकर इसका समाधान विवाह के रूप में प्रस्तुत किया है । उपन्यासकार अपने उपन्यास

---

12. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 235-236
13. सितारों के खेल- उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 235

में वैवाहिक जीवन के महत्व को सिद्ध करने में सफल हुए है लेकिन इस प्रयास में वे ठोस प्रमाण उपस्थित कर नहीं पाये हैं । यह उपन्यास लेखक की निरी कल्पना की उपज है । इसकी प्रतीति स्वयं लेखक को भी बाद में हुई है । इसलिए उन्होंने स्वयं बाद की कृति "गिरती दीवारें" की भूमिका में इस प्रकार लिखा है "वैसा गढा-गढाया उपन्यास अब मेरी कलम से दूसरा न आयेगा ।"[14] यहाँ लेखक ने स्वयं यह स्वीकारा है कि "सितारों के खेल" शीर्षक उपन्यास का कथ्य अस्वाभाविक एवं अयथार्थपूर्ण है । इस दृष्टि से इसकी आलोचना भी एक सीमा तक तीखी हो सकती है ।

गिरती दीवारें

गिरती दीवारें में निम्न-मध्यवर्ग के जीवन का व्यापक चित्रण किया गया है । इसमें निम्न-मध्यवर्ग के वैवाहिक जीवन, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं, महात्वाकांक्षाओं, कुंठाओं और ग्रंथियों का विशद चित्रण हुआ है । गिरती दीवारें वस्तुत: निम्न-मध्यवर्ग के युवक चेतन की जीवनी है ।

चेतन एक साधारण, असंस्कृत और रूढि जर्जर परिवार में पालित-पोषित युवक है । कला और साहित्य के प्रति उसकी सहज रुचि है । उसके घर का ऐसे कटुतापूर्ण वातावरण को हल्का करने की इच्छा के कारण वह कला या साहित्य की सेवा में अपना समय बिताना चाहता है । वह किसी न किसी प्रकार बी.ए.पास कर लेता है । उसके मन में एक लेखक या कवि बनने की प्रबल इच्छा है । लेकिन परिस्थितिवश उसे एक स्कूल मास्टर बनना पडता है । वह सहज ही पास की गली में रहनेवाली लडकी कुन्ती से प्यार करने लगता है । दोनों लुकछिपकर प्रेम का आदान प्रदान करते हैं ।

---

14. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - भूमिका - पृ. 14

इसी बीच चेतन के माँ-बाप उससे पूछे बिना उसकी शादी एक साधारण-सी पर अत्यन्त सरल हृदयवाली लडकी चंदा से तय करते हैं । चन्दा का रूप-रंग उसे पसन्द नहीं है और वह चन्दा से शादी करना भी नहीं चाहता है । अपने कठोर निर्दय शराबी पिता शादीराम की मार-पीट के भय से वह विवाह से इनकार नहीं कर पाता । साथ साथ वह अपनी ममतामयी माँ के आदेश को टालने की शक्ति भी नहीं रखता । जब लडकी देखने के लिए चेतन उसके घर जाता है तब चेतन चन्दा की छोटी बहिन नीला की ओर आकर्षित होता है । लेकिन रूढियों से ग्रस्त ऐसे एक समाज में जीने के कारण वह न नीला से शादी कर सकता है या न कुन्ती से । चेतन को अपने भाग्य से समझौता करना पडता है ।

एक साहित्यकार बनने की उच्च आकांक्षा को मन में संजोये हुए वह लाहौर जाता है । वह उस समय शादी नहीं करना चाहता है । वह चाहता है उसका वेतन कुछ बढ जाय तब शादी करें । वह जानता है कि विवाह जिम्मेदारी का काम है और इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए सबसे ज़रूरी वस्तु रूपया है जो अभी उसके पास नहीं है । चेतन का बडा भाई भी लाहौर आता है । वह एक डेंटिस्ट है । लाहौर में चेतन केसर और प्रकाशो नाम की दो लडकियों की ओर भी आकर्षित हो जाता है । उसके बडे भाई को इसकी सूचना मिलने पर बडे भाई घर जाता है और चेतन की शादी के लिए तैयारियाँ करता है । चेतन भी शादी करने के लिए तैयार हो जाता है क्योंकि उसने अपने निजी अनुभवों से समझ लिया है कि वह स्वयं अपनी भावनाओं पर संयम कायम नहीं कर सकता ।

चन्दा से शादी करने के बाद चेतन लाहौर पहुँचता है और कई तरह की कठिनाईयों का सामना करता हुआ वह एक समाचार पत्र का

उपसंपादक बन जाता है । अब भी उसके मन में उपन्यास या कहानी लिखने की साध है । लेकिन वह नहीं कर पाता । चेतन के बडे भाई रामानन्द भी परिवार समेत लाहौर में चेतन के साथ है । शादी के बाद वह चन्दा को लाहौर नहीं ले जा सकता क्योंकि घर तो बहुत छोटा है और उसमें दो परिवारों का एक साथ रहना मुश्किल है । लेकिन चेतन के मन में चन्दा को भी लाहौर लाने की इच्छा है । वह मकान बदलता है और चन्दा को भी लाहौर लाता है । चन्दा पतिव्रता पत्नी है और उसके कुछ गुण के कारण वह चन्दा को भी प्यार करने लगता है । लेकिन चंदा तो सभ्य नहीं है । चेतन अपनी पत्नी को सभ्य बनाने की कोशिश करता है और उसकी आगे की पढाई का प्रबन्ध भी करता है । चेतन के बहुत परिश्रम करने पर भी चन्दा एक ऐसी पत्नी नहीं बन पाती जो चेतन के मानसिक चित्र के अनुरूप हो । चन्दा पढाई में तो होशियार है लेकिन वह तो सामाजिक रूढियों से घिरी हुई है ।

बीच में चेतन और चन्दा को नीला के वहाँ जाना पडता है, एक शादी में शामिल होने के लिए । चेतन अपने ससुराल में बीमार पड जाता है, नीला उसकी सेवा-शुश्रुषा करती है और इस निकट साहचर्य के कारण चेतन और नीला के बीच का संबन्ध बढ जाता है । एक दिन वह नीला को बलात् चूम लेता है । नीला अपने को छुडाकर भाग जाती है । नीला का खाना-पीना छूट जाता है, लगातार रोती रहती है । चेतन आत्मग्लानि से भरकर नीला के पिता को सारी घटना बताकर चन्दा को लेकर वहाँ से चल पडता है । चेतन की पत्नी पर उसकी भाभी चम्पावती किसी न किसी बात पर जलती रहती है । चेतन को वहाँ भी चैन नहीं मिलता है । अपने जीवन की कष्टपूर्ण आर्थिक परिस्थितियों से ही वह जूझता रहता है ।

अखबारों के दफ्तरों में काम करते-करते उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है । अपनी इस विवशता की स्थिति में लाहौर के प्रसिद्ध वैद्य कविराज रामदास से उसकी भेंट हो जाती है । चेतन के प्रति कविराज झूठी उदारता दिखाता है और चेतन उसकी बातों में फँस जाता है । कविराज उसे शिमले ले जाता है । वहाँ वह "बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा" पर एक पुस्तक लिखता है । पचास रुपये मासिक वेतन पर चेतन तीन महीने के अन्दर उसे पुस्तक लिखकर देता है । प्रारंभ में चेतन को वह सहृदय, महान और उदार लगता है । लेकिन धीरे-धीरे उसे महसूस होता है कि वह भी कविराज के दूसरे नौकरों की तरह एक नौकर मात्र है । लेखक के शब्दों में "उसने अनुभव किया - वह, जयदेव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं । कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं । यह अनुभूति जैसे एक तीर की तरह उसके हृदय को भेदती हुई चली गयी । ये इतने क्लार्क, मज़दूर, किसान - ये सब घोड़े हैं, विभिन्न गाड़ियों में जुते हुए घोड़े ।"[15] बाहर से कविराज चेतन से मीठा व्यवहार करते हैं लेकिन वह स्वार्थी है । चेतन का खून चूसना ही उसका उद्देश्य है । शिमला आने के पहले चेतन को यह नहीं मालूम था कि उसके द्वारा लिखी जानेवाली वह पुस्तक रामदास के नाम पर ही प्रकाशित होगी । यह बात जानता था तो वह इस प्रकार वैद्यराज के चंगुल में नहीं फँसा होता । मन ही मन वह कविराज का विरोध करना चाहता है लेकिन ऐसा नहीं कर पाता । कविराज के स्नेहभरे व्यवहार की मिठास में वह कटु परिस्थितियों से समझौता करता है ।

शिमला में चेतन एक संगीतज्ञ और अभिनेता बनने का निष्फल प्रयास भी करता है। उसकी संकोच, संशय, अतिरिक्त भावुकता और हीनता के कारण उसे सर्वत्र असफलता ही मिलती है । चेतन वहाँ कविराज के नौकर यादराम की

---

15. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 402

पत्नी मन्नी की ओर भी आकर्षित हो जाता है । मन्नी वहाँ न होती तो उसके लिए अढाई तीन महीने बिताना कठिन हो जाता । मन्नी के सामने अपना दुखदर्द खोलकर उसका मन कई बार हल्का हो जाता था । चेतन को जालन्धर से नीला के विवाह की सूचना मिलती है । वह शिमले से किसी प्रकार जान छुडाकर भाग निकलता है, नहीं तो कविराज चेतन से और भी पुस्तकें अपने नाम से लिखवाता ।

नीला का विवाह रंगून के एक अधेड कुरूप मिलिटरी एकाऊन्टेंट से होता है । चेतन नीला से एकांत में मिलकर उसे क्षमा माँगना चाहता है । लेकिन नीला इस बार उससे अधिक नहीं बोलती है । वह अन्यमनस्क सा इधर उधर बैठती है और अन्त में जाने के पहले अपने जीजाजी से अपनी भूल-चूक के लिए क्षमा माँग लेती है । चेतन तो अब अपनी गलती के लिए क्षमा माँगता हुआ नीला के चरणों में झुक जाता है । नीला अपनी सिसकी को दबाती हुई रंगून चली जाती है ।

इस प्रकार 'गिरती दीवारें' की समस्या मूलत: मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता एवं सेक्स संबन्धी कुण्ठा मालूम होती है । इस उपन्यास में लेखक ने यह संकेत किया है कि इस जर्जर मध्यवर्ग के समस्त स्त्री-पुरुषों के बीच रूढिग्रस्त समाज की लौह - दीवारें खडी है । लेकिन लेखक ने केवल सूचना ही दी है अपने पात्रों द्वारा उन दीवारों को गिराने का प्रयास नहीं किया है । इसका कारण यह है कि समाज की स्थूल दीवारों के समान अन्य सूक्ष्म दीवारें भी नायक के मनमस्तिष्क को घेरे हुए हैं इसलिए दीवारों को तोडने में वह असमर्थ है । इस उपन्यास में सामाजिक पक्ष का व्यक्तिवादी जीवन दृष्टिकोण

के आधार पर मूल्यांकन किया गया है । लेकिन आज के संपूर्ण जीवन की अनेक समस्याओं को उपस्थित करने में लेखक एक सीमा तक सफल हुए हैं ।

गर्मराख

यह अश्क जी का तीसरा उपन्यास है । इसमें आर्थिक तथा नैतिक स्तर पर उखडे हुए निम्न मध्यवर्गीय जीवन का विशद चित्रण है । इसमें अनेक सामाजिक कुरीतियों और कुरूपताओं का प्रतिबिंबन मिलता है । मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की संकीर्ण मनोवृत्तियों का चित्रण इसमें कुशलता के साथ किया गया है ।

इस उपन्यास एकांग प्रेम की विफलता की समस्या पर आधारित है । उपन्यास का नायक है जगमोहन, जो निम्न-मध्यवर्ग का एक युवक है । प्रतिकूल तथा विषम परिस्थितियों में उसका पालन पोषण होता है । उसकी आकांक्षाएँ तो बहुत उच्च है । लेकिन साधन की कमज़ोरी और आर्थिक अभाव उसके विकास में बाधा डालते हैं । वह बी.ए. पास है । आर्थिक अभाव के कारण वह एम.ए. नहीं कर पाया और वह पढाई के लिए साधनों की खोज में है । उसका मित्र है कवि चातक जो प्रेम का पूजारी नहीं रोगी है । किसी भी स्त्री का चित्र देखने पर ही कवि चातक का भावुक हृदय उसे प्रेम करने लगता है । और वह उस पर कविता लिखने लगता है । जगमोहन, चातक द्वारा स्थापित "संस्कृति समाज" नामकसंस्था का मंत्री भी बन जाता है । वहाँ जगमोहन का परिचय एक अध्यापिका सत्याजी से होता है । सत्याजी तो बाहर से बडी गंभीर, शुष्क एवं उदासीन दिखाई पडती है । लेकिन वह अन्दर से ऐसी नहीं । जगमोहन की पढाई के लिए सत्याजी समय समय पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से

आर्थिक सहायता भी पहुँचाती है । चेतन के भाई-भाभी से भी वह घनिष्ठ संबन्ध स्थापित करती है । धीरे-धीरे सत्याजी के मन में जगमोहन के प्रति आकर्षण अधिक होने लगता है । लेकिन जगमोहन तो दुरो से प्रेम करता है और दुरो हरीश को चाहती है ।

जगमोहन पेट की समस्या को प्रथम स्थान देता है । साथ ही अतृप्त प्रेम के भाव से वह आक्रान्त भी है । वह भी यौन संबन्धी कुण्ठाओं से ग्रस्त है । इसलिए वह सत्याजी के प्रेम को पूरी तरह विस्मृत नहीं कर पाता । सत्याजी उसके निकट है लेकिन दुरो तो उससे बहुत दूर है । उसके शरीर की पुकार तो सत्याजी की तरफ है लेकिन उसके सपनों का केन्द्र तो दुरो है । अन्त में जगमोहन और सत्याजी का संबन्ध केवल कायिक बन जाता है । समय समय के शारीरिक संबन्ध के अतिरिक्त वह सत्याजी से भाव-बन्धन रख नहीं पाता । सत्याजी तो एक मकडी के समान है जो जगमोहन को फँसाने के लिए जाल बिछाती है । लेकिन जगमोहन तो सदा अपनी जान बचाने की कोशिश करता रहता है । सत्याजी द्वारा जगमोहन के सामने शादी का प्रस्ताव रखने पर भी जगमोहन उससे शादी करने के लिए तैयार नहीं होता है । अपनी निराशा की प्रतिक्रिया के रूप में आफ्रिका के एक काले-कलूटे मेजर के साथ सत्याजी की सगाई होती है । जगमोहन की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए वह सगाई के बाद भी उसके घर जाती है । लेकिन जगमोहन एक दिन स्पष्टत: अपनी भावस्थिति पत्र में लिखकर सत्याजी को देता है । जगमोहन अपने निर्णय में अडिग रहता है और सत्याजी के विवाह में भी वह सम्मिलित नहीं होता है ।

आफ्रिका जाते समय सत्याजी उससे स्टेशन में मिलना चाहती है । लेकिन जगमोहन सोचता है कि उससे मिलने पर सत्याजी को क्या फायदा

मिलेगा ? जगमोहन वहाँ जाता है लेकिन छिपकर वह सत्याजी की गतिविधियों को चोर की तरह देखा करता है । सत्याजी दुखी होकर इधर-उधर उसे ढूँढती है फिर दिल में चोट लिए चुपचाप आफ्रिका चली जाती है । लेकिन जगमोहन के लिए प्रेम तो सबसे बडा दुख या सुख नहीं है और सत्याजी के जाने के बाद वह यह सोचकर आश्वस्त हो जाता है कि "और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा ।"[16]

इस मूल कथा के साथ कथानक को पुष्ट करने के लिए अन्य अनेक घटनाओं के वर्णन भी आते हैं जैसे दुरो तथा कमरेड हरीश के प्रेम प्रसंग, ये लो बस यूनियन आन्दोलन, वसन्त-सरला का प्रेम प्रसंग आदि । ये लो बस यूनियन से संबन्धित घटनाओं में लेखक व्यक्ति विकास में बाधक सामन्ती रूढियों का खुलकर विरोध करता है ।

सत्याजी निम्न-मध्यवर्ग की निराश प्रेमिकाओं का संपूर्ण प्रतिनिधित्व करती है । निम्न-मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों को अपने जीवन बिताने में क्या-क्या कष्ट उठाने पडते हैं इसका यथार्थ चित्रण "गर्मराख" में मिलता है । भारतीय युवक और युवती जिस प्रकार अपने सामाजिक, नैतिक संस्कारों में बंधकर अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं में उलझते हैं इसका भी मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में है । लेखक यह बताना चाहते हैं कि व्यक्ति अपनी अतिभावुकता के कारण प्रेम की विफलता में फँसकर जीवन से पलायन करना चाहता है जो दूसरे शब्दों में जीवन का अपमान है ।

---

16. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 546

बड़ी बड़ी आँखें

"बड़ी बड़ी आँखें" नामक उपन्यास आकार में बहुत छोटा है । इस उपन्यास में एक व्यक्ति के सपनों और आदर्शों को चूर होते हुए दिखाया गया है । इसे एक प्रतीकात्मक राजनीतिक उपन्यास कह सकते हैं । इसमें आदर्श और यथार्थ के संघर्ष का चित्रण है । "बड़ी बड़ी आँखें" में आधुनिक आश्रमों और सर्वोदयी संस्थाओं की विसंगतियों को उदघाटित किया गया है ।*

"बड़ी बड़ी आँखें" का नायक एक विधुर नौजवान संगीत है । पत्नी की अकाल मृत्यु से उसका मन बहुत अशान्त होता है और वह शान्ती की खोज में देवनगर पहूँचता है । देवनगर एक सामाजिक संस्था है, जिसका संस्थापक है देवाजी । देवाजी देववाणी पत्रिका के संपादक तथा देवसेना का अधिष्ठाता है । देवाजी ने एक वीरान खण्डहर पर उच्च आकांक्षाओं के साथ देवनगर की स्थापना की है । देवाजी के मन में ऐसे एक समाज की परिकल्पना है जिसमें न कोई गरीब हो न अमीर । वह एक ऐसा शोषण रहित समाज हो जहाँ सबको भरपेट भोजन मिले और सभी को अपनी प्रवृत्तियों के अनुरूप जीवन के उद्देश्यों को तलाशने की स्वतन्त्रता हो । देवाजी प्रेम तथा सामूहिक परिश्रम के आधार पर समाज का नवनिर्माण करना चाहते हैं । पहली नज़र में ही संगीत देवनगर को प्यार करने लगता है "कितना सुन्दर था यह देवनगर - कीचड और दलदल में अनायास खिले कमल सरीखा मनहर और स्वच्छ ।"[17]

अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए संगीत पचास रुपये वेतन पर वहाँ काम करता है । उसका काम देववाणी पत्रिका के हिन्दी-उर्दू संस्करण

---

17. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 10
* हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र, पृ. 149.

का अनुवाद कार्य करना है । देवनगर में संगीत का आतिथेय तीरथा राम है जो एक कवि है और वह अपने अच्छे मूड में संगीत को कविता सुनाता भी है । तीरथाराम के व्यवहार से संगीत जान लेता है कि वह असफल प्रेमी है । देवाजी की पुत्री तेरह-चौदह बरस की छोटी-पतली बीमार सी लडकी वाणी से संगीत की मुलाकात होती है । देवनगर के बडे दिन के समारोह में संगीत एक गाना गाता है और वाणी उसके प्रति आकर्षित होती है ।

देवनगर के अन्य संचालक है देवाजी की पत्नी, मधवार साहब, गुरुवचन सिंह और अन्य देव सैनिक । प्रधान संचालक देवाजी है परन्तु चलती उनकी पत्नी की है । देवाजी अपने को देववाणी के ग्राहकों व देव मण्डल के मेम्बरों के धन से बने देवनगर की सम्राज्ञी समझती है । देवाजी अपनी पत्नी से पूर्ण रूप से प्रभावित है । कहीं कहीं वे दब्बू लगते हैं । पत्नी की इच्छा उनके लिए आज्ञा है । तीरथाराम देवीजी की चापलूसी में रहता है । देव-सैनिकों के बीच का संबन्ध औपचारिक और नपातुला है । नन्दलाल, उसकी पत्नी सावित्री आदि के मन में देवनगर की माताजी (देवीजी) के प्रति गहरी नफरत है । लेकिन कोई भी खुलकर उस नफरत को प्रकट नहीं करता है । देवाजी दुनिया के सामने एक एक आदर्श नगर प्रस्तुत करते हैं । देवाजी के शब्दों में "स्वर्ग इस संसार पर उतर आये, यही वैकुण्ठ हो जाय और इसके पवित्र आनन्द ही से परमानन्द की प्राप्ति हो । लेकिन परमानन्द की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब अतिरिक्त बन्धन न हो, न दिखावा हो, न धोखा हो । सहज स्वभाव, सच्चे प्रेम और भक्ति की तरंगें उठें ।"[18] अगर वहाँ देवाजी की चलती है तो शायद सचमुच ऐसा नगर बस जाता । लेकिन वहाँ चलती तो देवीजी की है जो देवीजी की खुशामद नहीं करता वह उसका शत्रु-सा बन जाता है ।

---

18. बडी बडी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 40

वाणी का प्यार संगीत को इसी वातावरण के बीच भी जीने की प्रेरणा देता है और उसे बांधकर रखता है । नन्दलाल और सावित्री का घर संगीत के लिए मरु का शाद्वल है । संगीत जान लेता है कि तीरथाराम के असफल प्रेम का कारण वाणी है । तीरथाराम तो संगीत के एकमात्र घनिष्ठ मित्र था लेकिन संगीत के प्रति वाणी का प्रेम देखकर विवाहित फिर भी वाणी के प्रेम में कविता करनेवाला तीरथाराम संगीत से ईर्ष्या करने लगतर है । तीरथाराम और हरमोहन सिंह संगीत के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास करते हैं और इससे संगीत का वहाँ रहना कठिन हो जाता है । लेकिन देवाजी संगीत को देवनगर के सारे घरों से और देवाजी के बच्चों से मिलजुलकर रहने के लिए कहते हैं और इस आश्वासन के बल पर संगीत वहीं बने रहने की कोशिश करता है । संगीत को देवाजी देववाणी के उर्दू संस्करण का संपादक बनाते हैं और संगीत दो-तीन रुपये मासिक वेतन पर एक छोटे नौकर गुलाम नबी को रखता है ।

देवाजी ने एक प्रैक्टिकल स्कूल खोल दिया था जिसमें देव-सैनिकों के ही नहीं नौकरों के बच्चे भी दाखिल थे । गुलाम नबी पढा-लिखा नहीं है और संगीत नबी को प्रैक्टिकल स्कूल भेजना चाहता है । लेकिन संगीत समझ लेता है कि प्रैक्टिकल स्कूल धनी लोगों के बच्चों के लिए हैं, नबी जैसे बच्चों के लिए नहीं है और हीरा जैसे गरीब बच्चों का प्रवेश भी केवल दिखावा के लिए है । संगीत देवाजी के पास जाकर नबी को स्कूल में प्रवेश कराने की इच्छा प्रकट करता है लेकिन देवाजी तैयार नहीं है । वाणी यहाँ संगीत की सहायता करती है उसकी सिफारिश से देवाजी नबी के प्रवेश की अनुमति देते हैं । वाणी जितना संगीत की ओर खींचती है संगीत उससे भागने की कोशिश करता है क्योंकि संगीत यह बात अच्छी तरह जानता है कि वह एक विधुर परदेशी है । देवनगर की

प्रकृति और वाणी से उसका प्रेम अपार है । लेकिन एक नन्हीं सी कुमारी जिसकी माँ, जिसके भाई और दूसरे रिश्तेदार उसके विरुद्ध है ऐसी एक लडकी से संगीत अपना संबन्ध जोडना नहीं चाहता है ।

अप्रैल फूल के दिन में, तीरथाराम, हरमोहन सिंह आदि संगीत को फूल बनाते हैं जिसमें एक नबालिंग लडकी को बहकाने के झूठे अभियोग में संगीत को विशेषकर प्रैक्टिकल स्कूल में उद्घाटन के समय सभी के समक्ष मज़ाक उडाया जाता है । वाणी समझती है कि उस घटना ने संगीत को बहुत दुख पहुँचाया है और वह उसे आश्वासन दिलाती है । वह संगीत को खुलकर लिखती है कि देवनगर वास्तव में राक्षस नगर है और वह आशा करती है कि संगीत आगे भी उससे पहले की तरह व्यवहार करते रहेगा ।

प्राकृतिक विपदा के कारण देवनगर के पडोस के गाँवों की खेती का सर्वनाश होता है । लेकिन उस समय भी देवनगर में उत्सव की तैयारियाँ हो रही है । संगीत का दिल उन देहातियों के लिए पिघल जाता है । देवाजी उनकी सहायता नहीं करते हैं । वे बडे ऊँचे आदर्शवादी, मृदुभाषी एवं सज्जन लगते हैं । लेकिन उनके मिठासभरे शब्दों में केवल दिखावट ही दिखावट है । संगीत के मन में देवाजी के प्रति वितृष्णा भर उठती है और उसे लगता है कि ये सब ढोंग है और वहाँ काम करना उस ढोंग में योग देना है । संगीत को लगता है कि देवनगर के तीरथाराम, हर मोहन, सुदर्शन सिंह आदि उसकी स्वतंत्र वृत्ति में बाधा डालनेवाले हैं और वह त्याग पत्र देना चाहता है । देवाजी उसे मना करते हैं और वाणी से उसकी शादी कराने का वादा भी करते हैं । लेकिन संगीत जानता है कि देवी जी की रहते यह नहीं होगा । उद्घाटन समारोह के दिखावे

के बाद प्रैक्टिकल स्कूल में नबी, हीरा जैसे गरीब बच्चों की उपस्थिति देवीजी को अच्छी नहीं लगती है । नबी को चोरी की आदत भी थी और स्कूल के अधिकारी लोग उसे स्कूल से निकालना चाहते हैं । संगीत नबी की इस आदत को दूर करने की कोशिश करता है । देवाजी "देववाणी" में बाल मनोविज्ञान पर लिखनेवाले हैं लेकिन देवाजी की करनी और कथनी में बहुत अन्तर है । वे भी संगीत से नबी को काम से निकालने के लिए कहते हैं । नबी को चोरी के इलजाम में नौकरी से निकालने का देवसैनिकों का आग्रह जब बढता जाता है तो संगीत उसे निकालकर स्वयं भी देवनगर को छोडकर वाणी के प्रेम को ठुकरा कर चला जाता है ।

इस उपन्यास में सामाजिक पक्ष का मूल्यांकन व्यक्ति चिन्तन के आधार पर किया गया है । उपन्यासकार ने संगीत के माध्यम से देवनगर के सामाजिक विधान तथा उसके संचालकों के खोखले आदर्शवाद की कटु आलोचना यहाँ की है । देवनगर में सामूहिक एवं सहकारी जीवन का आदर्श संगीत की दृष्टि में विडम्बना मात्र है । उपन्यासकार का उद्देश्य यह दिखाना है कि बडे बडे सपने देखने के लिए बडी बडी आँखों की जरूरत है । देश के वर्तमान शासन का सही और सटीक चित्र "बडी बडी आँखें"में मिलता है । उपन्यासकार के ही शब्दों में "देवनगर मुझे उस देश-सा लगता, जिसका प्रधान मंत्री उदाराशय, स्वप्नशील और भविष्यद्रष्टा हो, पर जिसके सहकारी अवसरवादी, चाटुकार और खुशामदी हों और जिसके दफ्तरों में भ्रष्टाचार और स्वजन पालन का दौरदौरा हो । उस प्रधान मंत्री की अच्छाई, स्वप्नशीलता और भविष्य दर्शन के बावजूद उस देश का क्या बना सकता है ? यदि वह एक सिरे से लेकर दूसरे तक सारे निज़ाम को नहीं बदल सकता तो उसे एक के बाद एक समझौता करना पडेगा ।"[19]

---

19. बडी बडी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 183

इस प्रकार उपन्यासकार व्यक्ति यथार्थ के साथ साथ सामाजिक यथार्थ का भी चित्रण करने में बहुत सफल दिखाई पडते हैं । जिस प्रकार समाज के शुष्क एवं हृदयहीन बन्धनों के सामने व्यक्ति अधीर एवं बेचैन हो जाता है उसका चित्रण 'बडी बडी आँखें' में मिलता है । उपन्यासकार यह भी दिखाना चाहता है कि किस प्रकार व्यक्ति के खोखले स्वप्न सामूहिक परिस्थितियों के ठोस निर्मम चट्टान से टकराकर चूर चूर हो जाते हैं ।

पत्थर-अल पत्थर

"पत्थर अल पत्थर" यात्रा वर्णन की शैली में लिखा गया है । यह कश्मीर के निम्नवर्गी, मेहनती, अस्तिकतावादी घोडेवान हसनदीन के संघर्षमय जीवन की दर्दभरी कहानी है । कश्मीर के अनुपम प्रकृति सौन्दर्य के साथ साथ उसके दिवास्वप्न, अभिलाषाएँ, कष्टों से पूर्ण जीवन का चित्रण इसमें अश्क ने किया है । "पत्थर-अलपत्थर" देश विभाजन के बाद काश्मीर पर पाकिस्तानियों के आक्रमण के कारण आई तबाहियों के मारे और रोज़गार की आम की मंदी के शिकार हसनदीन की दर्दभरी कहानी है ।* हसनदीन कश्मीर के घोडेवानों का प्रतिनिधि पात्र है ।

हसनदीन का जीवन सदा आर्थिक विपन्नताओं से ग्रस्त है । कश्मीर की प्रकृति सुन्दरता से वशीभूत होकर उसकी स्वास्थ्यप्रद जलवायु और सौन्दर्य सुषमा का आनन्द लूटने के लिए जो यात्री वहाँ आते हैं वे अपने में मस्त रहते हैं । उनके हृदय में वहाँ के गरीब, संघर्षरत निरीह जनता के प्रति थोडी सी भी संवेदना और सहानुभूति नहीं होती हैं । वे अपनी संकीर्णता और स्वार्थपरता

---

* आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - डा. पीताम्बर सरादे, पृ.

से जरा-सा भी ऊपर नहीं उठ पाते हैं और कम से कम खर्च में अधिक से अधिक आनन्द लूटने की कोशिश करते रहते हैं ।

प्रस्तुत उपन्यास में घोडेवान हसनदीन के जीवन के दो दिन की कहानी है । लेकिन संपूर्ण उपन्यास पढने पर यह उसके दो दिन की कहानी मात्र नहीं होकर उसके और उसके वर्ग के जीवन की करुण कहानी प्रतीत होती है । हसनदीन, खन्ना साहब एवं उसके पूरे परिवार को घोडों पर बिठाकर दूगमर्ग से से अल-पत्थर के झील को दिखाने ले जा रहा है । उनके साथ उप्पल साहब, जीवानन्द, उषा आदि भी आगे-आगे दूसरे घोडेवानों के घोडों पर जा रहे हैं । घोडे के साथ चलता हुआ हसनदीन अपने अतीत तथा वर्तमान के बारे में सोचता जा रहा है । वह खन्ना साहब के बेग वगैरह भी अपने पीठ से बाँधकर घोडे के साथ चलता है । रास्ते में वह सोचता है कि खन्ना साहब तो बनिया है इसलिए इस सवारी से ही वह बहुत रुपये कमा सकता है । हसनदीन अपने बच्चों की शिक्षा, शादी आदि और पत्नी को सुखी बनाने की कामना मन में संजोये हुए आगे चलता है । रास्ते में वह भविष्य के हवामहल बनाया रहता है । रास्ते पर वह सवारों को खुश कराने का प्रयास भी करता चलता है । हसनदीन तो बाबा ऋषि का अनन्य भक्त है इसलिए इस प्रकार की मनपसन्द सवारियों को देने में वह बाबा ऋषि को दुआ भी देता है । बातों बीच वह खन्ना साहब को बाबा ऋषि के चमत्कारों की बात सुनाता है और उनको बाबा ऋषि के दर्शन के लिए ऋषि के जयारतगाह पर उन्हें लेता है । लेकिन खन्ना साहब तो ऋषि की समाधि पर कुछ भी खैरात न करता है । यह हसनदीन को अच्छा नहीं लगता है । वह कुछ नहीं कहता है और वहाँ से वह और दूसरे घोडेवान यात्रियों के साथ गुलमर्ग जाते हैं । खन्ना साहब हसनदीन को उस दिन का पैसा देता है लेकिन हसनदीन

वह नहीं लेता है । वह सोचता है कि साहब को अगले दिन की यात्रा करना है इसलिए वह अगले दिन दो दिनों की कमायी उनसे एक साथ ले लेंगा । खन्ना साहब हसनदीन को वहाँ अगले दिन सुबह छः बजे आने को कहता है ताकि वह सबको जगायेगा और बौरे से नाश्ता तैयार करने का प्रबन्ध भी करवायेगा ।

पिछले दिन हसनदीन सुबह ही होटल पहुँचता है और वे यात्रा शुरू करते हैं । यात्रा के बीच में वे चाय पीने के लिए रुकते हैं । रेस्तराँवाला सिक्ख था इसलिए हसनदीन वहाँ से चाय नहीं पीता है । दूसरे चायफरोश से चाय पीने के लिए खन्ना से पैसा माँगता है । लेकिन खन्ना तो यह हठ करता है कि हसनदीन उनके साथ ही चाय पीलें । यह बात हसनदीन की धार्मिक भावना के विरुद्ध थी । वह चाय वहाँ से नहीं पीता है । बार बार पूछने पर खन्ना साहब दस का एक नोट उसकी ओर फेंक देता है ।

तभी हसनदीन खन्ना साहब के बारे में अच्छी तरह सोचता है । पिछले दिन की छोटी-छोटी घटनाएँ उसकी याद में आती हैं । वह समझ लेता है कि खन्ना साहब तो बडा कंजूस है इसलिए उसने नाश्ते के लिए सेंडविच के बदले परोठे बनवाये, लेकिन खन्ना साहब ने उप्पल साहब की सेंडविच्चों पर बढ-बढकर हाथ मारा था । बाबा रिशी की जयारतगाह पर भी उसने कुछ नहीं चढाया था और चाय आदि के लिए घोडेवानों को कुछ न दिया भी था और लमन स्कुआश के बदले उसने लेमन ड्राप्स पर सन्तोष कर लिया था । हसनदीन समझता है कि सेठ को पहचानने में वह धोखा खा गया है और खन्ना पक्का कंजूस है । वह समझ लेता है खन्ना जो संपन्नता और उदारता का ढोंग रचता है वास्तव में वह बहुत क्षुद्र और अनुदार प्रकृति का व्यक्ति है । वह सोचता है

कि अब वह आगे नहीं बढ़ेगा । वह खन्ना साहब से यह बात कहता भी है । लेकिन खन्ना याद दिलाता है कि हसनदीन ने उन्हें अफराहट और फरोजन लेक तक लेने का वादा किया था और उसकी बात को मानकर खन्ना उसके साथ चल पडा था इसलिए उसे उन लोगों को ज़रूर वहाँ तक पहूँचाना होगा । नहीं तो वह उसे एक कौडी भी न देगा । इस प्रकार खन्ना हसनदीन को जबरदस्त अलपत्थर तक ले जाता है । शाम तक हसनदीन को बुखार आ जाता है । उसे सिरदर्द और जुकाम होने लगते हैं । रास्ता तो बर्फ से भरा है, फिसलनेवाला है और उसे पार करना भी मुश्किल है । हसनदीन ठीक से खडा भी नहीं हो पाता । इन सब कठिनाईयों के बावजूद भी हसनदीन उन्हें फरोजन लेक तक ले जाता है । अफरावट पहूँचने पर खन्ना अपने बीवी-बच्चे का फोटो खींचता है और वे बर्फ गाडियों पर नीचे उतरते हैं । बीच में खन्ना यह जान लेता है कि उसने अपने कैमरा स्टैंड चोटी पर छोडा है । वह हसनदीन को स्टैंड लेने के लिए वापस भेजता है । हसनदीन हड्डी-तोड परिश्रम से चोटी पर जाता है और स्टैंड की खोज करता है लेकिन नहीं मिलता है । इतने में खन्ना और परिवार नीचे जा चुके थे और उनकी गाडी अभी जानेवाली थी । नीचे आने पर हसनदीन को हरनामसिंह नामक बेईमान सिपाही पाँच-सात थप्पड और लात-घूँसे जमाकर उसे हवालत में भेज देता है । हसनदीन के 40 रुपये की मज़दूरी के बदले 17 रुपये वह हरनामसिंह के हाथ थमाता है । स्टैंड तो खन्ना के बैग में ही था । 17 रुपये से आठ रुपये हरनामसिंह ने ऊपर के अफसरों को भिजवाता हैं और शेष नौ हरनामसिंह और उसका साथी बाँट लेते हैं । और वे हसनदीन की पत्नी से कहते हैं कि वह कहीं से पचास रुपये देने पर ही हसनदीन की रिहाई हो सकती है क्योंकि सरकार के पैसेंजरों को तकलीफ देगी तो पैसेंजर आयेंगे नहीं और घाटी का लोग भूखों मरेंगे । इसलिए स्टैंड तो खन्ना को खरीदकर देना ही पडेगा ।

हसनदीन की जीवन गाथा द्वारा अश्क जी कश्मीरी मज़दूरों के जीवन के संघर्ष, गरीबी और उनके जी तोड परिश्रम और उन पर किये जानेवाले अत्यन्त घृणित शोषण की प्रवृत्ति को चित्रित करते हैं । लोग कश्मीर को विलास और रोमांस का क्षेत्र मानते हैं । वे वहाँ के मज़दूरों के संघर्षपूर्ण जीवन की समस्याओं से परिचित नहीं । कश्मीर के घोडेवान खुशी बेचनेवाले हैं लेकिन उनके जीवन तो इस संसार की सारी खुशियों से वंचित है । हड्डी तोड मेहनत करने पर भी उनको पेट भर का भोजन नहीं मिल पाता है । आज के कश्मीरी निम्न-वर्गीय मज़दूरों की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । आज कश्मीर में दिखाई पडनेवाले विघटन की स्थिति का मूल कारण वहाँ के इस प्रकार का शोषण है । जब समाज में शोषण की प्रवृत्ति अतिरूढ हो जाती है तब वहाँ विघटन की स्थिति पनपना स्वाभाविक ही है । इंसान से इंसानियत किसी ओर चल गयी है । इस उपन्यास में अश्क जी मध्यवर्ग के खोखलेपन को उघाडकर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं । हरनामसिंह, खन्ना, रैना, क्रीम खां आदि पत्थर दिलवाले इंसान है उन्हें हसनदीन जैसे गरीबों को सताने में तनिक भी हिचक नहीं है । इस प्रकार कश्मीर के सौन्दर्य चित्रण के साथ साथ अश्क जी वहाँ के जीवन का एक नया पहलू प्रस्तुत करते हैं जो दूसरे लेखकों से अछूता रह गया है ।*

शहर में घूमता आईना

"शहर में घूमता आईना" अश्कजी का छठा उपन्यास है । 'गिरती दीवारें' उपन्यास के अधूरे अन्त को उपन्यासकार ने इस उपन्यास में आगे बढाया है । इसमें जालंधर के निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के एक-से-एक रोचक यथार्थ को और ज़िन्दगी के अनुभवों को एकसाथ पिरोया गया है ।

---

* अश्क के उपन्यास कथ्य और शिल्प - डा. वीणापाणि, पृ. 264

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित घटनास्थल और वातावरण पुराना ही है । अपनी साली नीला का विवाह एक अधेड़ एवं भद्दी आकृति के एकाऊन्टेन्ट से होता है । चेतन की एक भूल के कारण नीला को अब यह स्थिति हुई है । नीला से संबन्धित सारी घटनाएँ वह भूलना चाहता है । लेकिन वह ऐसा कर नहीं पाता । चेतन की आत्मा सदैव स्वयं को कोसती रहती है और अपनी बेचैनी को कम करने के लिए वह अपने चिरपरिचित शहर जालंधर घूमने निकल पडता है । उसे हमेशा अतीत की सुखद-दुखद स्मृतियाँ घेरती रहती है । कभी कभी वर्तमान अभाव की स्थिति भी उसे तंग करती रहती है ।

शहर में विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों से उसकी मुलाकात होती है । उनमें रामदिले जैसे विधुर पागल है जो इतने वृद्ध होने पर भी शादी के पीछे दीवाने है, अमीचन्द के जैसे चेतन के मित्र है जो चेतन को देखकर भी आँख चुरा लेते हैं । हकीम की उपाधि प्राप्त कर भोले भाले लोगों को ठगनेवाला दीनानाथ है, चेतन द्वारा लिखे शेरों को अपने नाम पर छपवानेवाला निश्तर है, बडी नौकरी मिलने के कारण चेतन को हेय दृष्टि से देखनेवाला हमीद है जो एक समय चेतन का घनिष्ठ मित्र था । ऐसे व्यक्तियों से चेतन के मन की हीन भावना और भी बढती जाती है । जालन्धर में चेतन साईकिल मेकानिक हरसरन जैसे मित्रों से भी मिलता है जो बचपन में चेतन का आत्मीय मित्र न होने पर भी चेतन को देखकर चेतन से गले मिलता है, अपने कठिन प्रयत्न के कारण कुशल बुकसेलर बननेवाला अमरनाथ है, पढाई में मूर्ख होने पर भी बाद में सिगरटों की दूकान चलाकर बनिया बननेवाला लालू है । जालन्धर के प्रसिद्ध गुण्डे लोग देबू, जगना, बिल्ला आदि के साथ भी चेतन कुछ समय बिताता है, जो बिना किसी बात की

दूसरों से लडाई करते हैं और यात्रियों की बेतुका हँसी मज़ाक करते हैं । उनकी करामतों में चेतन अपनी खिन्नता को भूलने की कोशिश भी करता है ।

बीचोंबीच जालन्धर के मशहूर शायर हूनर साहब और उसके साथियों से भी चेतन की मुलाकात होती है । हूनर साहब ऐसा एक व्यक्ति है जो दूसरों का दाद पाने के लिए जबरदस्ती उन्हें शेर पर शेर सुनाता है । हूनर चेतन को लाला बंसीराम के वहाँ ले जाता है, जो महात्मागाँधी के रहन सहन की झूठी नकल करता है । "परमानन्द की प्राप्ति" की डींग मारनेवाला ढोंगी जालंधरीभल जोगी के पास भी वे जाते हैं चेतन के मन में उन दोनों के प्रति निन्दा और आक्रोश की भावना है । चेतन उसे व्यक्त करता भी है ।

चेतन के पिता शादीराम के मित्र फकीरचन्द चाचा का स्नेहभरा व्यवहार चेतन को कुछ देर के लिए अपने दुख को भुला देने में सहायक भी है । जालन्धर में चेतन की मुलाकात दो नेताओं से भी होती है जिनमें एक सच्चे देशप्रेमी गोविन्दराम है और दूसरा असंब्ली के चुनाव के लिए तत्काल दूध की सी सफेद खादी कुर्ते में अपनी कारोबारी वृत्तियों को छिपाकर दो चार आने पर कांग्रेस की मेम्बरी खरीदनेवाला सेठ हरदर्शन है । जालन्धर की सारी घटनाओं से चेतन ऊब जाता है और वह घर लौटता है ।

घर आने पर चेतन समझ लेता है कि खन्नी परिवार की विधवा भागो और ब्राह्मण परिवार के तेलू की शादी के हिस्से को लेकर मुहल्ले में कोहराम मचा है । चेतन रात को सो नहीं सकता क्योंकि दिन के बीसियों दृश्य उसके दिमाग में चक्राकार जैसे घूमने लगते हैं । वह तो अपने दुख को भुला

देने के लिए बाहर गया था । लेकिन लौटने के बाद और अधिक दुख अनुभव करने लगता है । "..... अपनी हीन दशा पर उसे अव्यक्त क्षोभ हुआ । उसके मित्र उससे कहीं आगे बढ गये हैं । उसकी अपनी आर्थिक स्थिति क्या है ? ... आर्थिक रूप से निरन्तर घाटे पर चलनेवाले एक समाचार-पत्र का जूनियर संपादक । ..... अखबार की उस चक्की ने उसके कलाकार को पीस दिया है ।"[20] वह महत्वाकांक्षी बन जाता है और अखबार की नौकरी छोडने का निर्णय लेता है । उसकी सरल स्नेहमयी पत्नी चन्दा भी बिना किसी विरोध के नौकरी छोडने की स्वीकृति दे दती है । नीला से संबन्धित सारी घटनाएँ वह चन्दा से कह देता है । पतिव्रता पत्नी चन्दा चेतन को पहले से अधिक प्यार करने लगती है और पत्नी की प्यार की छाया में वह शान्ती का अनुभव करता है ।

शहर में घूमता आईना" में कथाकार ने अनेक उपकथाओं को जुडा दिया है जो आपस में किसी प्रकार का संबन्ध नहीं रखती हैं ।* ये घटनाएँ उपन्यास को आगे बढाने में सहायक है । कथातत्व की जैसी कोई वस्तु तो पाठकों को इस उपन्यास में नहीं मिलती है लेकिन नायक के जन्म से लेकर अब तक के जीवन को प्रस्तुत करने में ये उपकथाएँ किसी न किसी तरह सहायक है । यहाँ चेतन एक आईना का काम करता है जिसमें जालन्धर की सारी घटनाओं की झाँकियाँ प्रतिबिंबित होती है । शहर के कोने कोने में वह आईना घूम रहा हैं इसलिए इस में वहाँ के छोटी से छोटी घटनाएँ भी प्रतिबिम्बित होती है । लेकिन वहाँ के मध्यवर्गीय जीवन को समग्र रूप में उपन्यासकार ने प्रस्तुत नहीं किया है । आईना का काम प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करना है और प्रतिबिम्ब आईने की बनावट के अनुसार व्यक्त और अव्यक्त होते रहते हैं । सकारात्मक

---

20. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - 457-458

* हम कहे आप कहो-डा. शुकदेव सिंह, डा. मोहन सपरा, डा. रणवीर राग़ा, डा. राजेन्द्र होकी, पृ. 92.

प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा नकारात्मक प्रतिक्रिया ही इसमें अधिक प्रस्तुत की गयी है । यह इसलिए है कि स्वयं चेतन एक ऐसा आईना है जो कमियों और दुखों से अन्दर ही अन्दर घेरा हो गया है । यहाँ आईना रूपी चेतन स्वयं आर्थिक एवं यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त है और ऐसा एक आईने में तदनुरूप प्रतिबिंब ही उभर सकते हैं मध्यवर्गीय जीवन के घिनौने रूप को ही चेतन ने अभी तक देखा है । दो तीन व्यक्तियों को छोडकर उससे जो भी मिलते हैं वे सब अभावग्रस्त, दुखी, प्रवंचित और पीडित है । फिर भी निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का निरूपण इस उपन्यास में अवश्य मिलता है । उनकी हीनावस्था, आर्थिक विषमता एवं सामाजिक रूढिवादिता का जीता-जागता चित्रण आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक बन पडा है । इस उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम संघर्ष, विधवा समस्या, वृद्ध-विवाह जैसी अनेक समस्याओं का चित्रण अत्यन्त मार्मिक बन पडा है

एक नन्हीं किन्दील

"एक नन्हीं किन्दील", "गिरती दीवारें" की कडी में जुडा हुआ तीसरा बृहद उपन्यास है । अपने आप में सम्पूर्ण होते हुए भी इस उपन्यास में "शहर में घूमता आईना" की कथा को आगे बढाने का प्रयास है । इसमें लेखक "शहर में घूमता आईना" की भाँति लाहौर के मध्यवर्गीय समाज का चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

शिमला में कविराज रामदास के शोषण के शिकार बनकर नायक चेतन जालन्धर पहुँचता है । वहाँ अपनी प्यारी साली नीला को एक अधेड विधुर की पत्नी के रूप में देखता है । भारी दिल से विदाई लेकर वह वापस

---

* हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डा. त्रिभुवन सिंह, पृ. 523.

जालन्धर आता है । लेकिन वह अधिक समय तक वहाँ नहीं रह सकता । वह लाहौर की ओर प्रस्थान करता है । लाहौर में उसे अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है । वहाँ मकान पाने के लिए भी उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है । वह एक नौकरी की भी तलाश में हैं । लाहौर में उसका जीवन संघर्षमय है । उसको अपने बड़े भाई की सहायता करनी पड़ती है जो एक डेंटिस्ट है और उसके साथ लाहौर में रहता है । चेतन अनेक पत्रपत्रिकाओं के दफ्तरों में काम करता है । अंग्रेज़ी-उर्दू का अनुवाद कार्य करता है, उपसंपादक बनता है । बीच में चेतन के भाई की पत्नी बीमार पड़ जाती है । उसके इलाज के कारण भी चेतन की परेशानियाँ बढ़ती रहती है । अन्त में भाभी मर जाती है ।

साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठा पाने के लिए चेतन अथक कोशिश करता रहता है । चेतन अपनी कहानियों का मज़ौदा तथा प्रकाशित रचनाओं का फाईल लेकर ऐसे एक प्रकाशक की तलाश में निकल पड़ता है जो उसकी कहानियों के संग्रह को छापकर रायल्टी के रूप में उसे कुछ रूपये दे सके । मुंशी चन्द्रशेखर से वह भूमिका लिखवाता है जो हिन्दी साहित्य का महान लेखक है । अनेक साहित्य-कारों से उसका परिचय होता है । साहित्यिक गोष्ठियों में वह भाग लेता है अनेक कठिनाईयों के बावजूद भी वह अपनी एक पुस्तक छपवा लेता है । हिन्दी साहित्यकारों के बीच पंडित धर्मदेव वेदालंकार, आचार्य देशबन्धु, नीरव, करुण, चातक, शुक्लाजी, किसलयजी आदि से उसका परिचय होता है कवि चातक उसका घनिष्ठ मित्र बन जाता है । चातक मंजरी मासिक का संपादक है । चातक चेतन से उसकी कहानी को मंजरी में प्रकाशित करने का वादा करता है । लेकिन बाद में उसे मुकर जाता है । बीच में धर्मदेव वेदालंकार की शादी के बहाने वह दिल्ली भी जाता है । धर्मदेव वेदालंकार की बनावटी, चातक जी के नारी के प्रति आकर्षण इन सबके कारण चेतन ऊब जाता है ।

बीच में चेतन का ससुर पागल हो जाता है और वह लाहौर के एक पागल खाने में भिजवाता है । सास तो लाहौर में एक धनी सेठ के घर में नौकरानी बनती है । कितने कहने पर भी सास अपने स्वाभिमान के कारण चेतन और चन्दा के साथ नहीं रहती है । चेतन अपनी सास के हठ के कारण अत्यन्त दुखी है । सास का ऐसी नौकरी करना चेतन अपमान की बात मानता है । इसको लेकर चेतन और चन्दा के बीच भी तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है और उन दोनों के संबन्धों में दरारें पडने लगती है । लेकिन बाद में जब चेतन समझ लेता है कि सेठ और सेठानी के घर में सास सन्तुष्ट है और उस घर को वह अपना ही घर समझती है तब वह अपनी सास की खुशी के लिए यह अपमान सह लेने के लिए तैयार हो जाता है ।

चन्दा के अच्छे व्यवहार से पति-पत्नी संबन्ध फिर दृढ हो जाता है । जब चेतन समझ लेता है कि सेठानी की भाँजी कृष्णा की सगाई अमीचन्द से होनेवाली है जो डिप्टी कलेक्टर बननेवाला है । चेतन और भी दुखी हो जाता है क्योंकि अमीचन्द और चेतन बचपन में तो मित्र थे लेकिन अब अमीचन्द में अहं की भावना है और उन दोनों में मित्रता का कोई भाव अब नहीं है । अखबार के दफ्तर में भी काम करना उसे असह्य बन जाता है क्योंकि उसका संपादक जीवनलाल कपूर उसे एक कर्मचारी के रूप में देखना नहीं चाहता है एक गुलाम के रूप में देखता है । चेतन की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय है । लेकिन उसके मन में अहं की जो भावना है इसमें कोई कमी नहीं आती है । उसके मन में अमीरचन्द से भी बडे बनने की आशा बनी रहती है । चेतन यह निर्णय लेता है कि वह एल.एल.बी करके सबजज बनेगा और बाद में सेशन्ज़ जज । इसी महत्वाकांक्षा को मन में संजोकर वह समाचार पत्र की नौकरी छोड देता है ।

उपन्यासकार इस उपन्यास में विभाजन पूर्व भारत के महानगर लाहौर में संघर्षरत नायक चेतन के कशमकश का चित्रण करते हैं । उसकी महत्वाकांक्षा अन्तर्द्वन्द्वों एवं उलझनों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । इसमें जीवन के तीन प्रमुख संचालक सूत्र रोटी, सेक्स और अहं की समस्याओं का चित्रण है और लेखक ने इनमें से अहं को महत्वपूर्ण सिद्ध किया है । इस उपन्यास में लाहौर की उर्दू पत्रकारिता की खूबीखामियों, आर्थिक स्थितियों, पत्रकार लोगों के जीवन स्तर आदि का सविस्तार चित्रण किया गया है । उपन्यासकार ने विश्व विद्यालयों में व्याप्त घांधली और कुचक्र पर भी करार व्यंग्य किया है । अश्क स्वयं साहित्यकार एवं पत्रकार रहे थे इसलिए जो चित्र उन्होंने खींचा है वह बहुत स्वाभाविक एवं सजीव बन पडा है । साहित्यिक क्षेत्र और पत्रकारिता के क्षेत्र से जो अनुभव उन्हें प्राप्त हुए है उसका जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में दिखाई पडता है ।

बाँधो न नाव इस ठाँव

"बाँधो न नाव इस ठाँव", "गिरती दीवारें" की चौथी कडी है । यह उपन्यास अश्कजी के अन्य सभी उपन्यासों से काफी बडा है और दो भागों में विभक्त है । प्रथम भाग में लाहौर के सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में नायक चेतन की तकलीफ और तनाव की स्थितियों का वर्णन है और दूसरे भाग में चेतन के शिमले के जीवन का वर्णन है । इस उपन्यास में उपन्यासकार ने तत्कालीन उच्च मध्यवर्गीय जीवन की क्रूरता एवं डघोरझंखी के चित्रण के माध्यम से तत्कालीन समाज की अनेक कुरीतियों पर प्रकाश डाला है ।

"भूचाल" के संपादक की नौकरी छोडकर चेतन एक अन्य नौकरी की खोज में हैं । घर में दो आना तक नहीं है इसलिए वह कुछ छपी सामग्री का

अनुवाद करता है ताकि उससे उसे कुछ पैसे मिलें । एक नौकरी मिलने की इच्छा से वह पण्डित रत्न, कवि चातक जैसे मित्रों के पास भी जाता है । लेकिन हर कहीं उसे नकारात्मक उत्तर ही मिलता है । चेतन निराश हो जाता है । समाज के प्रति उसके मन में घृणा की भावना उत्पन्न होती है और कोई भी छोटी मोटी नौकरी करने के लिए वह तैयार हो जाता है । वह दो रुपयों की विलायती रूमाल खरीदकर अनारकली में बेचने लगता है । पण्डित रत्न उसे देखता है और ऐसे एक युवा साहित्यकार एवं पत्रकार चेतन की यह दुर्गति देखकर वह दुखी हो जाता है और वह चेतन को चुन्नी भाई के वहाँ अनुवादक का काम दिलवाता है ।

पण्डित रत्न चेतन को यह सलाह देता है कि वह भी कोई सोसाईटी बनायें, अपने खर्च का इन्तज़ाम कर ले । पंडित रत्न के साथ वह सोसाईटी का आयोजन करने की कोशिश करता है । वे सोसाईटी का नाम "सोसाईटी फोर यू एण्ड मी" रखते हैं । इसके परिपत्र ब्रोशर और रसीदें छपवा लेता है और चेतन इसके सरपरस्तों की खोज में निकल पडता है । वह लाहौर के मशहूर जर्नलिस्टों, इंटलेक्चुलों और साहित्यकारों के पास जाता है और उसको उनसे विभिन्न प्रकार के अनुभव मिलते हैं । इनमें से कुछ लोग उसपर दया करके कुछ रुपये देते हैं फिर कुछ लोग उसे हँसी मज़ाक करते हैं । सोसाईटी में अपने बडप्पन को दिखाने की इच्छा के कारण कुछ लोग इसके सरपरस्त बन जाते हैं । अन्य कुछ लोगों के मन में मनोरंजन की इच्छा है । उस सोसाईटी में आनेवाली स्त्री लोगों से संबन्ध जोडने की इच्छा से अन्य कुछ लोग सोसाईटी का सरपरस्त बनते हैं । इस प्रकार इस मामले में उसे अनेक मीठे कडवे अनुभव प्राप्त होते हैं । चेतन समाज से प्राप्त उपर्युक्त अनुभवों के आधार पर अपने को ढालकर संभाल लेता है ।

एक दिन चेतन लाला हाकिमचन्द के पास भी जाता है जो एक सरकारी दफ्तर में सुपरिण्टेण्डेण्ट है । वह सोसाईटी का मेम्बर तक बनना नहीं चाहता है । चेतन लाला से समझ लेता है कि वह परिवार समेत पाँच महीने के लिए शिमला जा रहा है और वहाँ अपनी बेटी चन्द्रा के लिए एक ट्यूटर की खोज में हैं । चेतन चन्द्रा का ट्यूटर बनने के लिए तैयार हो जाता है । चेतन के बडे भाई उसे ऐसा करने से रोकता है ।

ट्यूशन की बात पक्की करके चेतन कर्ज लेकर वहाँ जाने के लिए बिस्तर तथा कपडों की व्यवस्था करता है । इस कार्य में हूनर साहब उसकी सहायता करता है । चार महीने के लिए हूनर को सोसाईटी का जेनेरल सेक्रेटरी के पद दिलाकर सोसाईटी का सारा कार्य चेतन अपने मित्र हूनर के कंधों पर सौंप देता है, जो एक मशहूर शायर है । उद्घाटन समारोह में ही चुनाव भी होता है । भविष्य में लाला से मिलनेवाले चेतन से कानून पढने की महत्वाकांक्षा मन में संजोकर वह चन्द्रा को "हिन्दी रत्न" पढाने के लिए लाला परिवार के साथ शिमला का प्रस्थान करने का निर्णय लेता है ।

"बाँधो न नाव इस ठाँव" के दूसरे भाग में चेतन के शिमला जीवन का वर्णन है । चन्द्रा को पढाते हुए चेतन को बहुत ही दुख-सा होता है क्योंकि वह उन्मादी लडकी पढाई में ध्यान नहीं देती है । चेतन जानता है कि चन्द्रा सुन्दर है और उसने अनेक ट्यूटरों को इसके पहले ही पिटवाया है । इस चिन्ता के कारण चेतन चन्द्रा के साथ अपने व्यवहार में सतर्क रहता है ।

लाला हाकिमचन्द और उनके साथी क्लर्कों के साथ चेतन एक दिन प्रास्पेक्ट हिल की पिकनिक पर जाता है और चेतन समझ लेता है

कि वे सब क्रूर है, अश्लील फूहड मज़ाकें करनेवाले बेतुक लोग है । इनके सीमित एवं संकीर्ण स्वभाव से चेतन पूर्ण रूप से परिचित हो जाता है । चेतन चन्द्रा की ट्यूशन तथा शिमले के प्राकृतिक दृश्यों में लीन होकर अपना समय बिताना चाहता है ।

लाला हाकिमचन्द और उनके मित्रों के साथ चेतन सी.पी.मेले देखने जाता है । चेतन पहाडी गीत बहुत पसन्द करता है इसलिए वहाँ वह कुछ पहाडी गीतों को संकलित करता है । लेकिन परिस्थितिवश पुलिस की एक गलत-फहमी के कारण उसे एक रात जेल में बिताना पडता है । वहाँ वह एक रात का नरकतुल्य जीवन किसी न किसी प्रकार सह लेता है । पुलिस उसे प्रातःकाल ही छोड देती है । जेल से चेतन को मुक्त कराने के लिए लाला ने कोई भी प्रयत्न नहीं किया था । लेकिन चेतन का घर आने के बाद लाला यह अभिनय करता है कि उसकी सिफारिश से ही जेल से चेतन मुक्त हुआ था । घर लौट आने पर सभी चेतन से एक विशेष प्रकार का व्यवहार करते हैं । लेकिन चन्द्रा का मन उसके प्रति सहानुभूति से भर जाता है । चन्द्रा का चेतन के प्रति आकर्षण बढता रहता है । चेतन अधिक परेशान हो जाता है और वह निर्णय लेता है कि वह कभी भी इस जाल में नहीं फँसेगा । वह सोचता है कि उसे यह ट्यूशन छोडकर चले जाना चाहिए ताकि चन्द्रा के पहले ट्यूटरों की भाँति न तो पिटे और न ही पिटने का अवसर दें । अपनी इस बुरी हालत के बारे में चेतन चन्दा के पत्र में इस प्रकार लिखता है "लगता है, जैसे मैं चूहेदानी में फँस गया हूँ ।..... लेकिन मैं, इन दो-ढाई महीनों में अच्छी तरह समझ गया हूँ - कैसे मैं, बिना कुछ किये भी, पिट सकता हूँ ।"[21]

---

21. बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग ।। - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 347

इसी बीच चन्द्रा के दादा उस घर आते हैं और चेतन अधिक सतर्क हो जाता है । एक दिन चेतन चन्द्रा से अपने वापस जाने की बातें कहता है तो चन्द्रा उससे अनेक प्रश्न पूछती रहती है । दादा ये सब सुन और देख रहे थे और दादा अपनी दामाद लाला से सारी बातें कह देते हैं । लाला चन्द्रा को बुरी तरह पीटता है । लाला चेतन को भी डाँटता है । चेतन धैर्य धारण करके सारी सच्ची बातें कह देता है और लाला को समझाता है कि वह निरपराध है । लाला चेतन से क्षमा माँगता है । चेतन दूसरे दिन ही शिमले छोडने का फैसला कर लेता है । लाला हाकिमचन्द चेतन को अस्सी रुपये देने के बजाय साठ रुपये ही देता है । चेतन को हवालत से छुडाने के खर्च के नाम पर वह बीस रुपये काटता है । लाला से अपनी मेहनत के पैसे के लिए लडने के बदले चेतन, शिमले के व्यक्तियों को लाहौर की सोसाईटी के सरपरस्त बनाकर दस-दस रुपये लेकर सन्तुष्ट हो जाता है । बाद में उसको इस बात पर दुख भी होता है । चेतन निर्णय लेता है " वह अपने को इन छोटी-छोटी बातों, छोटे-छोटे अपमानों से नहीं भटकने देगा । जैसे भी होगा, वह कानून पढेगा ; कम्पटीशन में बैठेगा ; जज बनेगा और न्यायपूर्ण फैसले देगा ।..... अपने अवकाश के समय वह कहानियाँ लिखेगा, जिनमें वह अपने इर्द गिर्द फैले जुल्म और अत्याचार और एक्सप्लॉईटेशन का पर्दाफाश करेगा ।"[22] लाहौर लौटते वक्त प्रकृति को आनन्द उठाने के उद्देश्य से वह टैक्सी की अगली सीट पर बैठता है लेकिन थोडी ही देर बाद वह अनजाने अपने जीवन की समस्त परेशानियों से मुक्त होकर सोने लगता है ।

इस उपन्यास में अश्क जी एक ओर उच्च मध्यवर्गीय लोगों की उपेक्षा भरे व्यवहार का चित्रण करते हैं तो दूसरी ओर बेरोज़गारी से पीडित

---

22. बाँधो न नाव इस ठाँव - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 540

मध्यवर्ग के उन युवकों के तकलीफों को प्रस्तुत करते हैं जिन्हें अपनी ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए ठगने के नये तरीकों को अपनाना पड़ता है । इसमें ऐसे अनेक प्रसंग आए है जिनके द्वारा पाठकों का ध्यान कथा सूत्र से खिसक जाता है जैसे रणवीर की शादी, बाबा की चमत्कारपूर्ण बातें, सी.पी.मेले आदि । कथानक के विकास के लिए ऐसे प्रसंग उपयोगी नहीं है । अश्कजी ने स्वयं कहा है कि चेतन की जीवन गाथा प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उन्होंने एक ही नायक चेतन से संबन्धित चार उपन्यास लिखे हैं । "गिरती दीवारें" से लेकर "बाँधो न नाव इस ठाँव" तक के उपन्यासों में उपन्यासकार ने एक ही नायक चेतन की जीवनगाथा को दुहराया है और इस श्रृंखला के अन्तिम उपन्यास "बाँधो न नाँव इस ठाँव" में भी वे उसकी जीवन गाथा का पूर्ण नहीं कर पाये हैं । सब जज बनने की महत्वाकांक्षा उस पर थोंपकर उन्होंने चेतन को असहाय छोड दिया है इसलिए ऐसा लगता है कि पाठकों पर यह उपन्यास अधिक प्रभाव डाल नहीं सका है ।

निमिषा

"निमिषा" अश्क जी का अन्तिम उपन्यास है । इस उपन्यास की मूल समस्या अनमेल विवाह की समस्या है । अनमेल विवाह से बर्बाद हो जाने वाले युवा जीवन का यथार्थ चित्रण इसमें हुआ है ।

निमिषा एक अनाथ युवती है । उसका बचपन सुखभरा था लेकिन माता पिता की अकाल मृत्यु ने उसे अनाथ बना दिया । वह बी.ए. बी.टी है और नौकरी की तलाश में है । कवि सम्मेलन में वह युवाकवि गोविन्द की गज़ल सुनकर उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है । गोविन्द कवि ही नहीं चित्रकार भी है । बाद में गोविन्द से मिलने की इच्छा से वह एक चित्र प्रदर्शनी

देखने जाती है । वहाँ भी वह गोविन्द को देखती है लेकिन उससे परिचय स्थापित नहीं कर पाती । वह अपनी सहेली कनक से समझ लेती है कि गोविन्द एक विधुर है । डेढ-दो वर्ष की लंबी बीमारी के बाद उसकी पत्नी का देहान्त हो गया था । उसका एक लडका भी है और गोविन्द ने अपने सारे चित्रों में अपनी स्वर्गीया पत्नी को ही सजीव कर दिया है । गोविन्द देवनगर में आर्ट-टीचर है । आठ रूपया मासिक वेतन पाता है और अन्य कहीं दूसरी नौकरी की खोज में है ।

निर्मिषा रेनाला में एक प्रायमरी स्कूल की हेडमिस्ट्रस बन जाती है । गोविन्द से संपर्क स्थापित करने की इच्छा से रेनाला पहुँचते अपरिचित होने पर भी पत्र के द्वारा वह गोविन्द से संपर्क स्थापित करती है । गोविन्द जल्दी ही इसका जवाब देता है । दोनों पत्र व्यवहार के माध्यम से अपने अपने सारे जीवन को एक दूसरे से परिचित कराते हैं । पहले पत्रों में वे कविता या चित्ररचना की चर्चा करते रहते थे तो अन्त में ये सब गायब होकर उनका परस्पर संबन्ध इतना बढ जाता है कि वे अपने वैयक्तिक मामलों के बारे में ही अपने पत्रों में लिखने लगते हैं । गोविन्द के पत्रों से निर्मिषा को पता चलता है कि उसकी सगाई कहीं हुई है लेकिन वह लडकी माला तो गोविन्द की मनपसन्द नहीं पत्र से पता चलते हैं कि गोविन्द ने एक दूसरे स्कैंडल से अपने को बचाने के लिए यह सगाई की थी और उसने लडकी को देखा तक नहीं है । माला उसकी भाभी के रिश्ते की है । माला तो सभ्यता से दूर छिटके हुए एक कस्बे में पली हुई लडकी है । गोविन्द ऐसी एक पत्नी को चाहता है जो उसे कला की ऊँचाईयों तक ले जाने में योगदान दे सके । गोविन्द यह मान बैठता है कि माला में इसी प्रकार की कोई क्षमता नहीं होगी लेकिन वह इस सगाई को तोड नहीं सकता ।

वह अपने पारिवारिक बन्धनों को काटने में असमर्थ है । गोविन्द और निमिषा के बीच अनेक मुलाकतें होती है और उनका संबन्ध तूफान की गति से बढता है ।

गोविन्द अपने बडे भाई से कई बार सगाई तोडने को कहता है । लेकिन भाई तो गोविन्द की शादी निमिषा जैसी एक लुतरी लडकी से कराना नहीं चाहता है । भाई-भाभी उसे यह विश्वास दिलाता भी है कि उसकी भावि-पत्नी निमिषा से अधिक सुन्दर है । एक कलाकार होने के नाते गोविन्द के मन में सुन्दरता की ओर झुकाव है और वह सोचता है कि निमिषा अधिक सुन्दर तो नहीं है । भाई यहाँ तक कहता है कि यदि उसे बाद में लडकी पसन्द न आयी तो वह उसे छोडकर देवनगर लौट सकता है ।

फिर भी एक दिन सहसा गोविन्द निमिषा के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है । वह निमिषा से कहता है कि उसी दिन आर्य समाज मन्दिर में वे शादी करें । वह निमिषा से चोरी-चुपके विवाह करना चाहता हैं । लेकिन निमिषा को ऐसा विवाह पसन्द नहीं हैं । निमिषा तो गोविन्द से एक दिन की अवधि माँगती है । गोविन्द कहता है कि अगले दिन कुछ न हो सकेगा । निमिषा समझ लेती है कि गोविन्द पुरुष होकर भी कायर है । गोविन्द की कमज़ोरी पर उसे गुस्सा आता है । वह जानती है कि भावुकता में ऐसा एक विवश और मज़बूर आदमी को अपनाना अच्छा नहीं है और ऐसे एक व्यक्ति से प्रेम संबन्ध स्थापित करके उसने गलती की है । माला से गोविन्द की शादी होती है । शादी के बाद गोविन्द समझ लेता है कि उसकी शादी उस लडकी से नहीं हुई है जिसे उसकी भाभी ने उसके लिए देखा था । और लडकी के लोगों ने उसका साथ धोखा दिया है ।

भाई गोविन्द से कहता है कि यदि उसे लडकी पसन्द नहीं है तो वह देवनगर भाग सकता है और बाकी सब कार्य वह ही सुलझा लेंगा । लेकिन गोविन्द तैयार नहीं है । गोविन्द का मन माला के प्रति आर्द्र हो जाता है । क्योंकि वह सोचता है कि यदि गोविन्द उसकी उपेक्षा करेगा तो माला दुखी हो जायेगी और वह माला के सपनों को तोडना नहीं चाहता है । बाद में गोविन्द समझ लेता है कि माला असुन्दर ही नहीं पर परम मूर्ख भी है । निभिषा तो बहुत दुखी है लेकिन वह अपने को अति भावुकता में बहने नहीं देती गोविन्द की शादी के बाद भी वह उससे स्नेहभरा निस्संकोच व्यवहार करती है और गोविन्द को आश्वासन दिलाती है । गोविन्द के घरवाले भी माला को पसन्द नहीं करते हैं । इसलिए गोविन्द का मन फिर अपनी परिणीता के लिए दयार्द्र हो उठता है । वह अपनी पत्नी के साथ समझौता करने की कोशिश भी करता है । लेकिन उसका सारा परिश्रम विफल हो जाता है । गोविन्द समझ लेता है कि माला को संस्कृत बनाना बहुत कठिन ही नहीं असंभव भी है । माला की काम-क्षुधा को कम करना भी उसे मुश्किल हो जाता है । गोविन्द तो माला को छूना तक नहीं पसंद करता है । वह माला से शारीरिक या मानसिक संबन्ध स्थापित करना नहीं चाहता है । गोविन्द अपने आप को यह कह कर सान्त्वना देता है कि संसार में कवि या कलाकार अक्सर दुखी ही रहते हैं ।

गोविन्द अकेला देवनगर चला जाता है । अपनी कुरूप फूहड पत्नी को साथ लेकर देवनगर जाने में उसे संकोच होता है । देवनगर से गोविन्द माला को पत्र लिखता है । वह माला को यह सलाह देता है कि माला भी स्वप्रयत्न से पढी-लिखी हो जाएँ और सुसंस्कृत हो जाएँ और वह उसकी मनपसन्द लडकी नहीं है इसलिए वह उसके साथ रहने की जिद न करें । पत्र पढने के बाद

माला गोविन्द की माँ और भाई के साथ देवनगर पहुँचती है । वहाँ भी माला के व्यवहार से वह ऊब जाता है । वह अपनी उन्मादी पत्नी से मुक्ति पाना चाहता है । गोविन्द द्वारा खुलकर वितृष्णा प्रकट करने पर भी माला पर कोई असर नहीं पड़ता है । माला अपने पति से जो कुछ चाहती है वह उसे प्राप्त नहीं होता है । गोविन्द माला को अपनी माँ के पास भेजता है । वह अपनी पत्नी से चिरकाल के लिए छुटकारा पाना चाहता है । उसके मन में अब भी निमिषा के प्रति प्यार है । एक धनी परिवार के बच्चों के ट्यूशन के लिए गोविन्द बैंगलूर जाना चाहता है लेकिन नौकरी से इस्तीफा देने में उसे संकोच है । वह आत्महत्या की बात भी सोचता है । माला से गोविन्द को पता चलता है कि माला गर्भवती है । लेकिन गोविन्द तो बच्चा नहीं चाहता है क्योंकि एक गरीब आर्ट टीचर होने के नाते गोविन्द बच्चों को बहुत लग्ज़री मानता है । इसलिए गोविन्द माला से उस बच्चे को नष्ट करने के लिए कहता है । लेकिन माला तैयार नहीं होती । गोविन्द स्कूल नहीं जाता है । वह शाम को स्कूल जाता है और प्रिंसिपल से झगड़ा करता है । घर पहुँचने पर उसे "कारण बताओ" नोटिस मिलता है वैसे मन ही मन वह यही चाहता था । अपने असफल प्रेम की चोट को लेकर वह बैंगलूर चलने का निर्णय लेता है ।

इस उपन्यास में अनमेल विवाह ही चर्चा का विषय बना हुआ है । लेखक की दृष्टि में इसका मुख्य कारण स्त्री की अशिक्षा है । वह पढ लिखकर सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनने के बदले अपनी शादी के समय तक पति की प्रतीक्षा में बैठी रहती है । हमारे देश की अधिकांश औरतें मानसिक, आर्थिक, धार्मिक या सामाजिक सभी रूपों से पुरुषों पर आश्रित है । उपन्यासकार के अनुसार यदि लडकी पढी लिखी है तो नौकरी करके इज्ज़त के साथ ज़िन्दगी बिता सकती है

अपद्व को तो चाहे-अनचाहे एक ही व्यक्ति के साथ अपनी ज़िन्दगी गुज़ारना पडती है और पुरुष से अनेक कष्टताएँ झेलनी पडती है । लेखक हमारी पुरानी परंपराओं और जर्जर मान्यताओं का भी इस उपन्यास में खुलकर विरोध करता है । जिस समाज में विवाह के पहले भावी पति-पत्नी को एक बार भी देखने की इजाजत नहीं दी जाती उस समाज में पति-पत्नी का संबन्ध एक ढोंग मात्र है । हमारे इस देश में अनेक औरतें इस प्रकार दुख झेलती है वे अपनी इस स्थिति का दोषी भाग्य को बताकर रो रोकर अपनी ज़िन्द्गी गुज़ारती है लेकिन इस समाज को बदलने, हमारी पुरानी मान्यताओं को तोडने का प्रयास कोई भी नहीं करता है ।

अश्क ने इस सोद्देश्य परकता को उभारने के लक्ष्य से कथा का गढन किया है । लेकिन यह नहीं सोचा कि इस अनमेल विवाह में पुरुष का भी उतना ही दायित्व है जितना स्त्री का क्योंकि पढाई का कलाकार होते हुए भी गोविन्द में अपनी भावी पत्नी के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने की क्षमता नहीं । इसी कारण वधुमें हेरफेर होने लगती है । उत्तर भारत के कई परिवारों में इस तरह का हेरफेर और धोखे की शादी दोनों ज़ारी है । उपन्यासकार ने इस कुप्रथा और उसके परिणाम की ओर संकेत करके प्रतिबद्धात्मक रवैया अपनाया है । कुछ आलोचकों के मत में प्रस्तुत कथानक अश्क जी के वैयक्तिक जीवन से अधिक जुडा हुआ है । स्त्री, सौन्दर्य, शिक्षा और पुरुष जैसे विषयों के आपसी संबन्ध को विवाह की सीमा रेखाओं के अन्दर चर्चा का आधार बना हुआ है । इस उपन्यास की एक विशिष्टता वैसे कम सुन्दर स्त्रियों में दिखाई पडनेवाले व्यवहार की सुन्दरता और स्नेहमय आचरण मानव में दिखाई नहीं पडता जो एक सीमा तक अस्वाभाविक लगता है ।

अश्क के उपन्यासों के कथ्य के विश्लेषण के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उनके अधिकांश उपन्यासों में उन्होंने निम्न-मध्यवर्गीय जीवन को ही केन्द्र बिन्दु बनाया है । विभाजन पूर्व भारतीय समाज के अभावग्रस्त, दुखी प्रवंचित और पीडित निम्न-मध्यवर्गीय लोगों की पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को ही उन्होंने अपने उपन्यासों के विषय के रूप में चुना है । वे अपने उपन्यासों में तत्कालीन गरीब मज़दूरों पर शोषक वर्ग द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों का पर्दाफाश करते हैं । तत्कालीन सर्वोदयी संस्थाओं की विसंगतियों पर करारा व्यंग्य करते हैं और राजनैतिक नेताओं के खोखले राजनीति के स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं । पत्रकारिता से गहरा संबन्ध रखने के कारण उस क्षेत्र की खूबियों और खामियों को भी उन्होंने अपने उपन्यास का विषय बनाया है । उच्च मध्यवर्गीय जीवन की क्रूरता और बहाने बाज़ी का भी चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है ।

उनके एक दो उपन्यासों की कथावस्तु अस्वाभाविक एवं अयथार्थ पूर्ण लगती है फिर भी उनके अधिकांश उपन्यासों के कथ्य यथार्थपूर्ण ही लगते हैं और अपने उपन्यासों में रोचकता लाने के लिए उन्होंने अनेक छोटी-बडी घटनाओं का समावेश भी किया है । कहीं कहीं ये घटनाएँ मुख्य कथानक को पुष्ट करने में सहायक हैं लेकिन कहीं कहीं इनकी विवरणात्मकता पाठक के लिए असहनीय बन जाती है । संक्षेप में अपने उपन्यासों में अश्क एक ऐसे लेखक के रूप में उभरते हैं जो कथ्य की स्थूलता के आधार पर स्थितियों की गहनता को पाठक तक ले जाने की कोशिश में लगे हुए हैं ।

अश्क के उपन्यासों के पात्र और उनकी मानसिकता

औपन्यासिक रचना में पात्र-संकल्पना की बडी विशिष्ट भूमिका होती है । पात्र और मानसिकता पर ध्यान दिये बिना रचनाकार की संवेदनाओं का गहराई से अध्ययन नहीं हो सकता । वैसे लेखकीय वैचारिकता का संप्रेषण एक सीमा तक पात्र ही करते हैं । वैविध्यात्मक मानसिकता से अनुप्रेरित होने के कारण पात्रों के आचार विचारों में अनेक रूपता होना स्वाभाविक है । कथानक को उभारनेवाली घात-प्रतिघात की स्थितियों के बीच से उभरनेवाले पात्र जीवन्तता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । इसलिए पात्र संरचना और पात्रों की मानसिकता दो ऐसे तथ्य है जिनकी गहराई में प्रवेश करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

अश्क के उपन्यासों में आनेवाले पात्र वर्ग दृष्टि से सीमित दायरे में आबद्ध होते हुए भी कार्य कलापों की दृष्टि से व्यापक अनुभवों को प्रस्तुत करते हैं । ये अनुभव समसामयिक समाज की स्थितियों से जुडे हुए हैं । वस्तुतः पात्रों की मानसिकता को समझने के लिए उनकी शैक्षिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थितियों का ब्यौरा प्रस्तुत करना भी अनिवार्य हो जाता है । अश्क ने ऐसे पात्रों को हमारे सामने रखा है जो आर्थिक दुर्दशा के शिकार है और उत्पीडन के द्वार पर कंकाल बनकर खडे हुए है । तत्कालीन सामाजिक आर्थिक और वैयक्तिक दृष्टियों का परिचय देने में अश्क के पात्र अपनी भूमिका अदा करने की कोशिश में लगे हुए हैं ।

सितारों के खेल

"सितारों के खेल" के पात्रों की संख्या बहुत कम है । इसके

सभी पात्र निम्न-मध्यवर्ग या उच्च-मध्यवर्ग से चुने गये हैं । इसमें अश्क जी ने पात्रों के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया है और इस उपन्यास के अधिक पात्र युवा-वर्ग के हैं ।

"सितारों के खेल" की नायिका है लता । वह उच्चमध्यवर्ग की एक शिक्षित नारी है । वह संवेदनशील है । उसने एक अतिभावुक हृदय पाया है । वह एक अस्थिर चित्तवाली युवती है । उसके सारे विनाश के कारण ही उसकी यह अतिभावुकता है । एक के बाद एक कर तीन पुरुषों से वह प्रेम करती है । लेकिन इन तीनों खेलों में वह हार जाती है । उसकी लालसा और अस्थिरता ही उस पर टूट पडनेवाली विपदाओं का कारण है । वह अपने पिता की इकलौती बेटी है । उसके पिता स्वतन्त्र विचारों वाले व्यक्ति है इसलिए बचपन में ही उन्होंने उसको काफी स्वतन्त्रता प्रदान की थी । इस आज़ादीनेउसके भविष्य को बुरी तरह से प्रभावित किया ।

स्वतन्त्र वातावरण में पलने के कारण हर विषय पर वह अपना स्वतन्त्र विचार रखती है । स्त्री पुरुष संबन्ध के बारे में उसका विचार है "पुरुषों को क्या अधिकार है कि वे स्त्री पर किसी तरह का अत्याचार करें । स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं है । ..... यदि पुरुष उससे दुर्व्यवहार करें तो उन्हें भी अधिकार है कि पुरुषों के साथ वैसा ही सलूक करें ।"[23] उसकी दृष्टि में सभी पुरुष वासना के दास है ।

---

23. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 58

कालेज में पढ़ते समय वह जगत से प्रेम करती है । वह बंसीलाल से घृणा करती है जो उसे प्रेम करता है । जगत का वास्तविक रूप प्रकट होने पर वह उससे नफरत करती है । अपनी ओर बंसीलाल के आत्मसमर्पण का भाव देखकर वह उसकी ओर आकर्षित हो जाती है और बंसीलाल की सेवा-शुश्रुषा करती है । लेकिन वह अस्थिर चित्तवाली है । बाद में डा. अमृतराय की ओर वह आकर्षित होती है और जब वह समझती है कि बंसीलाल के शरीर में नव जीवन आना बहुत मुश्किल है उससे छुटकारा पाने के लिए वह उसे विष दे देती है । वह कहती है "बंसीलाल को मारकर पाप किया या पुण्य यह मैं नहीं जानती, डाक्टर साहब । पर यह सब अच्छा ही हुआ ।"[24] ऐसा करने के बाद उसकी मानसिक पीडा असीम बन जाती है कि इसका शिकार बनकर वह कंकाल मात्र रह जाती है ।

वास्तव में लता के ऐसे भटकाव का यथार्थ कारण उसकी अतिभावुकता और अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग है । अमृतराय से उसका कथन यहाँ स्मरणीय है । "आप क्यों भटकेंगे, भावुकता छोड दीजिए, स्थिर होकर बैठ जाइए, किसी अनुरागमयी बेल की छाया में । भटकने के लिए आप नहीं बने, बंसीलाल था भटकने के लिए मैं थी भटकने के लिए । संसार-सागर को पार करने के लिए भावुकता की चप्पू काम नहीं आते ।"[25] लता के चित्रण के द्वारा लेखक यह बताना चाहते हैं कि आधुनिक शिक्षित लडकियों को प्रेम और व्यक्ति स्वतंत्रता के नाम पर एक के बाद एक पुरुष के पीछे भटक कर अपने युवा जीवन बर्बाद नहीं करना चाहिए ।

---

24. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 233
25. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 233

लता का चरित्र अत्यन्त अस्वाभाविकता से भरपूर लगता है कि इस पात्र का कोई विशिष्ट व्यक्तित्व नहीं है । उपन्यासकार ने अपनी कहानी को आगे बढाने के लिए मनचाहा मोड लाने का प्रयास किया है । भावुकता और भटकाव से भरपूर लता दूसरों को उनसे बचकर रहने का उपदेश देती है । अपने जीवन में जिन सिद्धान्तों का पालन वह नहीं कर पाई उसी के परिणाम से वह बेहद दुखी है । जो भी हो अविवाहित लता का बंसीलाल की पति भावना के साथ सेवा करना और सती अनसूया के समान इधर-उधर भटकना और अन्त में बंसीलाल को जहर देकर मारना उपहासात्मक ही लगता है । यह लेखक की अव्यवस्थित सृजन-कल्पना और अदूरदर्शिता का उदाहरण है । युवा पीढी की महिलाओं को सही रास्ता दिखाने के लिए भले ही ऐसा किया गया हो फिर भी पात्र चयन और रचना धर्मिता की दृष्टि से इसको स्वीकारा नहीं जा सकता ।

इस उपन्यास का अन्य एक प्रमुख पात्र है बंसीलाल । वह निम्नमध्यवर्ग का एक युवक है । निर्धन होकर भी वह एक मेधावी छात्र है । बंसीलाल अपने कालेज का एक प्रतिष्ठित छात्र है । वह बडा परिश्रमी है लेकिन भाव-प्रवण भी । कालेज के वादविवाद में जगत और लता के भाषण सुनने पर वह जगत के भाषण का रंग फीका करने के लिए उसके विचारों के विरुद्ध अपना भाषण प्रस्तुत करता है । वह लता की मीठी, मादक और ओजभरे भाषण से आकर्षित होता है मन ही मन लता को चाहने लगता है और जब वह समझ लेता है कि लता तो जगत की ओर आकर्षित है वह निराश हो जाता है । लता के प्रति उसका प्रेम एकांगी है और यह एकांगी प्रेम उसके संपूर्ण जीवन की दिशा को बदल देता है । वह अपनी प्रेयसी के लिए दीवाना है और लता के द्वारा उसके प्रेम निवेदन की उपेक्षा होने पर अपने उन्माद में वह आत्महत्या का प्रयास करता है

जिससे उसका जीवन नरकतुल्य बन जाता है । बंसीलाल अपने जीवन भर असंतुष्ट है और विषमताओं को झेलता रहता है । वह जीवन भर प्रेम के लिए तरसता रहता है लेकिन जीवन भर उसको सफलता प्राप्त नहीं होती । लगता है कि उसके जीवन पर शाप की कोई छाया मंडरा रही है । नियति की निर्दयता सदा उसका शिकार करती रहती है ।

डा॰ अमृतराय भी "सितारों के खेल" का एक प्रमुख पात्र है । वह चिकित्सक है लेकिन विचारों से बहुत दकियानुस है । अपनी पोज़ीशन से ज़रा झुकना उसके लिए संभव नहीं है । अनुशासन में वह विश्वास रखता है । उसके जीवन में तीन लडकियाँ आती है लेकिन एक ही उसकी दृष्टि में खरी नहीं उतरती है क्योंकि इन तीनों में से एक में भी एक आदर्श भारतीय स्त्री का रूप वह देख नहीं पाता । आधुनिक नारी में शर्म का नाम की चीज़ पाना उन्हें दुष्कर मालूम होता है । बंसीलाल की ओर लता की सेवा भावना और निष्ठा देखकर डा॰ अमृतराय लता पर मुग्ध होता है । लता को प्राप्त करने के लिए वह बंसीलाल को विष देना चाहता भी था । किन्तु यह कार्य लता के करने पर उसे लता से नफरत होने लगती है । वह सोचता है कि आज डा॰ अमृतराय को प्राप्त करने के लिए लता बंसीलाल को विष दे सकती है तो कल किसी दूसरे व्यक्ति को प्राप्त करने के लिए लता डाक्टर को विष दे सकती है । नारी के बारे में उसका विचार है "सुन्दरता और सलीके के अतिरिक्त एक तीसरी वस्तु भी है जो नारी में होनी आवश्यक है वह है वफादारी - अपने प्रेमी अथवा पति के प्रति प्रेम होने के साथ-साथ उन्नति तथा अवनति में उसी से लौ लगाये रखने की भावना ।"[26] लेकिन लता के उस कुकृत्य के बाद वह आहत हो जाता है । इस प्रकार अमृतराय

---

26. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ॰ 111 - 112

भावुक तो ज़रूर है लेकिन वह अति भावुकता में अपने को खो देना नहीं चाहता है । भावुकता के साथ ही वह भली-बुरी बातों का ध्यान भी रखता है । सूट-बूट धारी होने पर भी वह अपने विचारों से भारतीय है । वह नारी को पतिव्रता दासी के रूप में देखना चाहता है, न बराबर की संगिनी के रूप में ।

सितारों के खेल का अन्य एक प्रमुख पुरुष पात्र है जगत । जगत लता का पहला प्रेमी है । वह अपने छद्म व्यवहार द्वारा लता को अपने प्रेम में फँसाता है । वह नारी को केवल खिलौना समझता है । "कालेज के लडकों में लडकियों को देखने की, उनसे मित्रता पैदा करने के यत्न करने की, उस मित्रता का रुआब अपने हमजोलियों पर डालने की जो बीमारी-सी होती है, लता का प्रेम-पात्र बनने की कोशिश में भी उसीका परिणाम थी ।"[27] कालेज के वाद-विवाद में वह भारतीय वैवाहिक पद्धतियों को सराहता है उसके अनुसार "यदि आज विवाहित लोग त्याग और बलिदान की कला सीख लें, तो 95 प्रतिशत कठिनाईयाँ दूर हो सकती हैं ।"[28] उसके अनुसार पत्नी वह है जो अपने पति को देवता माने और उसकी आज्ञा वेदवाक्य समझे । जगत सोचता है कि अच्छी पत्नी बनने में लता सफल नहीं होगी क्योंकि लता के इस विचार से जगत परिचित है कि "स्त्री-पुरुष में कोई अंतर नहीं है । अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर काम करें, खायें, पहनें, घूमें-फिरें और बराबरी का व्यवहार करें ।"[29]

एक दो वर्ष वह लता के साथ प्रेम-संबन्ध रखता है उसके साथ घूमता-फिरता है । असल में उसका व्यवहार धोखे से भरपूर है क्योंकि पहले ही

---

27. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 57
28. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 25
29. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 58

किसी लडकी से उसकी सगाई हो चुकी थी और शीघ्र शादी होनेवाली थी । सामंती संस्कारों में पले युवक जगत एक पत्र द्वारा लता को माता-पिता के आगे स्वयं को विवश बताता है और उन दोनों का संबन्ध टूट जाता है । जगत ऐसे आधुनिक युवा प्रेमियों का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी प्रेमिकाओं के साथ कुछ काल तक संबन्ध रखने के बाद उनको धोखा देकर कुशलता से उससे बच निकलता है ।

इस उपन्यास का एक दूसरा नारी पात्र है राजरानी । वह बंसीलाल की छोटी बहिन है - वह त्याग और सेवा का मूर्तिमत रूप है । बंसीलाल की छोटी बहिन होने पर भी उसमें एक बडी बहिन का सा दायित्व दिखाई पडता है । बंसीलाल के प्रत्येक काम समय पर कर देना वह अपना कर्तव्य समझती है । उसके त्याग के उदाहरण अपने भाई के लिए शरीर का माँस पाँच बार देने में लक्षित होता है । उसके मन में डा॰ अमृतराय के प्रति मूक प्रेम है लेकिन जब वह समझ लेती है कि डा॰ अमृतराय लता को चाहता है वह उन दोनों के बीच बाधा बनना नहीं चाहती है । उसके जीवन में एक के बाद एक एक दुख आते रहते हैं । लेकिन जीवन में आनेवाले ऐसे तूफानों से वह नहीं डरती है और सन्तुलन रखती है । अपने भाई के शव को देखकर भी वह नहीं रोती है। नहीं बेहोश होती है । वह अपनी सेवा से दूसरों के मन जीत लेनेवाली है । लता की अनुपस्थिति में वह लता के पिता मलिक साहब की सेवा-शुश्रूषा करती है । उसके दुख को कम करने की कोशिश करती है और मलिक बाबू उसे पुत्रीवत् समझते हैं । इस प्रकार नायिका लता की अपेक्षा राजरानी का चरित्र अधिक प्रौढ और स्थिर दिखाई पडता है ।

लता के पिता मलिक साहब भी इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है । वे काफी वृद्ध हो चुके हैं लेकिन उनके विचार स्वतन्त्र और उदार है ।

उन्होंने लता को अपनी पुत्री के समान नहीं पुत्र के समान पाला है और अपनी मातृविहीन पुत्री को माँ और बाप दोनों का स्नेह और वात्सल्य भी दिया है । जब वे जानते हैं कि अपनी पुत्री जगत की ओर आकर्षित है तब वे जगत से लता की शादी कराना चाहते हैं । वे नहीं समझ सकते हैं कि जगत के मन में लता के प्रति जो प्रेम है वह वास्तविक नहीं है केवल वासनाजनित है । जब लता बंसीलाल के साथ तीर्थाटन को जाती है तब वह स्नेहमयी पिता अपने लडकी को बार बार रोकता है और समझाता है । लेकिन लता चली जाती है । लता के जाने के बाद मलिक साहब की तबीयत खराब हो जाती है । लता के अभाव में राजरानी की सेवा उन्हें नवजीवन प्रदान करती है । मलिक साहब राजरानी को पुत्रीवत् मानते हैं और लता के अभाव को भूलने का प्रयास करते हैं । बाहर से घृणामय व्यवहार करते समय भी अन्दर ही अन्दर उनका पितृ हृदय वात्सल्य से स्निग्ध रहता है । मलिक साहब के चित्रण द्वारा अश्कजी ने एक वृद्ध पिता के हृदय के द्वन्द्व को सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया है ।

इस उपन्यास की नायिका लता अपने विचार और व्यवहार में आधुनिक लगती है लेकिन बंसीलाल जैसे एक पंगु की सेवा-शुश्रुषा के लिए अपना युवा जीवन बर्बाद करना हमें अस्वाभाविक लगता है । बंसीलाल तो उसका पति नहीं प्रेमी मात्र है । ऐसे एक व्यक्ति के साथ एक लडकी का रहना और उसको लेकर घूमना नैतिकता की दृष्टि से ठीक नहीं लगता । बंसीलाल और रानी के लिए अपने पारिवारिक जीवन की उपेक्षा करनेवाली लता जैसी नारी के दर्शन हमारे समाज में नहीं हो सकता । वैसे लता का चरित्र और भी कई अस्वाभाविकताओं से भरपूर है औपन्यासिक घटनाओं की दृष्टि से इस पात्र का व्यवहार सामंजस्यपूर्ण नहीं लगता और किसी भी दृष्टि से लता हमारी सहानुभूति प्राप्त कर नहीं पाती और नारी के जिस रूप को वह प्रस्तुत करती है वह उच्छृंखल तर्कहीन और

अस्वाभाविक है । न स्त्री की ममता उसमें है न करुणा का भाव लगता है । सारे निर्णयों का विधान वह अपरिपक्व दृष्टि से करती है जो अविश्वसनीय लगता है । बंसीलाल का रात में अचानक लता के कमरे में पहुँचना और उसकी उपेक्षाभरी दृष्टि को देखकर आत्महत्या की कोशिश करना भी पाठकों को अस्वाभाविक लगता है । उपन्यास के नायक के रूप में चित्रित बंसीलाल उपन्यास के आधे हिस्से के बाद किसी विशेष भूमिका अदा नहीं करता है । वह रोगी बनकर लोगों को परेशान करता है । उसी प्रकार बंसीलाल की बहिन राजरानी को भी लेखक ने सभी परिस्थितियों में आदर्श पात्र बना दिया है । उसका चरित्र भी कृत्रिमता से भरपूर लगता है । अपने एकमात्र भाई बंसीलाल की मृत्यु पर भी अश्कजी उसे रोने तक नहीं देता है । उसी प्रकार डा. अमृतराय का डाक्टरी भूलकर बंसीलाल और लता के पीछे ऐसे घूमने की प्रवृत्ति भी हमें असाधारण सी लगती है । इस उपन्यास में अकृत्रिम रूप में चित्रित पात्र तो जगत है । वह पूर्णरूप से आज के ऐसे सामंती युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो एक के बाद एक लड़की को अपने प्रेम में फँसाकर बाद में उसे धोखा देकर चला जाता है ।

गिरती दीवारें

अश्क जी के उपन्यास "गिरती दीवारें" निम्न मध्यवर्गीय जीवन का दस्तावेज है ।* इस उपन्यास के पुरुष और नारी पात्र दोनों अपने वर्गगत वैशिष्ट्य के साथ उभारे गये हैं । इसके पात्रों की संख्या अधिक है । इस उपन्यास के मुख्य पात्र है चेतन, उसकी पत्नी चन्दा, चेतन के पिता शादीराम, चेतन की माँ लाजवती, भाई रामानन्द, चेतन की साली नीला, कविराज रामदास आदि ।

---

* मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास - भूप सिंह भूपेन्द्र, पृ. 71.

"गिरती दीवारें"का नायक है चेतन । आर्थिक अभाव एवं पारिवारिक संघर्ष के कारण उसके मन में बचपन से ही ग्रन्थियाँ पड गयी है । चेतन के पिता एक पक्का शराबी है और वह अपनी पत्नी और बच्चों को हमेशा मारता पीटता है । इसलिए बचपन से ही अपने पिता के प्रति चेतन के मन में सदैव के लिए एक आतंक, एक डर और एक तीव्र घृणा का भाव घर जमा बैठा है । बचपन से ही चेतन के मन में कवि, लेखक, चित्रकार और संगीतज्ञ बनने की प्रबल इच्छा है किन्तु परिस्थितियों के दबाव के कारण वह कुछ नहीं बन पाता । कला की ओर हाथ बढाने पर उसे असफलता ही मिलती है । लेखक के शब्दों में "वह एक साथ ही अच्छा कवि, लेखक, चित्रकार, संगीतज्ञ, अभिनेता, वक्ता, संपादक और न जाने क्या क्या बनना चाहता था।"[30] किसी न किसी तरह बी.ए. पास करके वह स्कूल मास्टर बन जाता है ।

चेतन अपने व्यक्तित्व को अपने में एक बडी चीज़ मानता है बचपन से ही उसके मन में अहं की भावना है । बचपन में अपने पिता से मारपीट खाने पर वह रोता नहीं " न जाने क्यों माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी, शायद उसके नन्हें से हृदय में कहीं नन्हा-सा अहं आ बैठा था और उसके अहं को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था ।"[31] उसमें सारे सामाजिक बन्धनों को तोडने की इच्छा है लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता । इसी कारण से ही उसको चन्दा से शादी करनी पडती है, अपने शराबी पिता की मारपीट के भय से । वह बहुत कमज़ोर आदमी है उसके मन में पिता के मित्र

---

30. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 518-519
31. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 431

देसराज, संपादक महोदय, कविराज आदि के प्रति आक्रोश है परन्तु वह निस्सहाय है । इसलिए वह छटपटाता है, कराह उठता है, मौन रूप से चीखता है, वह सदैव चोट खाता है । लेकिन प्रतिशोध नहीं करता । चेतन के जीवन की सबसे बडी ट्रेजडी है उसकी बढी हुई भाव प्रवणता और उससे जनित क्षोभ । उपन्यासकार के शब्दों में "यदि अनजाने में उससे स्वयं छल बन आता तो दूसरी ही क्षण अपने छल को जानकर आत्मग्लानि से उसका हृदय भर जाता । प्रतिक्रिया उसे दूसरे किनारे ले जा फेंकती ।"[32] इसलिए वह हमेशा केवल परिस्थितियों का पुतला बनकर रहता है ।

अपनी पारिवारिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं होने पर भी चेतन एक घरेलू व्यक्ति है । वह अपने माँ को बहुत प्यार करता है और अपने पास माँ, भाई, बीवी अथवा किसी घनिष्ठ मित्र की उपस्थिति उसे हमेशा अच्छी लगती है । माँ उसे सदैव सत्य बोलने, धर्म और पुण्य का काम करने की प्रेरणा देती है और पिता उसे उल्टी बात समझाते हैं । इसलिए बचपन से ही वह असामंजस में है । वह समझ नहीं पाता है कि माता और पिता इन दोनों में से किसकी बात माने । संकोच, संशय और हीनता उसके चरित्र के लक्षण है । उसकी निजता हमें उसके आचरण में नहीं चिन्तन में ही मिलती है । वैसे वह अव्यावहारिक व्यक्ति लगता है जो सोचता बहुत है करता कुछ नहीं ।

वह अपनी हीनता को गर्व का विषय मानता है । कविराज के व्यवहारों को सराहते हुए अपने मित्र अनन्त को चेतन ने पहले एक पत्र लिखा था

---

32. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 488 - 489

लेकिन बाद में कविराज की निर्दयता का शिकार बनने पर भी वह कविराज के बारे में अनन्त को नहीं लिखता है क्योंकि "वह अपने को मूर्ख न सिद्ध करना चाहता था । ऐसे करना कदाचित उसके अहं को ठेस पहुँचती थी ।"[33]

चेतन का व्यक्तित्व आर्थिक तथा सेक्स संबन्धी कुंठाओं से ग्रस्त है । भूख के बारे में चेतन का यह विचार इसका दृष्टांत है "भूख..... यदि कहीं यह भूख नहीं होती । पेट भरने की यह बेबसी न होती । तब उसे समाचार-पत्रों की, कविराज ऐसे शोषकों की गुलामी न करनी पड़ती । वह संसार के विशाल प्रांगण में स्वच्छन्द, स्वतंत्र घूमता ।"[34] उसकी शादी उसकी मन पसन्द लड़की से नहीं हुई थी इसलिए उसकी स्वाभाविक कामवासना उसकी पत्नी से ही नहीं उसके सामने आनेवाली कई स्त्रियों की ओर अग्रसर होती है । लेकिन वह जानता है कि वह जो कुछ कर रहा है वह अच्छा नहीं है । कभी कभी वह हीन-भाव से ग्रस्त है । अमीचन्द को शिमला में देखने पर वह सोचता है -"यह साला ज़रूर ई.ए.सी हो जायेगा " - उसने मन-ही-मन कहा । मैं तो ज़रा भी सरक नहीं पाया । मेरे प्रासादों की तो नींव भी नहीं जम पायी ।"[35] उसका मन हमेशा चंचलता का शिकार बना रहता है कभी अपनी पत्नी के प्रति मन में मोह पैदा होता है तो कभी अपनी साली नीला के प्रति उसके मन में प्यास जन्म लेती है । चेतन जैसे परिवार और परिस्थितियों की उपज लगता है। बचपन और किशोरावस्था में जो अनुभव प्राप्त हुए है उसी के कारण उसका आत्मविश्वास डगमगा जाता है ।

---

33. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 466
34. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 422
35. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 417

चेतन ऐसा एक व्यक्ति मात्र रह जाता है जो सभी प्रकार की परेशानियों को झेलने के लिए बाध्य हो जाता है । अपनी विषम स्थितियों में जीते हुए वह सारी सामाजिक स्थितियों को तोडना चाहता है । लेकिन वर्गीय मनोवृत्तियों से बंधे रहने के कारण वैसा नहीं कर पाता । निम्न वर्ग के युवक के मन में क्या क्या महत्वाकांक्षाएँ होती है क्या क्या संघर्ष उसे झेलने पडते हैं और उसके मन में किस प्रकार एक अलग संस्कार रूपायित होता है इसका यथार्थ चित्रण करने में उपन्यासकार सफल हुआ है ।

चेतन के माध्यम से उपन्यासकार ने मध्यवर्गीय युवा पीढी में दिखाई पडनेवाले एक नमूने को प्रस्तुत किया है जो अनोखे सपनों को संजोने में किसी के पीछे नहीं रहता लेकिन सपनों को साकार करने में सबसे पीछे रह जाता है । मध्यवर्ग के लिए चेतन एक प्रश्न चिह्न है जो हमेशा अपनी अव्यावहारिकता के कारण प्रश्न चिह्न ही बना रहता है ।

चेतन की पत्नी चन्दा इस उपन्यास की एक प्रमुख नारी पात्र है जो मध्यवर्गीय परिवार की निष्ठायुक्त महिला है । निम्न-मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार की वह लडकी अपने माता-पिता, सास-ससुर और बन्धुमित्रों का आदर करनेवाली है और उनके सुख के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार है । वह कुल की मर्यादा का पालन करनेवाली है । बाह्य रूप से वह अधिक सुन्दर नहीं है लेकिन कुरूप भी नहीं । बहुत पढी लिखी नहीं होने पर भी वह अत्यन्त सरल, भोली-भाली, उदार, विनम्र और सीधी-सादी है । सच्ची सात्विक हिन्दू महिला के समान मांस और शराब से उसे नफरत है । सुहागरात में ही वह चेतन से मांस खाना

---

* हिन्दी उपन्यास में व्यक्तिवादी चेतना - डा. एन. के. जोसफ, पृ. 112.

छोडने का वचन ले लेती है । वह अन्य पुरुषों से ऊँची आवाज़ में बातचीत नहीं करती और उनके सामने घूँघट डालती है । अपने संकोच के सीमित घेरे में रहना ही उसे पसन्द है । शादी के समय चेतन को चन्दा पसन्द नहीं है लेकिन बाद में उसके ऐसे गुणों के कारण चेतन उसे चाहने लगता हैं । उपन्यासकार के शब्दों में "अपने विवाह के प्रथम दिवस ही चेतन को मालूम हो गया कि चंदा - वह उसकी मोटी-मुटल्ली पत्नी - अपनी उस साधारण दिखाई देनेवाली सूरत-शक्ल के अन्तर एक अत्यन्त कोमल और भावुक हृदय रखती है ।"[36]

संकोचशील होने पर भी अपने पति की आज्ञा को वह सबसे बडा मानती है और उसका पालन करने में उसे तनिक भी संकोच नहीं है । चेतन के कहेनुसार वह घूँघट ओढ़ने की आदत तक छोडने के लिए तैयार है । चेतन के इच्छा के अनुसार वह आगे पढाई करती है, हारमोनियम सीखती है । अपने पति की उन्नति भी वह चाहती है । चंदा के ताऊ के शब्दों में "चन्दा उन लडकियों में से नहीं जो पति के मार्ग का रोडा बन जायें, सरल सीधी और समझदार लडकी है ।"[37] चन्दा को अपने पति पर अटूट विश्वास है । चेतन की कमज़ोरी पर, नीला के प्रति आकर्षण पर उसे तनिक भी संशय नहीं है । चेतन स्वयं अपनी कमज़ोरी की ओर उससे सूचित करने पर भी वह उसे कमज़ोर नहीं मानती है । पति पर चंदा के विश्वास के लिए उसका यह कथन द्रष्टव्य है । "मुझे इस बात का डर नहीं । वह मेरी छोटी बहन है ।..... उसकी इज्ज़त आपके हाथ में हैं । वह चंचल बालिका है, छोटी-मोटी गलती कर

---

36. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 225

37. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 55

सकती है, पर आप तो नहीं कर सकते ।"[38] इस प्रकार इस उपन्यास में चन्दा का चरित्र सामाजिक रूढ़ियों से घिरी हुई एक निम्न-मध्यवर्गीय हिन्दू पतिव्रता नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

"गिरती दीवारें" की अन्य एक मुख्य स्त्री पात्र है चेतन की माँ लाजवती । वह आजन्म शराबी पति की गाली, मारपीट तथा कामुकता का शिकार बनी रहती है । वह अपने पति के सारे अत्याचारों को चुपचाप सह लेती है और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना ही नहीं, सोचना भी पाप समझती है । घोर गरीबी में भी वह अपने बच्चों को किसी न किसी तरह पालती है । वह एक ममताभरी माँ है । वह अपने सारे दुखों का कारण पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानती है । यद्यपि उसका पति शराबी, जुआरी तथा निर्दयी है फिर भी वह अपने क्रूर पति को अपनी समस्त आस्था, श्रद्धा, प्यार और आदर-सत्कार देती है । उसका बचपन भी अभावग्रस्त एवं दयनीय था और अब भी उसके जीवन में सुख लेशमात्र के लिए नहीं है । उसमें अपार सहनशक्ति है । चेतन के शब्दों में "माँ विपत्तियों के निरन्तर प्रहारों के कारण तूफान के मध्य भी स्थिर खड़े होकर सोचने की शक्ति पा गयी थी ।"[39] विवाह के बाद उसको पति का ही नहीं पति की परदादी की भी क्रूरता का शिकार बनना पड़ता है । जब लाजवती बहू बनकर शादीराम के घर में आती थी तब शादीराम का मकान एक खण्डहर जैसा था लेकिन इससे भी वह सन्तुष्ट थी । शादीराम एक संशयग्रस्त पति था और लाजवती को अपने घर में बन्द करके वह बाहर जाता था । तब चक्की ही उसकी एकान्त की साथिन बनती है । बाकी समय वह व्रत, उपवास और कीर्तन में बिता देती है । इस

---

38. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 306-307
39. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 227

प्रकार लाजवती को ईश्वर में अटल विश्वास है । गरीबों के प्रति उसके मन में सहज अनुभूति है । लेकिन वह रूढिगत विचारों से ग्रस्त भी है । इस प्रकार उपन्यासकार ने लाजवती की एक ऐसी तस्वीर प्रस्तुत की है जिसमें आदर्श पत्नी, ममतामयी माँ और रूढिग्रस्त भारतीय नारी के सभी सहज भाव एकदम प्रतिबिंबित होते हैं । वस्तुतः वह मध्यवर्गीय भारतीय महिला का प्रतिनिधित्व करती है ।

इस उपन्यास का एक और प्रमुख पात्र है शादीराम । वह चेतन के पिता है । बचपनमें उसकी माँ का देहान्त हो गया था और पिता ने उसे एक बोर्डिंग स्कूल में भेजा था । माता-पिता के स्नेह से वंचित होने के कारण वह उच्छृंखल तथा उद्दंड हो गया । वह कर्कश स्वभाव का व्यक्ति है । बचपन ही से सिगरेट पीता था और मेट्रिक पास करते करते पक्के शराबी बन गया था । शादीराम स्टेशन मास्टर है । खाना-पीना और मौज उडाना ही वह जीवन का लक्ष्य मानता है । वह अपनी धर्मभीरु पतिव्रता पत्नी और पुत्रों को बिना किसी कारण डाँटता, मारता पीटता हैं । घरवालों को भी नहीं मुहल्ले वालों, सगे संबन्धियों को भी उसकी गालियों से भय है ।

क्रूर शादीराम के हृदय में बच्चों के प्रति प्रेम और कोमलता का भाव दबा पडा है । उपन्यासकार निम्नलिखित शब्दों में इसका समर्थन करता है । "पंडित शादीराम स्वभाव से क्रूर थे, कठोर थे और अत्याचारी भी उन्हें कहा जा सकता है । पर इसके साथ ही उनके हृदय में कहीं-न-कहीं उदारता और कोमलता भी यथेष्ट मात्रा में दबी पडी थी । ..... इसी कोमलता के कारण जब किसी मित्र अथवा निकट संबन्धी की बेवफाई उनके मर्मस्थल पर चोट पहुँचाती थी तो

बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो पडते थे ।"[40] अपने कई दुर्गुणों के बावजूद उसमें अपने बच्चों के प्रति उच्चाकांक्षाएँ भी हैं । अपने बच्चों से मुश्किल से मुश्किल सवाल पूछकर जवाब न मिलने पर झप्पड लगाना और गालियाँ देना उसका स्वभाव है । "लेकिन जितनी अधिक वे गालियाँ देते थे जितने अधिक वे कडकते थे, उतना ही अधिक उनके हृदय की दुर्बलता का पता चलता था ।"[41] यदि बच्चा सही उत्तर बता देता तो वह अपने बच्चों को चूम लेता । बडे होने पर भी चेतन को बचपन की इन सारी घटनाओं की याद है । "उनकी बडी-बडी मूँछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालों में चुभ जातीं, उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जाकर अपनी सारी कारगुज़ारी सुनाता ।"[42]

"गिरती दीवारें" की अन्य एक प्रमुख नारी पात्र चेतन की साली नीला है । वह चन्दा की चचेरी बहिन है । वह बहुत सुन्दर है साथ साथ चंचला भी । चेतन पहले जब चन्द्रा को देखने जाता है तब वयसंधी की लडकी नीला को देखता है और उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । अपने विवाह के बाद भी चेतन के मन में नीला के प्रति आग्रह है । नीला के मन में अपने जीजाजी के प्रति अपार प्रेम है । नीला त्याग, प्रेम, सहनशीलता और क्षमा की मूर्ति है । जब चेतन को सख्त बुखार आता है वह उसकी सेवा-शुश्रुषा करती है । गाँव की होने पर भी सभी बातों पर उसका अपना अलग विचार है । शादी-वादी में उसका विश्वास नहीं । ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हुए जीने के बिना ब्याह

---

40. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 210
41. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 209
42. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 429

नहीं करना उसे अच्छा लगता है ।

लेकिन बडी हो जाने पर वह प्रौढ बन जाती है । एक आदमी के फोटो दिखाकर उसकी बडी बहिन उसकी शादी तय कर लेती है । उसकी अभिलाषाओं पर पानी पड जाता है । फिर भी नीला के मन में अपनी बहिन के प्रति प्रतिशोध की भावना नहीं । उसके चेहरे पर राग-द्वेष, उल्लास-विषाद, सुख-दुख की कोई निशानी नहीं । विवाह के दिन वह तो ऐसे यन्त्रचालित सी घूमती है जैसे विवाह उसका अपना नहीं किसी दूसरी सर्वथा अपरिचित लडकी का है । "चेतन से वह कन्नी काटती रही । सहेलियों, बहनों, भावजों या पडोसिनों में घिरी रही । दो एक संक्षिप्त शब्दों या एक आध वाक्य के अतिरिक्त उन दोनों (चेतन और नीला) में कोई भी बात न हो सकी थी ।"[43] नीला के यह अनमेल विवाह चेतन को भी दुखी बना देता है । नीला के माध्यम से गाँव की होनहार, सुन्दर और स्वतन्त्र विचार रखनेवाली कली जैसी लडकी की ज़िन्दगी की महत्वाकाक्षाएँ और निराशा दोनों का चित्र अश्क ने प्रस्तुत किया है । पारिवारिक एवं परंपरागत आचारों के कारण बिना कोई प्रतिक्रिया के लडकी शादी के बन्धन में बंधी जाती है और कभी कभी लडकी के लिए यह बंधन आत्महत्या के समान ही होता है । नीला के माध्यम से लेखक ने सामाजिक चेतना में परिवर्तन लाने की आवश्यकता की ओर इशारा करते हुए नयी पीढी की महिलाओं को जागरण का सन्देश दिया है ।

कविराज रामदास भी "गिरती दीवारें" का अन्य एक महत्वपूर्ण पात्र है । उसका बचपन अभाव ग्रस्त था लेकिन वह तो पश्चिमी था । बचपन से

---

43. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 666

ही उसके मन में एक व्यवसायी बनने की प्रबल इच्छा थी और परिस्थितियों से विवश होकर वह वैध बन जाता है ।

रामदास यौन रोगों के विशेषज्ञ एक प्रसिद्ध वैध है । वह प्रत्यक्ष रूप से साहित्यकारों का बडा आदर सम्मान करता है । लेकिन इसके पीछे उसकी स्वार्थ भावना ही निहित है । कविराज चेतन को उसके सेहत अच्छे बनाने की बहाने उसे शिमला लाता है और शिमला में जो पुस्तक चेतन लिखता है वह वैध के नाम पर छपती है । इस प्रकार साहित्यकारों का खून चूस कर वह मोटा बन जाता है । वह "विवाह के भेद" नामक पुस्तक में विवाहितों का ही नहीं उनके बननेवाले बच्चों का स्वास्थ्य के बारे में भी इतनी भावुकता पूर्ण शैली में लिखते हैं कि पुस्तक पढते ही बच्चों के माता-पिता ज़रा सी बीमारी पर कविराज जी के दवाखाने भाग आयें अथवा रोग परीक्षा पत्र भर के डाक से उसकी औषधियाँ मँगाये । अपनी औषधियों के बिकाव के लिए वह अतिशयोक्तिपूर्ण विज्ञापन भी देता है और विज्ञापन की पंक्तियों को पढनेवाले युवक दूसरे ही दिन उसके पास पुस्तक के लिए पहूँच जाते हैं । मन्दिरों की दीवार पर भी उसकी पुस्तक की विज्ञप्ति वह लिखवाता है और यह कार्य आसानी से करने के लिए वह मन्दिरों और पूजारियों के प्रति झूठी श्रद्धा भी दिखाता है । चेतन कई बार उसके चंगुल से मुक्त होना चाहता है लेकिन कविराज तो इतना मृदुभाषी है कि चेतन किसी न किसी तरह उसे ठुकराकर चल नहीं पाता । चेतन की निर्धनता तथा स्वास्थ्यहीनता से वह काफी लाभ उठाता है । अन्त में चेतन भी यह कडवा सत्य समझ लेता है कि "वह तो उसी प्रकार कविराज का नौकर है, जिस प्रकार जयदेव और यादराम । कविराज दूसरे बीसियों शोषकों की तरह एक शोषक हैं, वे उसे शिमला केवल वह पुस्तक लिखवाने के विचार से लाये हैं ।"[44]

---

44. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 401

अश्कजी का कविराज एक चिरपरिचित मात्र है खासकर उत्तर भारत के शहरों में ऐसे वैधों की कमी नहीं है जो नीम हकीम होते हुए भी इश्तहारों के माध्यम से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और अपना कारोबार ज़ारी रहते हैं । यह वैध वैधशास्त्र से ज़्यादा छलकपड का प्रयोग करते हैं और हर आदमी को किसी न किसी बहाने रोगी सिद्ध करने का प्रयास करते रहते हैं । कविराज रामदास ऐसे वैधराजों का प्रतीक है ।

चेतन का बड़ा भाई रामानन्द भी "गिरती दीवारें" का एक महत्वपूर्ण पात्र है । पिता की डाँट-डपट, मार-पीट के कारण एक प्रकार की निष्क्रियता उसके व्यक्तित्व पर छा गयी है । यह मोटी अक्ल का युवक हैं । पढाई में उसकी रुचि नहीं है लेकिन कला के प्रति उसका सहज झुकाव है । लेकिन अपनी कला प्रतिभा को विकसित कराने का कोई अवसर उसे कहीं से प्राप्त नहीं है । वह एक बार घर से भाग निकलता है लेकिन शादीराम उसे पकड लाता है और चम्पावती से उसकी शादी कराता है । चम्पा उससे हमेशा झगडा करती रहती है । और मायके लौटने की धमकी भी देती रहती है । अपने बेकार समय काटने के लिए रामानन्द हमेशा ताश या शतंरज खेलता रहता है । अन्त में पत्नी के ताने और बेकारी से ऊबकर वह डेंटल कालेज से डिप्लोमा लेता है और प्रैक्टिस करने लगता है । लेकिन वहाँ भी वह सफल नहीं हो पाता है । इस प्रकार रामानन्द का जीवन भी हमेशा असफल ही रहता है । संघर्षों को झेलने की शक्ति उसमें नहीं है । चेतन के समान वह भी हमेशा आर्थिक विवशताओं से ग्रस्त है । रामानन्द जो कुछ है वह उसकी परिस्थिति की देन है । उसकी पारिवारिक या सामाजिक परिस्थिति ने उसे यों बना दिया है । गौण पात्र होने पर भी रामानन्द उपन्यास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

रामानन्द एक ऐसा चरित्र है जिसकी वैयक्तिक विषमताओं का एहसास पाठक को हमेशा होता रहता है । यौवन की क्रियात्मक अवस्था में निष्क्रिय बने रहनेवाले और माँ-बाप की दी हुई रोटी पर आराम से दिन गुज़ारनेवाले ऐसे पात्र हर कहीं दिखाई पडते हैं । अपने भविष्य का और ज़िन्दगी का उन्हें कोई बोध नहीं होता है । ये माँ-बाप के लिए बोझ भी है और समाज के लिए अभिशाप । डेंटिस्ट के रूप में इस पात्र को प्रस्तुत करते समय लेखक ने दन्त चिकित्सकों की बेवकूफियों का खूब पर्दाफाश किया है । जो भी हो सजीवता की दृष्टि से रामानन्द किसी से कम नहीं है ।

इस उपन्यास के अन्य छोटे-मोटे पात्र है कविराज का नौकर यादराम, उसकी पत्नी मन्नी, कविराज की पत्नी, कविराज का बेटा राजकुमार आदि । यादराम छः फुट लंबा, हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर व्यक्ति है उसका काम कविराज के दवा खाने के लिए औषधियाँ कूटना है । वहाँ अन्य कोई मशीन नहीं है । उसमें अपार कायिक शक्ति है । यादराम की पत्नी है मन्नी । उनके कोई बच्चे नहीं है । इसलिए मन्नी का काम कविराज के छोटे बच्चे का पालन-पोषण है । यादराम और उनकी पत्नी मन्नी पीडित शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं । कविराज यदि चेतन से उसकी बुद्धिशक्ति का शोषण करता है तो यादराम और उसकी पत्नी के शारीरिक शक्ति का । तुच्छ वेतन में ही वह उनको नौकर बनाता है । यादराम और मन्नी में भी प्रतिशोध की भावना नहीं है । वे मौन रूप से इस शोषण को सह लेते हैं । कविराज की पत्नी और बेटा भी अपनी सारी वर्गगत विशेषताओं के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं ।

कुल मिलाकर "गिरती दीवारें" उपन्यास के पात्र और उनकी मानसिकता विषयानुकूल स्थितियों के उद्घाटन में सहायक हुए है । चरित्र चित्रण

में व्यक्ति वैचित्र्य के न होते हुए भी ऐसी स्वाभाविकता है कि पात्र कभी भी हमारे मन से दूर नहीं होते । उपन्यासकार ने उन दीवारों को गिराना चाहा है जो इस व्यक्ति सत्य के आधार बनकर शोषण उत्पीडन और अलगाव को बढावा देते हैं ।

गर्भराख

इस उपन्यास के पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । समाज के अनेक क्षेत्रों का समाहित रूप प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार ने ऐसा किया है । 'गर्भराख' के पात्र पत्रकार, अध्यापक, कांग्रेसी, कम्यूनिस्ट आदि विभिन्न वर्गों से चुने गये हैं । इन सब के व्यवहार, आचार-विचार वेशभूषा आदि स्वाभाविकता से संपूर्ण है ।

इस उपन्यास की नायिका है सत्याजी वह एक अध्यापिका है । वह बाहर से समझदार लगती है लेकिन अन्दर से उतनी नहीं । अधिक सुन्दर न होने पर भी खादी की साडी में लिपटी हुई सत्याजी के प्रति प्रकट-अप्रकट रूप से अनेक पुरुष अनुरक्त है । वह कई बार जगमोहन को आर्थिक सहायता पहूँचाती है । वह तो बहुत चतुर है । इस सहायता के पीछे सत्याजी अपने स्वार्थ को छिपाकर रखती है । जगमोहन को सहायता पहूँचाकर अपने चरित्र के उज्ज्वल पक्ष दिखाकर वह जग मोहन को वश में करना चाहती है । वह एक अच्छी अध्यापिका है । क्रियात्मकता और निष्ठा का भी उसमें कमी नहीं है । दूसरों की ओर आँख उठाकर तक न देखनेवाली सत्याजी जगमोहन के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो जाती है । अपने प्रेम के बारे में जगमोहन से खुलकर बताने में उसे तनिक भी हिचक नहीं है । सत्या को अपनी शक्ति पर दृढ विश्वास है । किसी भी कीमत पर जगमोहन को प्राप्त करने के लिए वह सदैव कोशिश करती रहती है ।

जगमोहन के सामने शादी का प्रस्ताव भी वह रखती है । वह जगमोहन के भाई-भाभी को भी अपनी ओर खींचती है । लेकिन जगमोहन उससे शादी करने के लिए तैयार नहीं होता । असफल होने पर भी वह हार माननेवाली नहीं है । सगाई के बाद, विवाह के पूर्व वह एक बार और भी जगमोहन के पास जाती है, उसकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए । लेकिन जगमोहन उसे खुल्लंखुल्लाकर लिख देता है कि वह उसे प्यार नहीं करता है । अपनी निराशा की प्रतिक्रिया के रूप में सत्या एक कुरूप अधेड असंस्कृत आर्फिकी मेजर से शादी करती है और आर्फिका चली जाती है । उसका यह फैसला आत्मघात के समान है ।

सत्याजी में बाहर से गंभीरता और रूखेपन देख सकते हैं, लेकिन उसका हृदय तो अतिभावुक है और वह एक सच्ची प्रेमिका है । अपने प्रेमी केलिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने की भावना भी उसमें निहित है । सत्याजी निम्न-मध्यवर्ग की प्रेमिकाओं का पूर्णरूपेणा प्रतिनिधित्व करती है ।

अश्कजी ने सत्याजी के माध्यम से एक ऐसी नारी को प्रस्तुत किया है जो शिक्षित होते हुए भी किसी प्रेमी के प्रति जन्म लेनेवाले एक तरफा प्यार का शिकार बन जाती है । अपने मनचाहे पुरुष को प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व लुटा देनेवाली यह नारी आधुनिकाओं की प्रतीक है जो विफलता को मानने के लिए कभी भी तैयार नहीं होती । पुरुष के स्वार्थ को न पहचान कर प्रेम के जाल में फँस जानेवाली सत्याजी के लिए अन्त में विवशता ही आ जाती है । वैसे सत्याजी की पूर्वकथा भी सहानुभूति उत्पन्न करनेवाली है । मातृहीन सत्या पिता के अवैध सन्तान बनने का शाप भी अपनी ऊपर लेती है और अपने प्रेमी से यह बात भी बता देती है । इस हालत में भी सहानुभूति न मिलने के कारण

उसे आफ्रिकी मेजर से शादी करनी पडती है । साधारण स्त्री होती तो ऐसी स्थिति में आत्महत्या कर लेती । शिक्षित होने के कारण उसने ऐसा नहीं किया लेखक ने इस प्रकार के कथान्त के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहा है कि प्यार जीवन का सब कुछ नहीं प्यार में हारने के बाद भी जीवन नई दिशा की खोज क सकता है । शायद इस सन्देश की पूर्ति के लिए इस तरह की नायिका का सर्जन अनिवार्य है । स्वाभाविकता की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सत्याजी जैसी नायिकाओं की समाज में कमी नहीं है ।

"गर्मराख" का नायक है जगमोहन । वह निम्न-मध्यवर्ग का यु है । उसका जीवन संघर्षमय है । वह स्वभाव से संकोचशील एवं कायर है । वा अपने परिवेश से परेशान है । साधारण मध्यवर्ग की घुटन पूर्ण परिस्थितियों में पलने के कारण उसमें उसी वर्ग के संस्कारों, परिस्थितियों एवं कमज़ोरियों की अ छाप है "जगमोहन निम्न-मध्यवर्ग के उन लाखों युवकों में से एक था जो बचपन में "बच्चे" और जवानी में "युवक" नहीं होते, बचपन ही से जिन पर प्रौढता का रंग चढ जाता है । जो एक कदम आगे रखते हैं तो दो बार सोचते हैं,..... जिनके न बचपन में खिलंदरापन होता है न जवानी में अल्हडता । बचपन में सब कुछ भूलकर खेलना और जवानी में सबकुछ भूलकर प्रेम करना जो नहीं जान पाते ।

आर्थिक संघर्षों से जूझते हुए जगमोहन अपनी ज़िन्दगी को ऊँच की ओर ले जाना चाहता है जो अपने आप में एक दुस्साध्य कार्य है । वह खुल हँस नहीं सकता और रो भी न सकता है । सामाजिक परिस्थितियों के कारण

---

45. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 140

वह मानसिक विकृतियों तथा ग्रंथियों का शिकार बनता है । साधारण लोगों के समान किसी मनचाही लड़की को प्यार करना उसके लिए असंभव है । कवि चातक का शब्द यहाँ सार्थक है । "सौन्दर्य की सराहना के लिए अनुभूति-प्रवण और सौन्दर्य प्रेमी हृदय होनी चाहिए । तुम्हारे हृदय में या तो अनुभवशीलता की कमी है, अथवा तुम्हारे वर्तमान संघर्ष में वह अपनी सौन्दर्योपासक वृत्ति को खो बैठा है । गर्मराख में सोई हुई चिनगारी की तरह वह अनायास चमक उठेगी ।"[46]

मानसिक घुटन के कारण वह प्रेम को पाप समझता है और परिस्थितियों के कारण उसको अपनी आकांक्षाओं को बाँध देना पड़ता है । रोटी की समस्या उसके लिए सर्वोपरि है । "जहाँ अपना पेट पालना कठिन हो, वहाँ बीवी-बच्चों का बोझ लादने से लाभ ? जिस समाज में काम के लिए उपर्युक्त अवसर नहीं, जीवनयापन के लिए सुविधा नहीं, वहाँ प्रेम और विवाह विलासिता नहीं तो क्या है ?"[47] वह ऐसा नहीं सोचता है कि प्रेम अवांछनीय है । प्रेम से उसे इनकार नहीं लेकिन वह सोचता है कि प्यार का विलास निर्धनता में सुखद नहीं दुखद होता है । उसकी राय में निम्न-मध्यवर्ग के लोगों के लिए भूख के बाद प्रेम का नंबर आता है ।

सत्याजी जगमोहन को फँसाने के प्रयत्न में है इसलिए जगमोहन चाहे-अनचाहे बीच बीच में उसकी ओर झुक जाता है । इसके परिणाम के बारे में सोचकर वह उससे बचना भी चाहता है । वह अपने जीवन के संबन्ध में किसी निश्चित धारणा बनाने में असमर्थ है । उसमें निर्णय तथा व्यक्तित्व दोनों का

---

46. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 86
47. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 180

अभाव है । वह पात्रत्व की दृष्टि से कमज़ोर है । सत्याजी के प्रति उसके मन में यथार्थ प्रेम नहीं है । फिर भी वह सत्याजी को विस्तृत नहीं कर सकता और एकान्त में जब सत्याजी उसके पास आ जाती है तब जगमोहन को परिस्थितियाँ और भी कमज़ोर बना देती है । सत्याजी के प्रति उसका प्रेम तो मात्र शारीरिक है ।

जब सत्याजी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है तब जगमोहन आर्थिक अभाव के बहाने उस प्रस्ताव का तिरस्कार करता है । वह सत्याजी को खुलकर लिखता है - "..... हमारा वैवाहिक जीवन नरक-सरीखा हो जायगा ।..... पर मुझे आपसे प्रेम नहीं .... मैं स्वयं दूसरे के प्रति ऐसी ही विवश हूँ । पर मेरा आपके साथ यों रहना उस विवशता का अनुचित लाभ उठाना है और यह मैं आपका और अपना अपमान समझता हूँ ।"[48] उसका असली प्रेम तो दुरो से है । यदि दुरो इसप्रकार का प्रस्ताव रखती तो वह इसका तिरस्कार न कर पाता । सत्याजी के प्रति जगमोहन का क्रूर व्यवहार और विश्वासघात अन्याय-सा प्रतीत होता है ।

दुरो तो जगमोहन से दूर रहती है लेकिन दुरो को पाने के लिए वह प्रगतिशील विचारों को अपनाता है । उसकी प्रगतिशीलता एक दिखावा मात्र है जो उसकी असली भीरुता और स्वार्थता को छिपाने का काम करती है । प्रगतिशील विचारों के प्रति सहानुभूति दिखाकर वह दुरो को और भी निकट पहुँचाना चाहता है । दुरो तो हरीश से प्रेम करती है । लेकिन जगमोहन हरीश को अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं मानता है । दुरो के प्रति अपने प्यार को वह हमेशा छिपाकर

---

48. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 466 - 467

रखता है । हरीश और दुरो के बीच के प्यार को जानते हुए भी वह किसी प्रकार की शिकायत नहीं करता है । सामाजिक कार्यकर्ता होने के नाते जगमोहन के मन में हरीश के प्रति श्रद्धा की भावना है ।

जगमोहन स्वभाव से प्रौढ तो नहीं है लेकिन वह अपने को सचेत और जागरूक मानता है । वह भावुकता के प्रवाह में अपनी आस्था को बहने नहीं देता है लेकिन इससे बच लेता है । सत्या की तरह वह आत्मविनाश का मार्ग नहीं अपनाता है । लेकिन आत्म-विकास का मार्ग ढूँढता है । वह कुंठित तो ज़रूर है लेकिन व्यक्तिमूलक जीवन दृष्टि उसके जीवन की गतिविधियों को संचालित करती है । वह व्यक्ति स्वार्थ में विश्वास रखता है । अपने जीवन और परिवेश को व्यक्ति चिन्तन की कसौटी पर परखता है ।

"गर्मराख" के एक प्रमुख पात्र है चातक । घर में बीवी और बच्चों के होते हुए भी कवि चातक एक नई नारी के चित्र को देखने पर भी उसपर अनुरक्त हो जाता है और कविता में प्रेम व्यक्त करने को आतुर हो उठता है । उसकी दृष्टि में रावण भी आदर्श प्रेमी है क्योंकि रावण ने अपने प्रेम के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था । उसकी दृष्टि में राम का प्रेम सामाजिक मर्यादा का प्रतीक है तो रावण का प्रेम सामाजिक बन्धनों से मुक्त । चातक जी अपनी अरसिका, कुरूप तथा लडाकी पत्नी से ऊबा हुआ है और इससे मुक्ति पाने की कोशिश करता रहता है । घर का असन्तुष्ट वातावरण उसे सह्य नहीं है । प्रेरणा की तलाश में वह सदा नयी स्त्रियों से प्रेम करने का प्रयत्न करता रहता है ।

वह अपने जीवन में प्रेम को सर्वोपरि स्थान देता है तथा रोटी की समस्या को गौण मानता है । वह स्वयं को बायरन मानता है । चातक अपने प्यार को न छिपाता है और बीच बीच में उसकी घोषणा भी करता है । प्रेम के सिवा उसके लिए कविता का और कोई विषय नहीं है । यदि वह अपने प्रेस में बैठकर जी लगा कर काम करता तो उसका प्रेस चलता रहता और फिर उसे किसी आर्थिक कठिनाई भी नहीं होती । लेकिन कभी भी काम में उसका मन न लग पाता है । "प्रेस दिन-रात का जो श्रम चाहता है, उससे भागकर वे किसी काल्पनिक प्रेयसी के गोद में जा बैठना पसन्द करते, प्रेम के गीत लिखते और सभाओं में नव-वय के लडके - लडकियों को सुनाकर प्रशंसा पाते ।"[49] उसकी यह पलायन वृत्ति के कारण वह सदा आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त है । लेकिन उसके लिए यह समस्या तो गौण है । "वह तो केवल छवि का लोभी, मधु का प्यासा है ।" सत्याजी से आकर्षित होकर ही वह संस्कृति समाज की स्थापना करता है ।

कवि चातक एक बात पर असफल होने पर दूसरा मार्ग ढूँढता है और उससे निराश होने पर नये संघर्ष में लग जाता है । उसको जीवन में अनेक कष्ट सहना पडता है फिर भी उसके मन में जीवन के प्रति आस्था है, संघर्ष में विश्वास है । वह आदी से अन्त तक गतिमान पात्र है । चातक के चित्रण के लिए लेखक ने सहानुभूतिपूर्ण व्यंग्य को अपनाया है । चातक ऐसे अनेक युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने पारिवारिक संबन्धों से असन्तुष्ट होकर बाहर से नये संबन्ध स्थापित करते हैं और उससे सन्तोष पाने की कोशिश करते हैं ।

"गर्मराख"का दूसरा प्रमुख पात्र है दुरो । वह अपनी विशेषता

---

49. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 366

और कर्मठता के कारण नायिका सी दिखाई पड़ती है । वह एक भावुक लड़की है । समाज को यथातथ्य पहचानने की क्षमता उसमें है । जगमोहन उससे प्रेम करता है लेकिन दुरो हरीश को चाहती है । फिर भी जगमोहन के साथ उसका जो संबन्ध है उसे वह नहीं तोड़ती है । दुरो अपने और जगमोहन के बीच के संबन्धों में प्यार को प्रतिष्ठित नहीं करती है । वह हरीश के लिए अपना सबकुछ न्योछावर करने के लिए तैयार रहती है । दुरो हरीश की प्रतिछाया बनना चाहती है । लेकिन उसके कर्म के पथ में बाधा बनना नहीं चाहती है । दुरो के मन में जो कुछ है खुलकर वह बोलती है । समाज से उसे तनिक भी डर नहीं । सामाजिक अनीतियों के प्रति वह आवाज़ भी उठाती है । वह स्त्री की शक्ति पर विश्वास रखती है । उसके मन में मानव प्रगति की उच्च आकांक्षाएँ है वह प्रगतिशील ज़रूर है लेकिन अपने वैयक्तिक स्वप्नों से भी वह मुक्त नहीं है । इस उपन्यास के सबसे शक्तिशाली पात्र दुरो है । वह अपना एक अलग व्यक्तित्व रखती है । लेखक ने इसका चरित्र यह दिखाने के लिए उभारा है कि इस समाज में ऐसी लड़कियों की ज़रूरत है जो अपने समाज की प्रगति के लिए कुछ कार्य कर सकती है । लेखक ने विशेष दृष्टि से इस पात्र को उभारा है ।

हरीश इस उपन्यास का अन्य एक महत्वपूर्ण पात्र है । वह साम्यवादी युवक है । उसकी दृष्टि साफ युक्ति संगत है । वह समाज कल्याण में विश्वास रखता है वैयक्तिक सुख से अधिक मानव की प्रगति में वह विश्वास रखता है । मज़दूरों की भलाई के लिए काम करने में वह व्यस्त है और उनकी छोटी-छोटी समस्यायें उसको हमेशा परेशान करती रहती है । दुरो उससे प्रेम करती है । उसके मन में दुरो के प्रति प्रेम है लेकिन उसके पास समय का अभाव है । हरीश की दृष्टि में रोटी का स्थान प्रथम है, प्रेम का द्वितीय । नारी की

स्वतन्त्र सत्ता पर भी वह विश्वास रखता है । उसका चरित्र उदात्त है । प्रगतिवादी आदर्श के प्रति आस्था रखनेवाला हरीश सामाजिक परिवर्तन का इच्छुक है । इस पात्र की विशेषता यह है कि प्रेम जैसे वैयक्तिक स्वार्थ से भी अधिक महत्व वह अपने कर्मक्षेत्र के कार्य को प्रदान करता है ।

इस उपन्यास के अन्य छोटे मोटे पात्र है शुक्लाजी, वसन्त, प्रोफेसर स्वरूप, धर्मदेव वेदालंकार, रघुनाथ शास्त्री आदि । ये भी अपनी निजी विशेषताएँ रखते हैं । कथानक के विकास में और घटनाचक्रों के परिवर्तन में ये पात्र सफल भूमिका अदा करते हैं । धर्मदेव वेदालंकार का चरित्र निम्न मध्यवर्गीय बाहरी दिखावे की भावना को व्यक्त करता है । शुक्लाजी भी चातक के समान एक पात्र है । हर युवती को देखकर वह भी उसकी ओर आकर्षित होता है । उसकी इस प्रवृत्ति का आधार भी उसकी पत्नी की सौन्दर्य हीनता है । वसन्त की समस्यायें लगभग जगमोहन की सी है । वह भी अपनी पढाई के लिए साधन की खोज में हैं । इसलिए वह अपने भावी ससुर के सामने यह प्रस्ताव रखता है कि शादी के बाद वह वसन्त के खर्च का प्रबन्ध करें । जब ससुर तैयार नहीं होता तब वसन्त सगाई तोड देता है । इस प्रकार वसन्त जगमोहन से अधिक व्यावहारिक दिखाई पडता है । इस प्रकार इस उपन्यास के कई पात्र निम्न मध्यवर्ग के प्रतिनिधि पात्र के रूप में उपन्यास में प्रस्तुत होते हैं ।

अश्क के "गर्मराख" शीर्षक उपन्यास में जिन पात्रों की सर्जना की है वे पात्र विशेष प्रकृति के लगते हैं । जीवन की कठिनाईयों का आधार उनके अनुसार अर्थ की कमी है और अर्थ को एकत्र करने के लिए युवा लोग जिन उपायों को अपनाना चाहते हैं वे उपहास्य है । परायी लडकी के धन पर नज़र गढाकर

स्वार्थ की पूर्ति करने का स्वप्न देखनेवाला यह युवक वर्ग पुरुषार्थ के लिए कलंक है । इनमें पुरुषत्व का अभाव है और किसी भी स्त्री को देखते ही उनके कदम ठगमगाने लगते हैं । स्नायु रोगी जैसे लगनेवाला चातक, शुक्ला और ससुर के धन को हडपने की कोशिश करनेवाला वसंत युवा पीढी की विकृत मानसिकता के सीमित पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं । कभी भी उनको युवा वर्ग के प्रतिनिधि नहीं माने जा सकता ।

उधर उपन्यास का नायक जैसे लगनेवाला जगमोहन भी काले कार्तूतों से मुक्त नहीं है । वैसे निम्नमध्यवर्ग के प्रतिनिधि के रूप में बडी मेहनत और परिश्रम से इस पात्र को उभारने का प्रयास लेखक ने किया है। निम्नमध्यवर्गीय मानसिकता को विकसित करने का कोई विशेष उद्देश्य इस उपन्यास में दिखाई नहीं पडता । लेखक ने प्रेम को अर्थ के अधीन स्थापित करना चाहा है और यह भी सिद्ध करना चाहा है कि मध्यवर्ग का युवक आर्थिक असंतोष के कारण प्यार तक नहीं कर सकता । परन्तु इस तथ्य को जगमोहन के माध्यम से स्थापित करने में अश्क संपूर्ण रूप से असफल हुए है क्योंकि सत्याजी के साथ जगमोहन का संबन्ध इस तथ्य का समर्थन नहीं कर सकता । सत्याजी धन भी देती है और प्यार भी । इन दोनों का जगमोहन ठुकरा देता है और संबन्धों को शरीर तक सीमित रखता है । अर्थ और प्रेम दोनों जब मिलते हैं तो मध्यवर्ग के युवा को उसे स्वीकार करना चाहिए था । इसके बदले जगमोहन दुरो के प्यार में फँसा हुआ है । उपर्युक्त स्थितियों के आधार पर अश्क ने अपने मध्यवर्गीय युवा की कहानी प्रस्तुत कर सफलता प्राप्त करने का एक बहाना मात्र बनाया है । लगता है कि अश्क पात्र के पीछे चलते चलते प्रगतिवाद के मोह में पडते पडते अपना लक्ष्य को खो बैठे हैं ।

उधर स्त्री पात्रों के माध्यम से जिस बात को समझाना वे चाहते हैं वह बात भी अधूरी रह गयी है । सत्याजी का मोह और दुरो का लक्ष्य दोनों स्वाभाविक होते हुए भी मध्यवर्गीय नारी के नहीं लगता है । दुरो के माध्यम से प्रगतिवाद का समर्थन करनेवाला अश्क सत्याजी की कथा कहकर नारी की विवशता का भी स्वरूप अंकित करते हैं । बीच में आनेवाले कवि चातक और शुक्ला पुरुष के चरित्र की अवहेलना करनेवाले स्नायुरोगी लगते हैं । हरीशश्री एक ऐसा पात्र है जो कुछ करना चाहता है और करने के लिए निकल पड़ता है । कुल मिलाकर सामाजिक मूल्यों में आये हुए परिवर्तन के सही स्वरूप को दिखाने में 'गर्मराख' सफल भूमिका अदा करता है यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि नायक को स्वतन्त्र सत्ता का न बनकर मध्यवर्ग से बाँधकर फिर धोखेबाजी का नमूना बनाकर प्रस्तुत करना अपरी दृष्टि से किया जानेवाला लेखक का कारनामा लगता है । अश्क ने समूचे उपन्यासों में सामाजिक मूल्य परिवर्तन संबन्धी विचारों को आनुषंगिक रूप में पात्रों की मानसिक प्रतिक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । सामाजिक चेतना में परिवर्तन की जो आवश्यकता है उसका बयान मुख्य कथा के घटना विधान से भले ही न जुडता हुआ परंतु अवश्य प्रकट होता है ।

बड़ी बड़ी आँखें

इस उपन्यास के पात्रों की संख्या बहुत कम है फिर भी इस उपन्यास की पात्रयोजना और चरित्र चित्रण महत्वपूर्ण है । इस उपन्यास के मुख्य पात्र है संगीत, वाणी, देवाजी, देवीजी, तीरथाराम आदि ।

संगीत "बड़ी बड़ी आँखें " का नायक है । वह मध्यवर्ग का एक आदर्शवादी युवक है । वह अभिरुचि शील है और कलात्मक व्यक्तित्व

रखनेवाला है । उसको अपने जीवन में अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है लेकिन वह अपने मार्ग पर अविचल बढ़ता रहता है ।

संगीत में नैतिक चेतना को बनाये रखने की भावना ज़्यादा जागरूक है । वह अपनी पत्नी के प्रति ईमानदार है । अपनी पत्नी के साथ उसका जो संबन्ध था वह अटूट था । उसके लिए संगीत अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार था लेकिन अपनी पत्नी के जीवन की अन्तिम घटियों में भी संगीत सत्य को नहीं छोड़ता है । अपनी पत्नी से वह झूठ नहीं बोलता है । उसकी पत्नी पूछती है "दार जी क्या स्वर्ग-नरक में आप का ज़रा भी विश्वास नहीं ?" संगीत उत्तर देता है "तुमने अपने कर्तव्य पूरी तरह निभाया है यदि कोई स्वर्ग है तो वह अवश्य तुम्हें मिलेगा ।" संगीत यह कहने के लिए तैयार नहीं होता है कि "तुम ठीक हो जाओगी और हम यहीं स्वर्ग-सी सुन्दर दुनिया बसायेंगे ।" क्रूर सत्य के बदले मीठा सा झूठ बोलना संगीत के लिए पसन्द नहीं है ।

पत्नी की मृत्यु के बाद वह शान्ति की खोज में देवनगर आता है । वह देवाजी के सामाजिक और राजनीतिक विचारों से प्रभावित है । उसका यह विश्वास था कि देवनगर में उसे ज़रूर शान्ति मिलेगी । लेकिन वहाँ वाणी संगीत से प्रेम करती है लेकिन संगीत का प्रेम अपनी दिवंगता पत्नी से है । उसका रूप ही संगीत के मन में सदैव प्रज्ज्वलित है । वाणी का प्रेम संगीत के जीवन को रससिक्त बनाने में सहायक है लेकिन पहले वाणी के प्रति संगीत के मन में जो प्रेम है, मात्र आकर्षण है । संगीत तो सदा अपनी स्वर्गीय पत्नी पिन्नो की याद में ही खोया हुआ रहता है । वाणी संगीत की प्रेरणा है । संगीत वाणी के प्रेम का अनुभव करता रहता है । वाणी की श्रद्धा और प्रेमपूर्ण व्यवहार उसे ज्यादा

शक्ति प्रदान करता है । संगीत का प्रेम वाणी के निर्मल प्रेम से अनुप्राणित है । संगीत के मन में प्रेम की जो भावना है वह उदात्त है । लेकिन जब वाणी अपनी बड़ी बड़ी आँखों द्वारा संगीत को अधिक खींचने की कोशिश करती है, वह किंकर्तव्य विमूढ-सा बन जाता है अपने आदर्श का पालन करने के लिए वह विवश है और परिस्थितियों के दबाव के कारण उसको वाणी से अपना संबन्ध छोडना पडता है । अपने निजी आदर्श का पालन करने की विवशता में उसको वाणी के निर्मल प्रेम को भी ठुकराना पडता है ।

इस प्रकार संगीत का चरित्र एक तरफ से व्यथा की छाया में पनपता हुआ दिखाई पडता है । पत्नी का साथ छूटने पर उसकी यादों में खोये रहनेवाला संगीत जीवन को आकर्षात्मक रूप प्रदान करने के लिए देवनगर आता है । जीवन को धन्य बनाना उसका लक्ष्य है और सेवा के माध्यम से वह इसको संपूर्ण बनाना चाहता है । व्यथित मन को सहारा देनेवाली वाणी आशा की किरणों को लेकर उसके सामने प्रकट होती है । वाणी के प्रति उत्पन्न लगाव का कारण उसका भोलापन ही है । उन बडी बडी आँखों में संगीत अपने जीवन की व्यथाओं को भुला देना चाहता है । एक तरह से परोक्ष रूप में उसका मन दुख की ऊसर भूमि से प्रेम की शाद्वल भूमि की ओर बढने लगता है । शायद इस परिवर्तन को वह भी महसूस नहीं कर पाता । परिस्थितियों के कारण देवनगरवासियों का विरोध और उस क्षेत्र का दमघोट वातावरण प्रेम के साथ जन्म लेनेवाली आकांक्षाओं को मिट्टी में मिला देता है और फिर एक तलाश की प्रेरणा को लेकर विरह और उत्पीडन को गले से लगाकर वह चल पडता है । वैसे इस पात्र में स्त्री-पुरुष संबन्धों की रागात्मक तन्त्रियों को हल्के रूप में झंकृत करने का प्रयास किया है । वाणी और संगीत का संबन्ध उम्र के फासले के बावजूद शब्द और स्वर का संबंध है । गीत और लय का संबंध है । इस प्रकार की लयबद्धता उपन्यास को कथ्यात्मकता के स्तर पर ले जाती है ।

इस उपन्यास की नायिका है वाणी । वह वय:सन्धी की मुग्धा बालिका है । वह सरल और समझदार है । वह संगीत को आदर्श के पथ की ओर अग्रसर करने का प्रेरणा स्रोत है । वाणी संगीत से प्रेम करती है । वह प्रेम उच्चकोटि का है । उसका प्रेम समुद्र के तट में टकरानेवाली लहर नहीं बल्कि समुद्र की अगाध जलराशि है जो समस्त नदियों का जल समेटकर भी अपनी मर्यादा पर अटल रहती है, कहीं नहीं भटकती है, नहीं फिसलती है, एक क्षण तक के लिए भी विचलित नहीं होती । उपन्यासकार के शब्दों में "उसका प्रेम भावना के सहारे जीवन के सागर तट में तैरते और कभी न गोता खानेवाला अभिन्न, अडिग अडोल प्रेम है ।"[50] वाणी संगीत से प्रेम करती है और वह स्नेहार्द्रता संगीत के जीवन को सरस बनाती है । वाणी का प्रेम नवनीत सा स्निग्ध, पवित्र और मूक है । वाणी के प्रेम में वासना का गंध लेश मात्र में भी नहीं है ।

प्रारंभ में वाणी को एक चपल बालिका के रूप में चित्रित किया गया है । बडे दिन के समारोह में पहली ही भेंट में वह संगीत के साथ बैठती है उसकी ओर एकटक देखती रहती है । संगीत वाणी को अब तक लडकी समझता था लेकिन अब वह आश्चर्यचकित सा रह जाता है । वाणी के मन में प्रेम की जो भावनाएँ हैं उन पर देवाजी की उन रोमांटिक कहानियों का असर था, जिन्हें उसने बचपन में पढा था । इसकी जैसी छोटी लडकियों की प्रेम भावना और वाणी के प्रेम में बहुत अन्तर है । वाणी अपनी कौशार्यजनित चपलता को अनुशासित कर लेती है और बाद में अधिक प्रौढ दिखाई देती है जो उसके चरित्र को और भी प्रज्ज्वलित करता है और काफी महत्वपूर्ण बनाता है । नायक संगीत से प्रेम करने में उसको किसी से डर नहीं है । वह भोली-भाली है । वाणी आश्रम की और

---

50. बडी बडी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 73

देवाजी की सुन्दर कल्पनाओं की वाणी ही नहीं है वह बड़ी आँख भी है जो आश्रम के सत्य को सही रूप में देख सकती है । अपने विचारों को खुलकर प्रकट करने की हिम्मत भी उसमें है । वह बिना किसी भय के संगीत को देवनगर, देवाजी तथा अपने प्रेम के विषय में पत्र लिखती है "इस नगर का नाम चाहे देवनगर है, पर यह वास्तव में राक्षस नगर है ।"[51]

संगीत जहाँ क्षोभ और आवेश के क्षणों में वाणी के गोपनीय पत्र को प्रकट कर देता है वहाँ वाणी अपने सन्तुलन को कभी नहीं खोती है । संगीत के समान वाणी भी कला प्रेमी है और गरीबों के प्रति दयालु भी । बिना किसी अपेक्षा से वह नबी को उसके शिक्षा कार्य में सहायता प्रदान करती है । दूसरों के प्रति उसकी सहानुभूति तथा संवेदना संगीत को नयी दृष्टि प्रदान करती है । वाणी नबी के प्रति संगीत की चिन्ता की समभोक्ता है । देवनगर को छोड़ते समय स्वयं संगीत वाणी के प्रति अपना आभार प्रकट करते हुए मन-ही-मन कहता है "लेकिन तुमने जो आँखें मुझे बख्शी है, दूसरे के दुख-दर्द को महसूस करने की जो शक्ति प्रदान की है, वह उसी का तगादा था कि मैं यों भाग जाऊँ । लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हारी उन बड़ी बड़ी आँखों की याद, जिन्होंने मेरी आत्मा को आँखें दी है, "देववाणी" के आदर्श पर चलने की प्रेरणा दी है, जीवन भर मेरा पथ उजेला रखेगी ।"[52] इस प्रकार उपन्यासकार ने वाणी के चरित्र के उत्कर्ष को दिखाया है । उसे बड़ी भावुक, सरल, समझदार दिखायी है । लेकिन वाणी की सबसे बड़ी ट्रेजडी है कि वह देवनगर के आदर्श समाज की सामन्ती रूढियों और पूँजीवादी मान्यताओं के बीच पिसती रही है ।

---

51. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 130
52. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 184

वाणी के चारित्रिक उत्कर्ष को दिखाने के प्रयास में उपन्यासकार ने कुछ अस्वाभाविकताओं को भी गले लगा लिया है । वय:सन्धि के दरमियान में पहुँची हुई लडकी जिस तरह सोच सकती है उस तरह से वाणी नहीं सोचती है । अत्यधिक प्रौढ चिन्तन का और परिपक्व स्नेहभाव का परिचय देनेवाली वाणी उम्र की मानसिकता से मुक्त होकर लेखक की सोद्देश्यपरकता से अधिक जुडती है । रचना के प्रति विशेष दृष्टि अपनाने के कारण इस छोटी लडकी के साथ लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से न्याय नहीं किया है । लगता है कि उसके व्यवहार का अधिक हिस्सा वाणी का न होकर लेखक की वाणी का है । इस कमी को छोडकर-जो एक बडी कमी है - इस उपन्यास की नायिका के प्रति और कोई आक्षेप नहीं उठाया जा सकता क्योंकि आदर्श के समूचे परिवेश को ध्यान में रखते ही वह अन्यत्र व्यवहार नहीं कर सकती ।

"बडी बडी आँखें" का और एक महत्वपूर्ण पात्र है देवाजी । देवाजी देवनगर के संस्थापक, देववाणी पत्रिका के संपादक तथा देवसेना का अधिष्ठाता है । देवाजी देवनगर के एक आदर्शीवादी नेता है । वे गंभीर सौम्य एवं शालीन दिखाई पडते हैं । पहली दृष्टि में संगीत को वे बडे अच्छे और सहृदय लगे । उपन्यास के प्रारंभ में पाठक देवाजी के व्यक्तित्व से स्वाभाविक रूप से प्रभावित हो उठता है । देवाजी की वाणी में दूसरों को आकर्षित करने की शक्ति है । वे एक सफल लेखक भी हैं । उनकी लेखनी से आकर्षित होकर ही संगीत शान्ति की खोज में देवनगर आता है । उनकी वाणी में जादू है और श्रोता इनसे तन्मय हो जाता है । संगीत के शब्दों में - "मैं ने सुनाथा - देवाजी की लेखनी में जादू है, पर उन्हें बोलते देखकर मैं ने जाना कि लेखनी ही में नहीं, उनकी वाणी में भी जादू है ।"[53] उनके लेखों तथा भाषणों से पता चलता है कि भारत में यदि

---

53. बडी बडी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 41

स्वर्ग है तो वह देवनगर में है । वे चाहते हैं कि देवनगर के निवासियों के हृदय सदा दूसरों के लिए खुले रहें । वे प्रत्येक कार्य के लिए दिल और दिमाग से विशाल तथा उदार रहे ।

देववाणी में देवाजी के सुन्दर विचार छपते हैं और वे स्वयं अपने व्यवहार में बहुत मधुर और विवेकशील है । किन्तु संगीत ज्यों-ज्यों आश्रम से परिचित होता है देवाजी और देवनगर वासियों की विसंगतियों और कुरूपताओं को भी जानने लगता है । देवाजी जो कुछ कहते हैं वह नहीं कर सकते । वस्तुतः उनकी कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर है । उनकी आकांक्षाएँ तो उच्च है लेकिन इन सबके पीछे उनका अवसरवादी दृष्टिकोण ही दृष्टिगत होता है । देवाजी चापलूसों से घिरे हैं उन्हें खुशामदी पसन्द है । देवाजी अपने तथा देवनगर के विषैले वातावरण को छद्म मुस्कान से छिपाते हैं । देवनगर का प्रधान संचालक देवाजी है लेकिन हर बात में उनकी पत्नी दखल देती रहती है । वे पत्नी के हाथों की पुतली मात्र है । देवाजी ने बच्चों की शिक्षा के लिए जिस स्कूल की स्थापना की थी उसमें भी पक्षपात, दिखावट एवं स्वार्थ का प्राबल्य है । प्रैक्टिकल स्कूल उसके लिए केवल धनार्जन का एक मार्ग है । प्रैक्टिकल स्कूल में अमीरों के बच्चों को सुविधापूर्वक प्रवेश मिलता है क्योंकि उनके माँ-बाप से देवाजी को दान के रूप में बडी बडी रकम मिलती है । "देवनगर" नामक संस्था उनके लिए केवल एक "बिज़िनेस" है । इस प्रकार उनमें शोषण की प्रवृत्ति की भी कमी नहीं है । इतना ही नहीं देवाजी ऊसर भूमि के खंड खंड को महँगे दामों पर बेचकर निजी संपत्ति बढाते भी है । वे पास के दरिद्र गाँवों की आर्थिक उन्नति, गरीबों के उद्योग-धन्धे शिक्षा आदि की चिन्ता से पूर्णतः मुक्त है । पडोसी गाँवों में प्राकृतिक विपदा आने पर भी वे प्रैक्टिकल स्कूल का उद्घाटन समारोह यह कहकर

खूब मनाते हैं • देहातकी इस तबाही को देखकर मन नहीं होता कि हम प्रैक्टिकल स्कूल के उद्घाटन का उत्सव मनायें, लेकिन मौत का एक ही जवाब है - ज़िन्दगी । नाश का एक ही उत्तर है - निर्माण । इसलिए हम आसपास की इस तबाही में घिरे रहकर भी जीवन और निर्माण के इस पर्व को स्थगित नहीं कर रहे ।•[54] उक्त कथन उसकी अवसरवादिता का दृष्टान्त है ।

देवाजी बाह्य रूप से शालीन एवं सौम्य है लेकिन वे स्वयं को बड़े कहलाने के लिए आतुर है । अमेरिकी पत्रिकाओं के किस्सों को अपना नाम जोडकर सुना देने के लिए भी वह तैयार है । प्रशंसा प्राप्त करने के लिए इतने निम्न-स्तर का काम वे करते हैं । देवाजी अपनी कथनी में उन्मुक्त और पवित्र प्रेम के समर्थक है । लेकिन संगीत के प्रति वाणी का निर्मल प्रेम उन्हें पसन्द नहीं क्योंकि उनका आदर्श केवल दिखावा मात्र है । आदर्शों को वे अपने जीवन में लागू करना नहीं चाहते हैं । सामाजिकता के वक्ता होते हुए भी वे अपने व्यक्तित्व और स्वार्थ पूर्ति को सबसे ऊपर प्रतिष्ठित करते हैं । देवाजी अपनी धर्मपत्नी से आतंकित हैं । वे अपनी पत्नी के अर्ध-सामन्ती विचारों से समझौता करने के लिए तैयार हो जाते हैं ।

इसप्रकार उपन्यासकार ने देवाजी को स्वार्थी, लोभी, चाटुकार अवसरवादी और स्वप्निल नेता के रूप में चित्रित किया है । इनके व्यक्तित्व के अन्तर्विरोध में ही इस उपन्यास की वैचारिकता विकसित होती है । उपन्यास का केन्द्रबिन्दु पुरुष पात्र देवाजी है । परन्तु उनके चरित्र का चित्रण व्यंग्यात्मकता से भरपूर है ।

---

54. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 134

देवीजी भी इस उपन्यास की एक मुख्य पात्र हैं । देवीजी देवाजी की पत्नी है । इन्हें देवसैनिक माताजी कहते हैं । प्रधान संचालक देवाजी है लेकिन देवाजी, देवीजी के नियंत्रण में हैं । तीरथाराम देवीजी की चापलूसी में रहता है । देवीजी अपनी खुशामदी करनेवालों पर अत्यन्त प्रसन्न है । कोई व्यक्ति अगर सुबह उठकर उन्हें नमस्ते न करें तो वह उसकी दुश्मन बन जाती है । देवीजी, देवाजी के प्रैक्टिकल स्कूल का मेट्रन है और वहाँ के सारे कार्य उनकी शर्तों पर चलते हैं । संगीत के प्रति उनमें ईर्ष्या की भावना है लेकिन तीरथाराम से वे प्रसन्न है । देवाजी के स्वार्थी, पक्षपाती, दिखावटी व्यक्ति बनने का मूल कारण देवीजी है । उनके मन में गरीबों के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं है । देवीजी और उनके चापलूसी लोगों के कारण देवनगर का वातावरण बुरा हो जाता है । वे स्वयं को देवनगर की रानी समझती है और बाकी सबको अपना व्यक्तिगत नौकर । देवाजी की करनी पर देवीजी का पूर्ण प्रभाव है । इस पात्र के माध्यम से नारी चरित्र के एक ऐसे पक्ष को उभारा गया है जो स्वार्थ, लोभ और अहंवादिता से भरपूर है । आदर्शवादी पति को भी अपने हाथों की कठपुतली बनानेवाली देवीजी नारी की व्यावहारिक दृष्टि का परिचय देती है । परन्तु उन्हीं की पुत्री वाणी में नारी चरित्र का उज्ज्वल पक्ष प्रतिबिंबित होता है । माँ अगर स्वार्थ के अन्धकार की प्रतीक है तो बेटी त्याग और सेवा की रोशनी की परिचायिका है । तुलनात्मक ढंग से देखने पर देवीजी देवी न रहकर दानवी लगती है जबकि वाणी मानवी न रहकर देवी तुल्य बन जाती है ।

"बड़ी बड़ी आँखें" का अन्य एक प्रमुख पुरुष पात्र है तीरथाराम । वह कवि है देवाजी का भक्त और उन्हीं की तरह वायवी प्रीति में उसका विश्वास है । लाभवश दूसरों की खुशामदी करने में उसकी कोई भी हिचकिचाहट नहीं है ।

वह कुंठित और हेय वृत्तियों का मूर्त रूप है । वह देवनगर के शान्तिमय वातावरण को विषैला बनानेवाला है । स्त्री हो या पुरुष उनके प्रति चापलूसी दिखाना उसका पेशा है । तीरथाराम के मन में वाणी के प्रति प्रेम है । वाणी चूँकि संगीत से प्रेम करती है तीरथाराम संगीत से ईर्ष्या करने लगता है । इसलिए वह सुदर्शन हरमोहन आदि के साथ संगीत को बदनाम करने की कोशिश करता है । माताजी उससे अत्यन्त प्रसन्न है क्योंकि वह माताजी की चापलूसी का भागदार है । तीरथाराम का प्रेम वासना से युक्त है और उसके मन में सदैव निम्नकोटि का विचार है । तीरथाराम उन कुंठित एवं नीच प्रवृत्तियों का मूर्त रूप है जिनके कारण देवनगर के उदात्त एवं प्रगतिशील विचार केवल शब्दों तक सीमित रहते हैं । नायिका वाणी तीरथाराम के बारे में संगीत को लिखती है -"चाहे आपने मुझे स्नेह दिया, वह एकदम पवित्र है, पर जिनके दिलों में मैल है, वे इसे अपवित्र समझते हैं ।"[55] तीरथाराम उस आदमी का प्रतीक है जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरों की बुराईयों में लगा रहता है और अपने मन के कलंक को दूसरों पर आरोपित करता फिरता है ।

मधवार साहब, हरमोहन सिंह, गुलाम नबी आदि इस उपन्यास के गौण पात्र है । मधवार साहब देवनगर के उस वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते हैं जो वहाँ के बने हुए नियमों से पूर्णतः सन्तुष्ट न होते हुए भी परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं । इनके जैसे आदमी कटु आलोचक है किन्तु वे देवाजी का विरोध खुलकर नहीं करते हैं क्योंकि वे दूसरों के लिए देवाजी की शत्रुता मोल-लेना नहीं चाहते हैं । वे अधिक व्यावहारिक दिखाई पड़ते हैं । उनमें भी स्वार्थ की भावना है । वे पदभ्रष्ट बनना नहीं चाहते हैं । वे अपने ही

---

55. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 130

कार्य में संलग्न है । उनको जो कुछ मिला है उससे वे बहुत प्रसन्न है । इसलिए अपने पदों की रक्षा करते हुए स्थितियों से समझौता करने में वे समर्थ निकलते हैं । संगीत के शब्दों में "देवाजी ने मंत्री बनाकर इस व्यक्ति के अहं को सन्तुष्ट कर दिया है और यह समझौतों के लिए अपने आपको धोखा देने लगा है ।"[56] नन्दलाल और सावित्री भी देवनगर की परिस्थितियों पर असन्तुष्ट है लेकिन वे भी कुछ नहीं बोलते हैं । वे इन परिस्थितियों में न रहना चाहकर भी रहते हैं क्योंकि बार बार उखडने और बसने की शक्ति उनमें नहीं है और वे समझते हैं कि देवनगर के बाहर भी तो यही कुछ हो रहा है ।* देवनगर के उस दम-घोटू वातावरण में दोनों संगीत के लिए सहारा बनते हैं और आत्मीयता का परिचय देते हैं ।

"बडी बडी आँखें" के नायक संगीत और नायिका वाणी को उपन्यासकार ने आदर्श पात्र चित्रित करने का प्रयास किया है लेकिन इनके चरित्र कहीं कहीं अस्वाभाविकता से जुडते हैं । उदाहरण के लिए उपन्यास के प्रारंभ में विधुर संगीत वाणी को नन्हीं बालिका के रूप में देखता है लेकिन अन्त तक आते आते उन दोनों का प्रेम रोमांटिक बन जाता है । इस प्रकार उपन्यास के अन्त में आते आते तीरथाराम को वह अपने प्रतिद्वन्द्वी मानता है । वाणी का व्यक्तित्व भी उस रेजिमेन्टड जीवन का अंग बन जाता है उसका व्यक्तित्व उपन्यास में पूरी तरह से उभर नहीं पाया है । फिर भी ऐसे दमघोटू वातावरण में दो व्यक्तियों के अन्तः संघर्षों का सूक्ष्म चित्रण करने में उपन्यासकार सफल हुए है । इस उपन्यास के जैसे अनेक पात्र आज भी हमारे समाज में हैं । देवाजी के जैसे लोलुप, चाटुकार अवसरवादी नेता लोग आज के समाज में भी यत्रतत्र दिखाई पडते हैं जिनके व्यवहार में दिखावट, पक्षपात एवं स्वार्थ की बहुलता है । उसी प्रकार आज तीरथाराम

---

56. बडी बडी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 177

* हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - सं. डा. खेलचन्द आनन्द, पृ. 94

जैसे खुशामदी लोगों की भी कमी नहीं है । भाताजी जैसी देवियाँ भी प्रतिशत घरों में या संस्थाओं में मिलती है, जो अपने पतियों को अपनी ऊँगलियों पर नचाती है और स्वयं को अपनी संस्थाओं की रानी मानती है । आज संगीत जैसे स्वाभिमानी नवयुवकों की भी कमी नहीं है जो अपने अधिकारियों की नृशंसता की ओर संकेत करते हैं और व्यक्ति चिन्तन के समर्थक बन जाते हैं । मधवार साहब ऐसे अधिकार मोही लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने अधिकारों के प्रति बडा जागरूक है और आपे अधिकार को बनाये रखने के लिए उच्च अधिकारियों की चापलूसी में फँसा रहता है । गुलाम नबी भी निम्नवर्ग की प्रतिनिधि बनकर उपन्यास में आया है जो जन्मजात स्थितियों के कारण कभी भी मुक्त नहीं हो पाता । गरीबी और असहायता गुलाम नबी जैसे पात्रों पर पडा हुआ अभिशाप है जिससे मुक्ति पाना शायद असंभव ही है । कुल मिलाकर विभिन्न परिस्थितियों में जन्म लेकर कार्यक्षेत्र की विविधता में विकसित होनेवाले "बडी बडी आँखें" उपन्यास के पात्र उस सत्य की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं जहाँ आदर्श यथार्थ की चपेट खाकर गिर पडता है और आदर्श के पीछे खडे रहनेवाले इस प्रहार से तिलमिला उठते हैं ।

पत्थर - अलपत्थर

पत्थर-अलपत्थर कश्मीर के एक घोडेवान हसनदीन के दर्द भरे जीवन की करुण कहानी है । अशक के सभी उपन्यासों के पात्र निम्नमध्यवर्ग के है लेकिन पत्थर-अलपत्थर में ही पहली बार उन्होंने निम्नवर्ग के एक पात्र को नायक के रूप में चुना है । इसमें हसनदीन जैसे दुखी निरीह पात्रों के साथ साथ खन्ना जैसे मध्यवर्गीय शोषक वर्ग के पात्र भी है । इस उपन्यास के पात्रों की संख्या बहुत कम है ।

पत्थर-अल पत्थर का नायक हसनदीन कश्मीर के निम्नवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है । वह एक परम आस्थावान गरीब घोडेवान है । खुदा और ऋषियों में उसके लिए कोई अंतर नहीं । अपने भले बुरे कार्यों के लिए वह ईश्वर को उत्तरदायी ठहराता है । ईश्वर में अटूट विश्वास रखनेवाला वह भाग्यवादी है । उपन्यास के प्रथम परिच्छेद में वह खुदा के हुजूर में झुका हुआ दुआ माँग रहा है । भगवान के प्रति निष्ठापूर्ण आस्तिकता एवं भोलेपन के कारण हसनदीन अपने वर्ग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता है ।

उसका कार्यक्षेत्र घोडों पर लोगों की सवारी करने तक सीमित है । सवारों के पीछे वह निरन्तर नंगे पर चलता जाता है और हर सवार को खुशी कराने का प्रयास भी वह करता है क्योंकि इस पेशे की कमाई ही उसने आज तक खायी है । इस सफर की उतार चढाव से वह पूर्ण रूप से परिचित है । इस पथ के सवारों की जानकारी वह रखता है । रास्ते पर घटित होनेवाली हर बात से वह अच्छी तरह परिचित है । यह उसका कार्यक्षेत्र है, संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी का क्षेत्र है । हसनदीन की सभी प्रवृत्तियों में इसका आभास हमें मिलता है ।

हसनदीन की उम्र चालीस पैंतालीस की है लेकिन कठिन परिश्रम ने समय से ही पहले उसके चेहरे पर लकीरें बना दी है । इसके वास्तविक जीवन में प्रेम की कोई समस्या नहीं है क्योंकि वह सदा आर्थिक समस्याओं से घिरा रहता है । आर्थिक विपन्नताओं से वह इतना दबा हुआ है कि रोमांस के लिए उसके पास किंचित मात्र समय नहीं है । उसकी समस्या तो रोटी की समस्या है - "हमें लगातार काम मिलें तो हम अपनी इन्हीं टेढे-बेंगे कच्चे घरों में मस्त है । मकानों से ज्यादा हमें काम चाहिए - काम और रोटी ।"[57]

---

57. पत्थर अल पत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 36

हसनदीन अपने बच्चे की शिक्षा की बात और अपनी पत्नी को सुखी बनाये रखने की अभिलाषा दोनों को संजोकर जीवन बिताता है । उसके भी अनेक रंगीन स्वप्न है, आकांक्षाएँ हैं । लेकिन वह इनमें किसी को भी पूरा नहीं कर पाता । इसका कारण है उसकी आर्थिक कठिनाईयाँ । वह हमेशा लखपति बनने का स्वप्न देखता है लेकिन उसके पास एक कौडी भी नहीं है । "एक लाख की बात दूरी रही, उसने कभी एक हज़ार रूपया भी न देखा था । सोने की मोहर उसके दादा-परदादा ने देखी हो तो और बात है, पर उसके दर्शन उसे कभी न हुए है । सपने में भी वह उन्हें रख पाने के योग्य न था ।"[58] गरीबी से आहत होने पर भी वह जीवन में अचंचल आस्था रखनेवाला है । उपन्यास के अन्त में जब हसनदीन को खन्ना साहब के द्वारा धन के इनाम के स्थान पर हरनामसिंह के थप्पड मिलते हैं तब पाठक भी मर्माहत हो उठते हैं और उन्हें लगता है कि हसनदीन की पीडा उनकी अपनी पीडा है ।*

हसनदीन एक ऐसा पात्र है जो सारे उपन्यास पर छाया हुआ है । पाठकों की दृष्टि उस पर ही केन्द्रित रहती है । वह अपनी निरीहता, भोलेपन और दयनीयता ही के कारण पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करता है । इस प्रकार हसनदीन कश्मीर के शोषित वर्ग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता है ।

इस उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है खन्ना । खन्ना स्वयं को उदार हृदयवाला कहता है और अपने बाह्याडंबर द्वारा अपनी हालत को ढकने का प्रयास भी करता है । खन्ना अपने को लाख ढकने पर भी समय समय पर खुल ही जाता है । वह इतना कंजूस है कि उसके बच्चा एक टोपी के लिए कई

---

58. पत्थर अल पत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 65
* अश्क का कथासाहित्य - डा.अहिबरन सिंह, पृ. 112.

बार हठ करने पर भी वह उसके लिए एक टोपी नहीं खरीदता है । यात्रा के बीच यात्री लोग एक रेस्तोराँ में रूकते हैं चाय पीते हैं लेकिन हसनदीन को चाय के लिए एक पैसा भी देने के लिए वह तैयार नहीं । बार बार पूछने पर खन्ना दस का एक नोट उसकी ओर फेंक देता है । उसके अनुदार स्वभाव से तब हसनदीन पूर्ण रूप से परिचित हो जाता है । खन्ना के हृदय में गरीबों के प्रति थोडी भी सहानुभूति की भावना नहीं है । वह स्वार्थ ही नहीं बेहराम भी है । उसके कथन स्वयं उसके शील का परिचायक है । "चाहे एक घंटे के लिए रहना हो, जब पैसा देना तो पैसे का दाम लेना ।..... यों हम हज़ारों खर्च करते हैं, लेकिन जो खर्च करते हैं उसका दाम भी वसूल करते हैं ।"[59]

मुँह-माँग दाम देना उसकी कारोबारी वृत्ति को स्वीकारा नहीं । एक छोटी सी वस्तु खरीदने के लिए भी वह घंटों तक सौदा करने वाला है । रिश्वत की भाषा के अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता । वह शहरी आदमी है । इसलिए ईश्वर पर उसका विश्वास नहीं है । ईश्वर से भी उसकी भाषा रिश्वत की भाषा है । बाबा ऋषि की समाधि पर वह कुछ भी खैरात नहीं करता है । उसे इसका कारण भी है "मेरी जेब में रेज़गारी नहीं, दस-दस के नोट हैं । हम बाबा ऋषि की खिदमत में फिर हाज़िर होंगे और अगर हमारे मन की मुराद पूरी हो गयी तो बाबा को खुश कर देंगे ।"[60]

इसप्रकार खन्ना बहुत क्षुद्र, नीच और अनुदार प्रकृति का व्यक्ति लगता है । वह चालाक एवं हृदयहीन है । उपन्यास के अन्त में जब स्टैंड की चोरी

---

59. पत्थर - अल पत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 78

60. पत्थर - अल पत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 95

के लिए हरनामसिंह उसकी मरमत करता है । तब भी इसका पत्थर जैसे हृदय नहीं पसीजता है । खन्ना यह बात नहीं कहता है कि वास्तव में स्टैंड बैग में था और हसनदीन को पीटने की ज़रूरत नहीं । लेकिन वह कहता है "सरदार जी मारो नहीं, कहीं गिर गया होगा", उन्होंने कहा और जेब से अट्ठाईस नहीं तीस नहीं - केवल पन्द्रह रुपये निकालकर सरदार हरनाम सिंह के हाथ पर रख दिये ।"[61]

खन्ना इस प्रकार मध्यवर्गीय शोषक वर्ग का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करता है । वह शहर का है दूसरों के शोषण करने में उसे तनिक भी हिचक नहीं । उसकी शोषण की यह दमननीति शहर तक सीमित नहीं है गाँव के गरीब मज़दूरों तक फैली हुई हैं ।

इस उपन्यास का एक अन्य पात्र है हरनाम सिंह । वह एक बेईमान सिपाही है । इसका चित्रण मध्यवर्गीय शोषक के रूप में किया गया है । वह पत्थर दिलवाला इंसान है । खन्ना जैसे सवारों द्वारा ठगे जानेवाले गरीब घोडेवान को वह और भी सताता है और रिश्वत लेता है । वह गरीबों को कमाई ही नहीं देता है बदले जेल में उन्हें बन्द कर देता है और उन्हें मुक्त करने के लिए रिश्वत भी माँगता है । इस प्रकार हरनाम सिंह दोनों दृष्टियों से गिरा हुआ है । वह हमारी पुलिस के कर्मचारियों का सही प्रतिनिधि है । न्याय की रक्षा करने के बदले उसको दफनाना ही वह उचित समझता है ।

इस उपन्यास के अन्य गौण पात्र है खन्ना साहब की बीवी,

---

61. पत्थर - अल पत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 178

बच्चा, उप्पल साहब, उनकी भतीजी उषा, जीवानन्द, ईदू, मम्द, रैना, क्रीम खां आदि । गौण पात्र होने पर भी वे उस पथ के जीवन के अंग है । इनके बिना पथ का चित्रण जरूर निर्जीव बन पडता है, अधूरा हो जाता है । इस उपन्यास में चित्रित घोडों का भी अपना अलग महत्व है । ईदू, मम्द, घोडे आदि इस उपन्यास के मूक पात्र है । इनके पास अपनी पीडा के लिए शब्द नहीं है । वे चुपचाप ये सारा शोषण सह लेते हैं । उपन्यास में जीवानन्द और उषा का मूक प्रेम, खन्ना के बेटे कुक्कू का बचपना आदि का चित्रण भी स्वाभाविक रूप से हुआ है । उप्पल साहब भी खन्ना के ही वर्ग के पात्र है लेकिन इनका चरित्र खन्ना के चरित्र से बिलकुल भिन्न है । खन्ना और उप्पल साहब के चित्रण के वैरुद्य द्वारा लेखक ने दो व्यक्तियों के जीवन की भिन्नता का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

इस प्रकार "पत्थर - अल पत्थर" के सारे पात्र हमें स्वाभाविक ही लगते हैं । इसका नायक पीडित मानव का यथार्थ प्रतिनिधित्व करता है । इसका व्यक्तित्व इस संपूर्ण उपन्यास पर छाया हुआ है । खन्ना साहब, हरनाम सिंह जैसे पात्रों के चित्रण में भी कृत्रिमता नहीं है । वे भी मध्यवर्गीय शोषकों का संपूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं । कुल मिलाकर पत्थर-अल पत्थर एक ऐसा उपन्यास है जिसकी पात्र संरचना वातावरण विशेष की स्थितियों से जुडती हुई शोषक वर्ग और पीडित वर्ग दोनों की मानसिकता उभारकर रखती है ।

शहर में घूमता आईना

"शहर में घूमता आईना" के पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । एक शहर के सारे के सारे लोग इस उपन्यास के पात्र बनकर आये हैं । इसमें दो प्रकार के पात्र आये हैं । कुछ पात्र ऐसे पात्र है जिनका चित्रण नायक चेतन की

स्मृति रेखाओं के आधार पर होता है और दूसरे ऐसे पात्र है जो शहर में घूमते समय चेतन के आँखों के सामने से गुज़रते हैं ।

"शहर में घूमता आईना" का नायक है चेतन । इस उपन्यास में "गिरती दीवारें" के चेतन का नया रूप प्रस्तुत है । वह एक मासिक पत्र का संपादक है लेकिन वह इस काम में संतृप्त नहीं है । लेकिन परिस्थितिवश उसे कम वेतन में काम करना पडता है । अमीचन्द जैसे साथी डिप्टी कलक्टर बननेवाला है जबकि उसे पत्रकारिता के अन्धेरे कोने में पडा रहना पडता है । उससे उत्पन्न हीनत्व बोध उसे हमेशा पीछा करता है । उसके पास प्रतिभा है लेकिन अपने अन्तर्द्वन्द्व के कारण वह आगे नहीं बढ पाता है । चेतन का व्यक्तित्व दो प्रकार की कुंठाओं से ग्रस्त है एक काम की और दूसरी अर्थ की ।

उसके मन में सामाजिक परंपराओं को तोडने की इच्छा है । लेकिन कायरता उसे सदैव निष्क्रिय बना देती है । मुहल्ले की कुन्ती स उसका प्यार और उससे शादी न कर पाने की दुविधा चेतन कभी कभी ग्रस्त है । चेतन का दूसरा प्रेम नीला से होता है और उसे अपनाने में भी वह असफल हो जाता है । नीला के प्यार की मीठी स्मृतियाँ उसे घेरी रहती है । परिस्थितियों को उनकी यथार्थ स्थिति में स्वीकार करके आगे बढने और संघर्ष का जोखिम उठाने की शक्ति उसमें नहीं है । वह हमेशा परिस्थितियों से समझौता करता है । नीला का विवाह जब एक अधेट व्यक्ति से होता है तब वह सोचता है "..... जब कुन्ती अपने वैधव्य से समझौता करके हँस सकती हैं तो नीला कैसे न हँसेगी ? ..... वह बेकार इतना सोचता है ..... वह कल लाहौर चला

जायेगा और अपने आप को लाहौर की ज़िन्दगी में डुबो देगा । उसके पास जो है, उसे बेहतर बनाने का प्रयास करेगा, जो नहीं है, उसकी चिन्ता नहीं करेगा ।"[62]

चेतन की हीनता ग्रंथि बीच बीच में उसे पलायनवादी बना देती है । इस संबन्ध में उपन्यासकार का कथन है । वह तो चाहता है कहीं ऐसी जगह जाए जहाँ उसका मन नीला के विरह, अपनी पीडा, अमीचन्द की डिप्टी कलक्टरी और उसके संदर्भ में अपनी हीनता के अहसास को एकदम भूल जाए ।" लेकिन वह अन्त तक अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढने में असमर्थ है । इसलिए अन्त में वह भाग्यवादी बनकर स्वयं संतोष का अनुभव करता है ।

विक्षिप्तता के शिकार बनकर सडकों में घूमनेवाले पात्रों का प्रतिनिधि बनकर रामदित्ता हमारे सामने आता है । उसकी विशिष्ट मानसिक स्थिति यह दिखाती है कि आदमी किस तरह से अपनी अधूरी आकांक्षाओं की पूर्ति में असफल होकर पागल बनता है । ज्यों ज्यों इसकी उमर बढती जाती है उसके मन में अपना घर बसाने की अदम्य इच्छा बढती रहती है । लेकिन रामदित्ते के भाई और भतीजे किसी न किसी प्रकार उसे शादी करने नहीं देते हैं । अन्त में एक दिन तीन सौ रुपये खर्च कर विधवा आश्रम के किसी बाल विधवा से वह शादी करता है किन्तु वह भी एक दिन घर की सारी कीमती वस्तुओं को लेकर भाग जाती है । मुहल्लेवालों के लिए रामदित्ता का जीवन सदा मनोरंजन का विषय है और बच्चे भी हमेशा उसे छोडते रहते हैं । रामदित्ते के समान अन्य अनेक पागल भी मुहल्ले में हैं । चेतन का दादा पंडित रूपमाल के तीनों भाई बचपन से पागल नहीं थे लेकिन विषम सामाजिक परिस्थितियाँ एवं दमघोटू वातावरण इन्हें पागल

---

62. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 474

बना देते हैं । और भी कई परिवार में इस तरह के पागल पुराने समय से ही दिखाई पडते रहे । मुहल्ले में पागलों का ऐसा बनना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है क्योंकि "इस अभावग्रस्त मुहल्ले में जहाँ अशिक्षा, असंस्कृति, भूख और प्यास का राज्य था जहाँ कई घरों में उमर भर के भूखे-प्यासे कुंवारे पडे थे ; अनाचारी, जुआरी और पागल न हों तो और क्या हो ?"[63] अश्क ने इन विक्षिप्त व्यक्तियों की ऐसी स्थिति के लिए गरीबी, भूख और बेरोज़गारी को जिम्मेदार ठहराया है । मुहल्ले के लोग अभावग्रस्त होकर मानसिक सन्तुतलन खो बैठते हैं और पागलपन के शिकार बन जाते हैं ।

इस उपन्यास में तीन गुंडों को भी प्रस्तुत किया गया है देबू, जगला और बिल्ला जिनका कार्य है अनजाने राहगीरों का हँसी उडाना उनसे झगडा करना आदि । पीटने और पिटाने में उन्हें मज़ा आता है । बिल्ला पतला-दुबला गोरा चिट्टा तथा सुकुमार है । आठवीं नवीं और दसवीं में दो दो बार फेल होने के कारण पढाई छोड सुन्दर लडकों के पीछे घूमघूमकर उसने गुण्डा-गिरी अपना ली है । जगना ने बचपन ही से अपने जुआरी एवं शराबी पिता से ऐसी सारी आदतें ग्रहण की है, जो एक गुण्डे के लिए आवश्यक है । देबू की माँ तो बच्चों को नहीं अपने पति को भी झप्पड देनेवाली है । इसलिए उसका इकलौता पुत्र अपने प्यारे चाचा प्यारू के साथ था, जो शहर के एक नामी गुण्डा था । अपने चाचा से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने के बाद वह गुण्डाओं का सरदार बन जाता है । स्वातंत्र्यपूर्व समय के साथ जन्म लेनेवाली गुण्डा गिरी के स्वरूप को इन्हीं पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है ।

---

63. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 73

दीनानाथ, जालंधरी मल जोगी, महात्मा बंसीराम आदि अनेक ढोंगी लोग भी "शहर में घूमता आईना" में प्रतिबिंबित होते हैं । दीनानाथ जन्म से जडिया है लेकिन वह हकीम की उपाधि प्राप्त करके हकीम बनता है । आयुर्वेदिक नुक्से के कारण आनरेरी हकीम बनकर भोलेभाले लोगों को ठगने लगता है और अन्त में पकडा जाता है । लाला बंसीराम तो महात्मागाँधी की नकल हर बात में करता है और उसी प्रकार का रहन-सहन अपनाता है । वह स्वयं को दो-आबा का गाँधी मानता है । लेखक के शब्दों में "उनके अगले दो दाँत टूटे हुए थे और महात्मा गाँधी ही के अनुकरण में नकली दाँत लगवाना उन्होंने अधर्म समझा था । बहुत धीरे बोलते थे .... और बात करते-करते कभी सोचते, तो गाँधी जी ही की तरह होंठों पर ऊँगली रख लेते थे ।"[64] जालंधरी मल जोगी तो स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक बार जेल गया था । लेकिन जेल से आने के बाद वह जोगी बन जाता है और दूसरों के बीच अपने महान विचारों को बाँटना और ध्यान में लीन रहना ही अब उसका काम बन जाता है । वह परमानन्द की प्राप्ति का डींग मारता है । वह परलोक बनाने की फिक्र में इहलोक को भूल बैठता हैं । इधर ध्यान देने के बदले ब्रह्म की चिन्ता में निमग्न रहता है ।

इस उपन्यास का अन्य एक प्रमुख पात्र है हूपर साहब । वह बडा शायर है । उसने उर्दू भाषा में श्रीमद् भगवद्गीता का सरल पद्यानुवाद किया है और अपने मिलनेवालों को वह हमेशा शायरी सुनाता है और अपना बडप्पन बघारता है । वह लाला बंसीराम का खूब प्रशंसक है । "विधवा सहायक" के संपादन कार्य में वह बंसीराम की खूब सहायता करता भी है और इसके बदले

---

64. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 260-261

बंसीराम से पैसा भी लेता है लेकिन हूनर दूसरों से यह कहता है कि विधवा सहायक में लगना देश की सेवा करना है । दूसरों से लिखे गये शेरों में छोटे-मोटे बदलाव के ज़रिये वह उनको अपना बना लेता है । और दूसरों के सामने रोब जमाता है । हूनर के प्रति चेतन का यह विचार उसका ठीक परिचायक है । "इस आदमी के भाग्य में साहित्य में अपनी कला की छाप छोडना नहीं लिखा", उसने सोचा, "यह इन्हीं छोटे-मोटे पत्रों में लिखकर और निश्तर तथा रणवीर जैसे छुटभइये शागिर्दों से अपनी रचनाओं की दाद पाकर अपने अहं को संतोष देता रहेगा ।"[65] इस प्रकार हूनर साहब का चित्रण एक साहित्यिक शोषक के रूप में हुआ है । हूनर उन कवियों का प्रतिनिधि बनता है जो असली कवि न होते हुए भी दूसरों की शायरी की चोरी कर अपनी वाह-वाही का सिलसिला बनाये रखना चाहते हैं । प्रतिभा कम और प्रशंसा ज्यादा ये इनका वादा है ।

इस उपन्यास में आनेवाले दो चार पात्र चेतन के मित्र हैं । चेतन के दो प्रकारों के मित्रों को उपन्यासकार ने उभारा है । एक प्रकार के मित्र हमीद अमीचन्द जैसे मित्र है जो बडे होने पर बडी बडी नौकरियाँ पाने के कारण चेतन को हेय दृष्टि से देखते हैं और औपचारिक शिष्टता दिखाते हैं । उनके व्यवहार से चेतन दुखी हो जाता है । ये लोग ऐसे मित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो ऊँचे उठ जाने पर नीचे वाले की ओर नहीं देखते हैं । लेकिन लल्लू, अमरनाथ, हरसरन जैसे मित्र भी है जो भले पात्र हैं । लल्लू को मुहल्लेवाले कद्दू कहकर पुकारते हैं । वह पढाई में मूर्ख था लेकिन सिगरेट की दूकान में अब वह सेठ बन बैठा है । अमरनाथ चेतन के बचपन का मित्र था । उसने स्कूल पढते समय एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम है "सरचश्मा - ए-ज़िन्दगी" । इसका अर्थ है "जीवन का

---

65. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 270

स्रोत" । लेकिन पुस्तक की बिक्री में वह सफल नहीं हुआ । बाद में वह सेकेण्ड हैण्ड बुकसेलर बन जाता है और जालन्धर में वह बड़ी दूकान खोलता है । अनेक संघर्षों को झेलते हुए इस प्रकार वह पाँच रुपयों के बल पर शुरू किया गया अपने कारोबार का विस्तार करता है । इस उपन्यास में संघर्षों का सामना करके आगे बढनेवाला एक ही पात्र है अमरनाथ । चेतन स्वयं अमरनाथ से कहता है "तेरी किताब सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी हो-न-हो पर तू सरचश्मा-ए-ज़िन्दगी ज़रूर है..... ज़िन्दगी से जूझना कोई तुमसे सीखे ।"[66]

इस उपन्यास के सेठ हरदर्शन, लाला गोविन्दराम जैसे दो राजनैतिक नेताओं को भी चित्रित किया गया है । लाला गोविन्दराम स्वदेशी आन्दोलन के सक्रिय नेता थे । वे कई बार जेल गए थे । लेकिन सेठ हरदर्शन तो कांग्रेस का मेम्बर नहीं रहा और न कभी जेल गया था । लेकिन वह तत्काल अपने सिल्क कुर्त्ता छोडकर खादी के कुर्त्ता में अपनी कारोबारी वृत्तियों को छिपाता है और कांग्रेस का उम्मीदवार अनकर असंब्ली में आना चाहता है । उसके जैसे धनी व्यक्तियों के रहने पर लाला गोविन्दराम कांग्रेस का उम्मीदवार कभी नहीं बन सकता है । इन दोनों के चित्रण द्वारा उपन्यासकार राजनीति के क्षेत्र के ऐसे दो पात्रों को प्रस्तुत करते हैं जो स्वभाव से एक दूसरे के विरोधी लगते हैं ।

"शहर में घूमता आईना" में अनेक स्त्री पात्र है जैसे चेतन की माँ लाजवती, चेतन की पत्नी चन्दा, भागो, कुन्ती आदि । भागो क्षत्री परिवार की है लेकिन भागो का तेलू के साथ भाग जाने में उस वातावरण ही उत्तरदायी है । उसका बचपन तो अभाव में बीता, जवानी भी अभाव में बीती, पति अधेड़

---

66. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 413

व मरीज़ उसके सगे संबन्धी भी टुच्चे आदमी । इसलिए वह तेलू के साथ भाग जाती है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है । अक्की अम्बो नामक दो जवान लडकियों की भी चर्चा इसमें आती है जो एक विशेष स्थितिबोध का परिचय कराती हैं । घर में जवान लडकियाँ विवाह के बिना जब रहती है तब उनकी मानसिक कुंठा किस तरह उन्हें परेशान करती है इसका अंशस्पर्श भी इस उपन्यास में मिलता है । एक अन्य स्त्री पात्र लच्छमा मंगलसेन की बीवी है लेकिन कई मायनों में लच्छमा शादीराम का रखैल है । कुन्ती चेतन की मुहल्ले की ही लडकी है, चेतन और कुन्ती दोनों लुक-छिपकर एक दूसरे से प्यार करते हैं लेकिन सामाजिक बन्धनों के कारण उनकी शादी नहीं हो पाई और कुन्ती का विवाह ऐसे एक अधेड व्यक्ति से होता है जो उसके लिए उपयुक्त नहीं है । यौवन में ही वह विधवा बन जाती है । उसी के साथ उसकी ज़िन्दगी एक प्रश्नचिह्न बन जाती है ।

इस उपन्यास में अन्य अनेक छोटे मोटे पात्र भी है जो अपनी समाजगत विशेषताओं को लेकर हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं । "शहर में घूमता आईना" के सब पात्र निम्न मध्यवर्गीय जीवन एवं समाज के प्रतिविधियों के रूप में आते हैं । वे अपने वर्ग के अभावों एवं दुर्बलताओं को पूरी तरह से प्रस्तुत करते हैं । नायक चेतन की कुंठा तथा भटकन उसकी ही नहीं अपितु समूचे निम्न-मध्यवर्ग की कुंठा और भटकन का प्रतिरूप है । "शहर में घूमता आईना" में वर्तमान समाज में पाये जानेवाले विविध प्रकार के लोगों का जीवन तथा वैयक्तिक अन्तर्द्वन्द्व का अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ चित्रण हुआ है । जीवन की स्थितियों से ऊबाहट महसूस करने पर भी भागो को छोडकर और किसी में कोई भी प्रतिक्रिया जन्म नहीं लेती । जैसे "शहर में घूमता आईना" शहर में जीते लोगों की ज़िन्दगी के विशिष्ट पक्षों को प्रतिबिंबित करानेवाला आईना है । आईने के सामने बहुत सारे लोग गुज़र जाते हैं । इस कारण उपन्यासकार को कहीं कहीं झाँकियाँ मात्र प्रस्तुत

करने का ही अवसर मिलता है । लेकिन नायक नायिका और उनके इर्द-गिर्द घूमने वाले पात्रों पर आईना बहुत देर तक टिका रहता है । इसलिए उनके कार्य कलापों का लेखा-जोखा कभी कभी अधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाता है । वस्तुतः यह रचना प्रयोगात्मक नवीनता का परिचय देने में समर्थ हुई है ।

एक नन्हीं किन्दील

"एक नन्हीं किन्दील" के पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । इन छोटे-बडे पात्रों का चयन कथाधारा के अनुरूप हुआ है ।

चेतन "एक नन्हीं किन्दील" का नायक है । इसमें चेतन का चित्रण लाहौर के पत्रकार एवं साहित्यकार के रूप में हुआ है । शिमला में कविराज के शोषण का शिकार बनने के बाद वह लाहौर लौटता हैं और वहाँ चेतन एक मकान और नौकरी की खोज में हैं । उसके साथ उसके पत्नी, भाई और भाभी भी हैं ।

चेतन अपने परिवार से बंधा हुआ आदमी है । अपने भाई के भविष्य को भी सुधारने के लिए वह अनेक कष्टों को सह लेता है । भाई की दूकान चलाने के लिए चेतन अपनी पत्नी चन्दा के जेवर तक बेच देता है । भाभी की बीमारी के अवसर पर भी वह अनेक कष्ट सहता है । चेतन अपने परिवार की परेशानियों से सदैव त्रस्त रहता है ।

चेतन के व्यक्तित्व की अन्य एक विशेषता उसका घोर परिश्रम, प्रबल महत्वाकांक्षा और इस्पात सी इच्छा शक्ति है । साथ ही साथ भावुकता का भी उसमें समावेश हुआ है ।

चेतन का जीवन हमेशा संघर्षों के बीच से गुज़रता है । एक ओर यक्ष्मा से भाभी की मृत्यु होती है तो दूसरी ओर चेतन का ससुर भी पागल बन जाता है । इन दोनों स्थितियों को लेकर भी उसको शारीरिक एवं मानसिक पीडा सहन करनी पडती है । उसकी सास उसके साथ नहीं रहती है क्योंकि वह ब्राह्मण स्त्री है और अपने दामाद की कमाई पर जीना वह अपमान समझती है । वह एक सेठ के घर में चौके बर्तन मलती है । इस कारण भी चेतन हीनत्व का एहसास करता है ।

लेकिन "गिरती दीवारें" का और "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन में जो चारित्रिक विशेषताएँ दिखाई पडती है वह अलग अलग सीमाओं से जुडती है । "एक नन्हीं किन्दील" में चेतन के चरित्र का प्रौढ रूप दिखाई पडता है जबकि "गिरती दीवारें" में उसकी मानसिकता उतनी विकसित नहीं है ।

"एक नन्हीं किन्दील" की प्रमुख नारी पात्रा है चन्दा । वह पत्नीत्व की एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत करती है । पति के लिए ही नहीं पति के परिवारवालों के लिए भी वह अपना जीवन समर्पित करती सी दिखाई देती है । चेतन का बडे भाई रामानन्द को दूकान खोलने के लिए वह अपने जेवर तक देती है । आसन्न प्रसवा होने पर यक्ष्मारोगी भाभी की सेवा-शुश्रुषा करने में भी वह हिचकती नहीं । अपने पति की इच्छा उसके लिए आज्ञा है । चन्दा उदात्तशील की नारी है । चेतन चन्दा के बारे में डायरी में इस प्रकार लिखता है - "चन्दा की बात सोचता हूँ तो अचानक भाभी की सूरत आँखों में घूम जाती है - उसी की तरह दो-दो रुपये के लिए लडने मरने वालियों की सूरत आँखों में घूम जाती है जाने चन्दा ने किस माँ का दूध पिया है । दुनिया की ज़रा-सी हवा भी उसे

नहीं लगी । अंग्रेज़ी से शब्द उधार लूँ तो कहना चाहता हूँ शी इज़ ए ट्रैयर-शी इज़ ए प्राईसलेस ट्रेयर ।"[67]

"एक नन्हीं किन्दील' की चन्दा सच्चे अर्थों में चेतन की सहधर्मिणी, सहगामिनी और जीवन संगिनी है । वैसे चन्दा के चरित्र पर चेतन के चरित्र का भी बडा प्रभाव पडता है, उसके चरित्र में काफी परिवर्तन दिखाई पडने लगता है । उसमें स्वाभिमान की भावना भी जागृत रहती है । जब वह समझ लेती है कि अपनी माँ का सेठ के वहाँ काम करना चेतन को रुचता नहीं और चेतन के मन में सास के प्रति नाराज़गी है, तब वह अपनी माँ से कहती है "माँ आजसे तुम यहाँ फिर कभी न आना ।"[68] चन्दा अपने माँ को बहुत चाहनेवाली है लेकिन परिस्थितियों के दबाव के कारण अपने मन की भावना में वह बदलाव लाती है और अपने माँ से जुदा होकर जाने के लिए तैयार रहती है ।

स्वयं चेतन ही उसके अगाध प्रेम व समर्पण से प्रभावित हो जाता है । उपन्यासकार के शब्दों में "चेतन को लगा था - वह कभी उस झील की थाह न पा सकेगा । उस अगाध स्नेह, उस अपार विश्वास को कभी न माप सकेगा ।"[69] चन्दा अपने पति की प्रेरणा और शक्ति है । इसलिए जब चेतन जीवनलाल कपूर की नौकरी छोडकर घर आता है और अस्वस्थ दिखाई पडता है चन्दा उससे कहती है "और दस नौकरियाँ मिल जाएंगी ।"[70] इस प्रकार चन्दा को इस उपन्यास की सर्वाधिक सशक्त नारी पात्र के रूप में अश्कजी ने चित्रित किया है ।

---

67. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 278-279
68. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 688
69. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 286
70. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 777

इस उपन्यास की अन्य एक प्रमुख नारी पात्र है चेतन की भाभी चम्पावती । वह चन्दा से बहुत भिन्न है । वह जिद्दी है । उसकी सारी कठिनाईयों का कारण उसकी जिद है । अपनी शादी के समय वह सुन्दर और स्वस्थ थी । लेकिन जब वह यक्ष्मा रोगी बन जाती है वह अस्पताल नहीं जाती है और उसका भरा गठा शरीर सूखकर कांटा हो जाता है । वह रूढियुक्त नारी है । उसके जिद्दी स्वभाव के कारण वह किसी बात को लेकर अपने देवर के सामने भी घूँघट डाल लेती है और मरते दम तक । पति के साथ उसका संबन्ध भी टूटा हुआ है । किसी भी बात पर झगडा करके मायके जाना उसकी आदत सी बन गयी है । उसके बारे में चेतन का यह विचार उसकी आदत पर प्रकाश डालता है. "वह पत्नी कैसी, जो पति की तकलीफ में साथ न दे । सुख के साथी तो सभी होते हैं, दुख का साथी जो है, वही सच्चा साथी है ।"[71] वह स्वार्थी भी है पति रामानन्द का चेतन और उसकी पत्नी चन्दा से स्वस्थ संबन्ध बनाये रखना उसे रूचता नहीं । इस प्रकार भाभी का चित्रण एक झगडालू, जिद्दी एवं स्वार्थी पत्नी के रूप में हुआ है ।

"एक नन्हीं किन्दील" के ध्यान देने योग्य पात्रों में चेतन की सास का नाम भी आता है । वह एक ब्राह्मण स्त्री है । उसका पति पागल खाने में हैं । लेकिन इस अवसर पर भी वह अपना संतुलन नहीं खोती है । दूसरों की कमाई पर वह जीना नहीं चाहती । वह एक सेठ के घर में नौकरानी बनती है । अपनी बेटी के घर का तो पानी भी पीना वह अपना अपमान समझती है । नौकरी से मिलनेवाली छोटी रकम से हफ्ते में दो बार बदाम की गिरियाँ और दूध लेकर वह पागलखाना जाती है और अपने पति को खिलाकर संतुष्ट हो जाती

---

71. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 318

है । पहले वे दोनों उनके जेठ के घर रहते थे लेकिन अब वह स्वयं मेहनत करके अपने पति को भी खिलाती है । इस प्रकार वह स्वाभिमानी दिखाई पडती है । अपने पति में वह अटूट आस्था रखती है । पुरानी पीढी के होने पर भी वह स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखनेवाली है । सास के चित्रण द्वारा अश्कजी एक स्वतन्त्र सत्ता रखनेवाली नारी को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं ।

इस उपन्यास का अन्य एक प्रमुख पात्र है कवि चातक । वह एक दिलचस्प पात्र है । उसकी राय में भोजन और चोदन इन्हीं दो पर दुनिया का सारा कारोबार निर्भर है । उनके अनुसार " संसार की महान रचनाएँ पेट और सेक्स की भूख ही से निसृत हुई हैं ।"[72] वह केवल मेट्रिक पास है । उसको विश्व साहित्य का अध्ययन ही नहीं, ज्ञान भी नहीं के बराबर है । अपने इस अभाव को छिपाने के लिए उसका वाद यह है "लोग विदेशी साहित्य पढकर उसका अनुवाद कर देते हैं और समझते हैं कि बडा तीर मार रहे हैं । हमारे गुरु ने हमें यह नहीं सिखाया । हम जो महसूस करते हैं, वही लिखते हैं । इसलिए मौलिक लिखते हैं । हमारी कविताएँ स्वानुभूति से जन्म लेती हैं, इसलिए वे किसी दूसरे की नहीं, हमारी और केवल हमारी हैं ।"[73] अपने को बडे सिद्ध करने के लिए दूसरों को घण्डों तक कविता सुनाने में वह हिचकता नहीं । वह सुननेवाले की कोई परवाह नहीं करता है । एक दिन चेतन को भी वह भोजन कराकर कविता सुनाने लगता है जिससे चेतन बेहद ऊब जाता है । वह कविताएँ सुनाते वक्त बीच बीच में टिप्पणी भी देता है । उसकी कविता सीधी सरल तो होती है लेकिन पाठक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडता ।

---

72. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 564
73. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 565

"एक नन्हीं किन्दील" का एक और पात्र है कश्मीरीलाल दाग । इसके चरित्र का चित्रण फ्लैश-बैक द्वारा दिखाया गया है । कश्मीरी लाल चेतन की यादों में जीता है । वह चेतन के मुहल्ले के ही एक ब्राह्मण युवक था और चेतन के बचपन का मित्र था । उम्र में वह चेतन से चार वर्ष बडा था । कश्मीरीलाल शायर था । इसलिए चेतन भी उससे बेहद प्रभावित था । कश्मीरी लाल मेट्रिक पास हो चुका था । लेकिन नौकरी उसकी कहीं नहीं लग पायी थी क्योंकि वह घोर मंदी का ज़माना था । वह भावुक व्यक्ति था । कश्मीरीलाल चेतन के पिता के साथ दो महीने रहा था । अपनी कविता धीरे स्वर में, बडी दर्दभरी लय में वह गाया करता था । उसका स्वर बहुत अच्छा था । बेरोज़गारी और इश्क की धुन उन्हें अन्दर-ही-अन्दर खा जाती थी । उसे टी. बी. हो गई थी । वह शांत स्वभाव का था । अपने में खोया रहता था । उसकी सगाई एक सुन्दरी लडकी से हुई थी । लेकिन बेरोज़गारी के कारण कश्मीरीलाल की सगाई टूट गई थी । स्थिति के इस प्रहार को सहन करना उसके लिए असंभव था । उसके शेरों में भी वह यह गम किसी न किसी रूप में व्यक्त करता था । बाद में वह भी यक्ष्मा रोगी बन गया और बिस्तर से लग गया और उसकी मृत्यु हुई । इस प्रकार कश्मीरी लाल दाग तत्कालीन बेकार असफल प्रेमी युवा लोगों का प्रतिनिधि बनकर इस उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है ।

इस उपन्यास का अन्य एक पात्र है भूतना । इस पात्र का यथार्थ नाम रामचन्द्र है । यहाँ "एक नन्हीं किन्दील" का एक दिलचस्प पात्र है । इसका भी चित्रण पूर्वदीप्त शैली द्वारा उपन्यासकार ने किया है । वह चेतन की यादों में जीता है । रामचन्द्र चेतन का अध्यापक है । उसका रूप और व्यवहार बच्चों को आतंकित करनेवाला है । क्रोध आने पर वह उस छात्र पर अपना गुस्सा उतार देता है जो छात्र पहले उसके सामने आता है । वह शिक्षकों की क्रूरता का प्रतीक है ।

भूतना के इस आदत का वर्णन उपन्यास में यों किया गया है "..... पीटते समय भूतना बेइख्तियार हो जाते । अपने आप पर उनका कोई अधिकार न रहता । एक बार अपने शिकार को पीट कर वे दोनों ओर की बेंचों के बीच की जगह में चक्कर लगाते .... बोलते-बकते उनके मुँह से झाग निकलने लगती और कई बार पीटते-पीटते थककर वे एक दो - हत्थड अपने सिर पर भी मार लेते ।"[74] भूतना छात्रावास के अधीक्षक भी है वहाँ भी वह लडकों को अपने कठोर अनुशासन में रखने की चेष्टा करता है । लेकिन वह अपने वैयक्तिक जीवन में दुखी व्यक्ति है क्योंकि उसका पारिवारिक जीवन अच्छा नहीं है उसके बच्चे भी उचित शिक्षा और देखरेख के अभाव में बिगड जाते हैं ।

साहित्य और पत्रकारिता से जुडे हुए अनेक पात्रों के दर्शन भी एक नन्हीं किन्दील में होते हैं । चौधरी ईश्वरदास, प्रभुदयाल मस्त, जीवनलाल कपूर, पंडित टेकराम शाही, आज़ाद लाला, शिवप्रसाद जख्मी आदि इसके उदाहरण हैं । चौधरी ईश्वरदास आर्य समाज के मशहूर रोज़ाना अखबार "समाज" के संपादक हैं । वह क्रिकेट के खिलाडी है लेकिन अखबार की नौकरी ने उसकी आँखों में स्थायी अलसाहट भी दी है । दफ्तर में दाखिल होते ही सामने की मेज़ पर अपनी अलसायी आँखें लिए हुए सीधे स्तंभ से जैसे दिखाई देता है । प्रभुदयाल मस्त समाज दैनिक पत्र के मालिक है । चेतन जब उससे मिलने जाता है तब पहले वह सौजन्य दिखलाता है लेकिन जब मस्त यह जानता है कि वह नौकरी के लिए आया है तो उसकी खुली मुस्कान सिकुड जाती है और चेतन को यह सूचना देता है कि वह वानप्रस्थी हो गया है और समाचार पत्र का कार्य-भार उसने अपने लडके को सौंप दिया है । उसका चरित्र नकाबी है । वह चेतन को रंगे सियार लगता है ।

---

74. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 226

शत्रुधनन लाल तीर प्रभुदयाल मस्त के सुपुत्र है । कालेज के जमाने में वह क्रान्तिवादियों की काल्पनिक रूमानी कहानियाँ लिखता था । उसकी शैली बडी भावुकता पूर्ण और प्रवाहमान थी । समाज के साप्ताहिक संस्करण में छपी उसकी कहानियाँ लोकप्रिय हुआ करती थी । कालेज में पढते समय वह एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता की सुपुत्री से प्रेम करता था । उनकी प्रेम कहानी सारे कालेज में मशहूर थी । मस्त के खिलाफ हाईकोर्ट में एक मुकदमा चल रहा था जिसका ब्यौरा अखबार में छपवाकर वह उससे फायदा उठाता था । उसकी प्रेमिका जब जेल चल गयी तब दुखी होकर तीर ने पचास हज़ार के दहेज पर एक कुरूप लडकी से शादी कर ली । इस प्रकार उसने अपने प्रेम का बलिदान किया । देश के लिए नहीं धन के लिए । आगे उस "केरियरिस्ट विद्रोही" ने अपने पिता की जगह अग्रलेख लिखना शुरू कर दिया । आज़ाद लाला भी पत्रकार है । लेकिन वह किसी प्रेस या अखबार के मालिक नहीं किसी स्कूल के हेडमास्टर लगता हैं । चेतन उनके पास नौकरी के लिए जाता है अपनी पहलेवाली नौकरी की तनख्वा के बारे में झूठा विवरण देने पर वह चेतन से नाराज़ हो जाता है । और नौकरी नहीं देता है । लाला पहले "हिमालय" नाम का सरकार परस्त साप्ताहिक निकालता था । लेकिन 1921 के आन्दोलन में उसकी ग्राहक संख्या घट जाने पर वह कांग्रेस का समर्थक बन गया और उसने अपना नाम "आज़ाद" रख दिया । बाद में "हिमालय" को बन्द करके "नौजवान" निकलता है । चेतन के अनुसार वह फ्रॉड आदमी है । वही लोगों में उसकी इज्जत की कोई कमी नहीं । शाही देश का एडिटर है । वह अफगान युद्ध में सेना के एक विभाग में काम करता था और साहित्यकार भी था । आज़ादी के संघर्ष में नौकरी छोडकर उसने पत्रकारिता ग्रहण कर ली । जीवन लाल कपूर "गुरु घंटाल" साप्ताहिक के मालिक-संपादक है । वह एक फूहड आदमी है । वह हमेशा अश्लील बातें करता है । वह पीली पत्रकारिता करनेवाला है और बेईमान

आदमी है । लाला और कपूर गुरु धण्डाल के पार्टनर्स थे लेकिन बाद में कपूर ने लाला को उससे काट दिया । चेतन भी कुछ समय तक वहाँ काम करता रहा है । कपूर अपने कर्मचारियों को गुलाम के रूप में देखता है । उसके व्यवहारों से ऊबकर चेतन वह काम छोड देता है ।

"एक नन्हीं किन्दील" में और अनेक छोटे मोटे पात्र भी है जैसे पण्डित रत्न, रत्न की पत्नी, धर्मदेव वेदालंकार, नीरव जी, करुण, किसलय जी, शुक्लाजी, कृपाल देवी, निम्मो, सेठानी, राजकिशोर आदि । इन पात्रों का चयन कथा विकास के लिए आवश्यक ही लगता है । इस उपन्यास में समाचार पत्रों में काम करनेवाले लोगों और साहित्यकार लोगों के चित्रण के माध्यम से उन दोनों क्षेत्रों का यथार्थ, सजीव एवं वैविध्यात्मक चित्रण प्रस्तुत करने में अश्क जी सफल हुए है । इन दोनों क्षेत्रों में होनेवाले अत्याचार एवं दिखावट का पर्दाफाश करने के लिए उन दोनों क्षेत्रों से संबन्धित अनेक पात्रों का चयन "एक नन्हीं किन्दील" में अश्कजी ने किया है ।

"एक नन्हीं किन्दील" का चेतन और अन्य पात्रों की मानसिकता पर विचार करने पर लगता है कि चरित्र चित्रण की दृष्टि से अश्क ने उनके प्रति एक तरह की निसंगता दिखाई है । चेतन का व्यवहार एवं उच्च आकांक्षा के बीच कोई ताल मेल नहीं बैठता । नौकरी के लिए दर दर भटकने वाला चेतन स्वतंत्रता संग्रामकालीन भारत की बेरोज़गारी की स्थिति का सही स्वरूप प्रस्तुत करता है । पत्रकारिता के क्षेत्र की अनिश्चित स्थिति का और छोटे छोटे मालिकों के मनमानेपन का विवरण चेतन के कार्यकलापों से जुडकर प्रस्तुत होता है । जज बनने का स्वप्न देखनेवाला चेतन उसके लिए उचित शिक्षा और अनुभव इकट्ठा करने की कोशिश नहीं

करता । उसके लिए वह एक स्वप्न मात्र है । नौकरियों को ठुकरा देना उसके अहं का प्रमाण है परन्तु अहं की तृप्ति केलिए उचित सामग्री की खोज करने में वह असमर्थ रहता है । कुल मिलाकर चेतन लक्ष्यहीन भटकनेवाला महत्वाकांक्षाओं के स्वप्न देखनेवाला एक अव्यावहारिक पात्र है ।

उधर चन्दा के चरित्र में काफी सुधार दिखाई पडता है । "गिरती दीवारें" की चन्दा "एक नन्हीं किन्दील" में आते आते अधिक दायित्वपूर्ण व्यवहार करने लगती है । पति की खुशी के लिए और उसमें आत्मविश्वास भरने के लिए वह भरसक कोशिश करती है । पति की नाराज़गी को देखकर अपने माँ को भी घर पर आने से मनाकर देती है । पति को हर अवसर पर सहारा देना चन्दा का लक्ष्य लगता है । चन्दा की माँ भी व्यक्तित्व रखनेवाली महिला है । दूसरों के घर की नौकरानी बनकर जीना उसे अधिक पसंद है क्योंकि दामाद के घर की रोटी खाना उसके लिए स्वीकार्य नहीं । अपने ऊपर विश्वास रखनेवाली चन्दा की माँ महिला के वैयक्तिक पक्ष का महत्व उभारती है । चेतन की भाभी एक जवान अशिक्षित और जिद्दी औरत है जो रोगग्रस्त होकर स्वयं अभिशप्त हो जाती है । पुरुषों में बहुतों को पागलपन का शिकार बनाना अश्क की बडी कमज़ोरी है । पात्र के लिए कुछ करना बाकी नहीं रहता तो उसे पागल बनाकर अश्क खुश हो जाते हैं । चरित्र चित्रण की अस्वाभाविकता की ओर यह हमारा ध्यान आकर्षित करता है । संक्षेप में एक नन्हीं किन्दील कथ्यात्मक दृष्टि से ऐसी कमियों से मुक्त नहीं है जिनको अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

बाँधो न नाव इस ठाँव (भाग I और II)

एक बृहद उपन्यास होने के नाते इस उपन्यास के पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । इस उपन्यास के उच्च-मध्यवर्गीय पात्रों द्वारा अश्कजी

इस वर्ग के टुच्चेपन, दर्प एवं शोषण की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं ।

उपन्यास का नायक है चेतन । वह निम्नवर्ग का कमज़ोर इंसान है । वह भावप्रवण लेकिन मेहनती युवक है । उसके मन में अपने भविष्य के प्रति उच्च आकांक्षाएँ है लेकिन उसकी आर्थिक एवं पारिवारिक स्थिति इसके लिए उपयुक्त नहीं है । आर्थिक अभाव के कारण उसे कई तरह के कष्ट उठाने पडते हैं । वह अपने परिवेश से संघर्ष करता रहता है । चेतन में आत्मविश्वास एवं अहं की भावना है । वह अपने परिश्रम की कमाई खाना चाहता है । दूसरों के दान से मिली कुछ भी चीज़ उसे स्वीकार नहीं । घर में दो जून के आटे न होने पर भी वह नीलामकारों से दिए हुए दो रूपयों का उपयोग नहीं करता हैं । "सोसाईटी" का कुछ लेना भी उसे बुरा लगता है लेकिन पण्डित रत्न की प्रेरणा से ही इसके जनरल सेक्रेटरी के रूप में कुछ रूपये वेतन पाने के लिए चेतन तैयार होता है । अनारकली पर रूमाल बेचना उसकी आत्म निर्भरता का प्रमाण है । इस कार्य करने में उसके मन में हीनता की कोई भावना नहीं है ।

वह घोर परिश्रमी है । सोसाईटी के सरपरस्त बनाने के प्रयत्न में कई लोगों से अपमानित होने पर भी वह अपना श्रम खतम नहीं करता है । उसको ईश्वर में विश्वास नहीं । वह कर्म को मानता है और किस्मत को नहीं मानता है । साई बाबा से उसका निम्नलिखित कथन उसके इस स्वभाव का साक्षी है । "किस्मत को मानना मुझे अपने आपको नकारने के बराबर लगता है । अगर किस्मत ही सब कुछ है तो मैं क्या कहूँ ? गीता में लिखा है कि हम कर्मों के लिए आज़ाद हैं । लेकिन किस्मत को मानें और मानें कि हमारा हर पल और हर साँस

नक्षत्रों की चाल से बँधा है तो हमारे कर्मों में आज़ादी कैसी ?"[75] अपने समाज में दृष्टिगत अन्याय के प्रति उसके मन में आक्रोश की भावना है साथ साथ निराशा भी। अच्छी ज़िन्दगी की आशा लेकर वह शिमला में लाला हाकिमचन्द के वहाँ ट्यूटर बनकर जाता है ।

शिमला में भी उसको मानसिक द्वन्द्व का शिकार बनना पडता है क्योंकि लाला की भावुक लडकी चन्द्रा उसे आकर्षित करती है । चेतन सोचता है "क्यों बार-बार उसके मन में हर नयी लडकी के लिए खिंचाव पैदा हो जाता है ?..... क्या सभी पुरुषों के साथ ऐसा होता है ? यह क्या मर्द की सहज कमज़ोरी है ? .... तो क्या वह चन्द्रा से प्रेम करने लगा है ..... कल चन्द्रा उसके साथ भागने को तैयार हो जाय तो क्या वह भाग जाएगा ?"[76] लेकिन यहाँ चेतन अधिक सतर्क रहता है । वह यौन कुंठाओं से ज़रूर ग्रस्त है लेकिन वह अपने स्वभाव में प्रौढता दिखाता है । किसी न किसी तरह अपने आपको संभाल लेता है ।

चेतन का जो स्वरूप इस उपन्यास में दिखाई पडता है अधिक प्रौढ और गंभीर है । एक प्रकार से चेतन के चारित्रिक विकास का यह अन्तिम सोपान है । इसकारण उपन्यासकार ने उसे अधिक सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया है । वैसे इस पात्र में उस व्यक्ति की झलक मिलती है जो महत्वाकांक्षा को गले लगाते हुए संघर्ष को अपनाता है और आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी मंजिल

---

75. बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग । - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 477
76. बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग ।। - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 331-332

तक पहुँचने में असमर्थ सा है । स्वयं चेतन यह महसूस करता है कि उसे आगे बढना है परन्तु आगे बढने के लिए जो रास्ते उसके सामने दिखाई पडते हैं वे सह कहीं न कहीं मुड जाते हैं और लक्ष्य तक ले जाने में असमर्थ है । ऐसा लगता है कि महत्वाकांक्षा को व्यावहारिक बनाने का कोई उचित उपाय उसके सामने नहीं है । अनुमान यह लगाया जा सकता है कि यह चेतन भी उन्हीं लाखों हज़ारों से एक हैं जो स्वप्नों का ही सौदागर बनकर रह जाता है ।

चेतन की पत्नी चन्दा "बाँधो न नाव इस ठाँव" की एक प्रमुख नारी पात्र है । चेतन पहले उसकी ओर अधिक स्नेह नहीं दिखाता है । लेकिन बाद में उसके अच्छे व्यवहार के कारण उसे चाहने लगता है । चन्दा चेतन पर पूर्ण विश्वास रखती है । वह शान्त और स्थिर है । पति की नौकरी छूट जाने पर चन्दा ही उसे आश्वासन दिलाती है । "आज नहीं मिला तो कल मिल जायेगा आप घबराते क्यों हैं ? आटे की आप चिन्ता न कीजिए । आप कहिए तो मैं दस दिन का प्रबन्ध कर दूँगी ।"[77]

इस उपन्यास में चन्दा प्रौढ गृहणी सी दिखाई पडती है । चन्दा अत्यन्त सरल स्वभाववाली है । अपने पति का एक सुन्दरी कुमारी का ट्यूटर बनने पर भी उसे कोई शिकायत नहीं । उसके मन में चेतन के प्रति अगाध विश्वास है । चेतन के साथ जीवन बिताते समय उसे अनेक कष्टताएँ उठानी पडती हैं । लेकिन वह अपने पति को कोसती नहीं । यहाँ उसकी समझदारी का परिचय हमें मिलते हैं ।

---

77. बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग । - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 65

वैसे उपन्यास के प्रथम भाग में ही चन्दा का चारित्रिक विकास दिखाया गया है इस रूपरेखा के आधार पर उसके व्यक्तित्व को उभारा गया है । वह यह सूचित करता है कि चन्दा सभी दृष्टियों से भारतीय पत्नी है । शायद उपन्यासकार चन्दा से ज़्यादा दायित्वपूर्ण काम करना नहीं चाहते हैं इसलिए पति की जीवन यात्रा में सहायक बनकर ही वह अपनी भूमिका अदा करती है । उपन्यास के दूसरे भाग में चन्दा के कारनामों का कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है क्योंकि तब तक चन्दा के स्थान पर चन्द्रा का आविर्भाव हो जाता है और चन्द्रा चेतन की चेतना पर एक सीमा तक छायी रहती है ।

इस उपन्यास की अन्य एक प्रमुख नारी पात्र है लाला हाकिमचन्द की रूपागर्विता, उन्मादी लडकी चन्द्रा । वह लाड प्यार में पली हुई है , कई बार वह अपने ट्यूटरों को पिटवा चुकी है । चन्द्रा देखने में सुन्दर है लेकिन उसकी बुद्धि उतनी तीक्ष्ण नहीं है । दो बार वह मेट्रिक में फेल हो चुकी है फिर भी पढाई में उसे तनिक भी ध्यान नहीं है । वह हमेशा चेतन से इधर उधर की बातें करते रहना चाहती है और पढाते समय चेतन के चेहरे पर एकटक देखती रहती है । वह हमेशा अपनी एक सहेली के साथ चेतन को छेडने की कोशिश करती रहती है । दूसरों को छेडने और उनसे छिडवाने का भी उसे शौक है । उसमें शील संकोच जैसी नारी सुलभ भावना नहीं । वह चेतन से भी खुलकर अपना प्यार प्रकट कर देती है । इस उन्मादी स्वभाव के लिए वह अपने पिता द्वारा पिटती रहती है लेकिन वह फिर भी वही कार्य करती रहती है । वह अपनी उम्र की प्रौढता नहीं दिखाती है । छोटे बच्चों के साथ खेलती है । वास्तव में चेतन के प्रति उसका अगाध प्रेम भी है । पिता द्वारा पिटवाने पर भी उसे चेतन से तनिक भी शिकायत नहीं । शिमले के जेल से चेतन के वापस आते समय चेतन की दयनीय स्थिति देखकर उसका हृदय सहानुभूति से भर उठता है ।

जैसे चन्द्रा में यौवन के प्रवेश द्वार पर खडी रहनेवाली एक मस्त किशोरी का चित्रण मिलता है । चन्द्रा ऐसी युवतियों की प्रतीक है जो अपने सौन्दर्य पर गर्व करती है और उसी के आधार पर पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है। अक्ल की मोटी होने पर भी प्यार करने के तरीकों को अपनाने में वह अधिक सूक्ष्म है । अश्क ने इस पात्र के माध्यम से नारी के उस रूप को प्रस्तुत किया है जो चंचल और चंचल है । और एक प्रकार से उसका व्यवहार उम्र के अनुकूल है और स्वाभाविक भी है । लेकिन वह भी सूचित किया है कि ऐसी लडकियों के व्यवहार से पुरुष की पिटाई हो सकती है और इससे बचकर रहना पुरुष का कर्तव्य है ।

लाला हाकिमचन्द "बाँधो न नाव इस ठाँव" का एक अन्य प्रमुख पुरुष पात्र है । वह चन्द्रा का पिता है और कठिन अनुशासक है । लाला एक सरकारी दफ्तर में सुपरिण्टेण्डेण्ट है । एक क्लार्क के रूप में भर्ती होकर दस वर्ष में ही वह सुपरिण्टेण्डेण्ट बन गया । इस बात को लेकर उसमें दर्प की भावना भी है । वह बडा निष्ठावान एवं कठिन परिश्रमी है । उसमें काफी आत्मविश्वास है । सुपरिण्टेण्डेण्ट होने पर भी घर की छोटी से छोटी बातों पर भी उसका ध्यान जाता रहता है । उसके इस स्वभाव का वर्णन उपन्यास में यों प्रस्तुत किया गया है । "लाला हाकिमचन्द ने तांगे से सामान उतारते समय डायरी से मिलाकर गिना था ; प्लैटफार्म पर आने के बाद गिना था और इस बीच लगातार डायरी हाथ में लिये, हिदायतें देते वे इधर से उधर, उधर से इधर दौडते रहे थे ।.... "सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गये"..... उसने (चेतन) मन ही मन हँसते हुए सव्यंग्य कहा था, पर क्लर्कीना जेहनियत नहीं गयी ।"[78] लाला हाकिमचन्द स्वभाव से क्रूर है ।

---

78. बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग II - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. ।।

वह गुस्से में आकर अपने पत्नी-बच्चों को खूब पीटता है लेकिन शान्त हो जाने पर उसका मन पश्चात्ताप से भरता है । वह स्वयं को कल्चई मानता है । लेकिन उसके निकट का संबन्ध रखने पर ही दूसरा व्यक्ति यह समझ सकता है कि वह उतना कल्चई नहीं है ।

"बाँधो न नाव इस ठाँव" के पात्रों की संख्या बहुत अधिक है । चातक, रामानन्द, पण्डित रत्न, जीवन लाल कपूर, कविराज आदि पात्र जो अश्क जी के पहले उपन्यासों में हैं वे भी इसमें आते हैं । इनके अलावा सूफी हनुमान प्रसाद, साई बाबा, रणवीर ऐसे अनेक गौण पात्र भी है । इन पात्रों की विशेष भूमिका न होने पर भी कथ्यात्मक परिवेश के बनाये रखने में इनसे सहायता लेखक को मिली है । वैसे पात्रों की एक भीड रचना प्रक्रिया की संश्लिष्टता से जोडने में सहायक सिद्ध नहीं होती है । उपन्यास में फैलाव लाने में ही ये पात्र सहायक दिखाई पडते हैं । दूसरी बात यह है कि पूर्व उपन्यासों में उपर्युक्त पात्रों की चर्चा हुई थी और इस कारण इस भीड को आगे बढाना आवश्यक बन गया है ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि चर्चित पात्रों को छोडकर जो भी पात्र इस उपन्यास में आये हैं वे सब विशेष महत्व के नहीं है । अश्क जी की रचना शैली पात्रों की संख्या को अनदेखी करने की है । वस्तुतः इस उपन्यास के पात्रों में मनोवैज्ञानिक संघर्ष और द्वन्द्व कम ही दिखाई पडता है । कथ्यात्मक विशिष्टता में मानसिक संघर्ष के लिए कोई विशेष भूमिका तय नहीं करती । संक्षेप में 'बाँधो न नाव इस ठाँव' की रचना प्रक्रिया कोई विशेष लक्ष्य बोध को लेकर न होने पर भी आधुनिक मनुष्य के जीवन की विरोधात्मक स्थितियों का बोध कराने में सक्षम निकलती है ।

निमिषा

निमिषा उपन्यास के सारे पात्र निम्नमध्यवर्ग या उच्चमध्यवर्ग से चुने गये हैं । इसके पात्रों की संख्या बहुत कम है । इस उपन्यास के मुख्य पात्र है गोविन्द, निमिषा, माला आदि ।

गोविन्द "निमिषा" उपन्यास का नायक है । वह निम्न मध्यवर्ग का है । वे तो कवि और चित्रकार है । लेकिन वह एक कमज़ोर आदमी है । वह एक सरल सीधा युवक है । एक बच्चे का बाप है । स्वतंत्र है, कमाता है, अपने को बडे कलाकार समझता है, फिर भी किसी भी बात पर निर्णय लेने में वह असमर्थ है । निमिषा को वह प्यार करता है उससे शादी करने की इच्छा उसके मन में है लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता क्योंकि उसकी मंगेदार लडकी उसकी भाभी के दूर के रिश्तेदार है और गोविन्द के घरवाले निमिषा को पसन्द नहीं करते हैं । भाभी-भाई की इच्छा के विरुद्ध कुछ करने का साहस उसमें नहीं है । गोविन्द तो सामाजिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध सोचता है लेकिन करता कुछ नहीं । वह स्वयं स्वीकारता है "लेकिन मैं परिवार से बंधा, कमज़ोर आदमी हूँ ।"[79] वह असमंजस और दुविधा में रहनेवाला व्यक्ति है उसमें इच्छा शक्ति का अभाव है । गोविन्द में जो भी इच्छा शक्ति है, सिर्फ अपनी कला को लेकर है । गोविन्द की निर्णय शक्ति का अभाव तब स्पष्ट हो जाता है जब गोविन्द के बडे भाई उसे देवनगर भाग जाने का सलाह देता है ।

गोविन्द तुरंत संवेगों से परिचालित है । लेखक के शब्दों में "उसकी यह मुश्किल है कि वह न सोच कर बात कर सकता है न समझकर कदम उठाता

---

79. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 181

है । वे तुरंत संवेगों से परिचालित है और जितना कुछ उसने सोच रखा होता है, कई बार क्षणिक आवेग में वह उससे उलटा आचरण करता है ।"[80] दूसरों के प्रति उसका हृदय तुरन्त आर्द्र हो जाता है । माला से उसे प्यार न होने पर भी गोविन्द पहले ही दिन में इसलिए उसे नहीं छोडता है कि उसने एक भावुक कवि हृदय पाया है । वह जानता है कि एक लडकी को उसकी शादी के दिन ही छोड देना क्रूरता है, उसका अपमान करना है । गोविन्द के ही शब्दों से यह स्पष्ट है "लेकिन झूठ बोलने की मेरी आदत नहीं न मैं आदमियों को धोखा दे सकता हूँ न दोहरा जीवन ही जी सकता हूँ ।"[81]

गोविन्द में आत्मबल का अभाव है । इसलिए जिस चीज़ को वह चाहता है उसको प्राप्त करने में वह असमर्थ हो जाता है । अपनी दुविधा पर अधिकार पा लेने में असमर्थ होने के कारण उसको जीवन भर भटकना पडता है । निमिषा की दृष्टि में वह फूहड, विवश और मज़बूर आदमी है । निमिषा उसके स्वभाव को पूर्ण रूप से तब पहचानती है जब वह निमिषा से चोरी-छिपे शादी करने का प्रस्ताव रखता है । निमिषा को भी सबसे अधिक खीझ गोविन्द के असमंजस, दुविधा और इच्छा शक्ति के अभाव पर है । गोविन्द के ही शब्दों में "तुम भाई, बहुत भावुक हो, लेकिन अजीब बात है कि उतनी शक्ति संपन्न भी हो । मैं उतना भावुक नहीं, लेकिन कमज़ोर और ढुलमुल हूँ ।"[82]

गोविन्द तो प्यार के ढोंग रचकर निमिषा से शारीरिक संबन्ध जोडना नहीं चाहता है । इस बात के कारण निमिषा गोविन्द की

---

80. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 219
81. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 131
82. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 142

ओर अधिक आकर्षित हो जाती है । लेकिन गोविन्द प्रेम में ईमानदारी नहीं दिखाता है । जब भाभी और भाई से गोविन्द यह बात जान लेता है कि उसकी मँगेदार लडकी निभिषा से अधिक सुन्दर है तब उसका सौन्दर्यप्रिय कवि हृदय उस लडकी को चाहता है । तब उसको निभिषा का सौन्दर्य फीका लगता है । परन्तु निभिषा के प्रति उसका आकर्षण कम नहीं है । लेकिन जब गोविन्द का भाई यह कहता है कि "बहुत पढी लिखी ज़रूरत हो तो चार जमात शादी के बाद करा लेना, लेकिन सौन्दर्य तो कहीं मोल नहीं आता ।"[83] तब अनदेखी सुन्दरी पत्नी के प्रति आकर्षण गोविन्द के मन में अधिक तीव्र होने लगता है और वह माला से शादी करने का निर्णय लेता है ।

इस प्रकार गोविन्द का चित्रण एक कमज़ोर कलाकार के रूप में हुआ है । किसी भी बात पर निर्णय लेने में वह असमर्थ है । उसके जीवन की सबसे बडी कमज़ोरी यही है ।

अश्क ने इस पात्र के माध्यम से उन युवाओं की ओर इशारा किया हैं जो किसी भी समस्या के प्रति तर्कपूर्ण निर्णय लेने में असमर्थ है । अनावश्यक द्वन्द्व और भावातिरेक इनके चरित्र के अलग पक्ष है । वैसे गोविन्द जैसे युवा स्त्री के बाहरी सौन्दर्य के प्रति अधिक आकर्षित रहते हैं । प्यार की गहराई को और मानसिक लगन को पहचानने में ये असमर्थ रहते हैं । आकर्षण से बंधे जाने के कारण नारी और नारी के बीच का भेद उनके लिए रूप का भेद मात्र है । एक तरह की बेईमानी उनके चरित्र का अनदेखा पक्ष बन जाती है । इन्हीं दुर्बलताओं के कारण बडी कीमत उन्हें चुकानी पडती है ।

---

83. निभिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 183

इस उपन्यास की नायिका है निमिषा । वह ज़्यादा पढी-लिखी है । उसकी रुचियाँ और इच्छाएँ ऊँची है । उसकी कला तथा कविता में रुचि है और इस कला चेतना के कारण ही वह गोविन्द की ओर खिंचती है । गोविन्द के भाई सोम के ही शब्दों में "वे बहुत ही ऊँचे विचारों और सुधरी रुचियोंवाली हैं ।"[84] वह संयत, स्थितप्रज्ञ और अपने निर्णय में इस्पात सा दृढ है । उसकी दृढता को देखकर गोविन्द को भी ईर्ष्या आ जाती है । "क्षणिक आवेग में न कोई निर्णय लेने न बदलनेवाली । किसी गहरी लेकिन तेज नदी की तरह ऊपर से शान्त, स्थिर और सौम्य दीखती थी और उसके अन्तर में तेज बहनेवाली धारा का पता पाना कठिन था । उसमें जबरदस्त इच्छा शक्ति थी और इस सबके साथ कुछ अजीब सी व्यावहारिक रुचि ।"[85]

निमिषा के अपने व्यक्तित्व की पहचान है और जिस परिवेश में वह जीती है वहाँ एक अलग अस्तित्व रखती है । स्कूल में वह हेडमिस्ट्रस के पद से भी ज़्यादा यश कमाती है । निमिषा गोविन्द से प्यार तो करती है लेकिन प्यार और विवाह के संबन्ध में उसका अपना अलग विचार है । उसके मत में विवाह के बाद भी स्त्री-पुरुष अन्य स्त्री पुरुषों से अच्छी दोस्ती निभा सकते हैं ।

वह कठिनाईयों में पली-बढी है । इसलिए परिस्थितियों से लडकर जीने की ताकत भी उसमें हैं । वह अपने परिवेश को जानती समझती है । अपने विचारों के प्रति दृढ और एक निष्ठ है । अपने चाचा-चाची पर आश्रित होने पर भी स्वतन्त्र निर्णय लेने में वह समर्थ है । जब वह समझ लेती है कि

---

84. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 175
85. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 112

गोविन्द की सगाई दूसरी लडकी से हुई है तब वह सत्य निभिषा सहज भाव से स्वीकार कर लेती है । अपने प्यार का भंग होने पर भी वह दूसरों के जीवन में बाधा बनना नहीं चाहती है । उसका चेहरा न उदास हो जाता है । वह नहीं हताश होती है । और जब गोविन्द उसे कह देता है कि गोविन्द की मँगेदार लडकी उसे पसन्द नहीं है और घरवालों के ज़ोर देने पर वह उसे शादी करना चाहता है तब निभिषा तो स्पष्ट रूप से कह देती है "अगर आप ऐसा फील करते हैं तो सगाई तोड दीजिए, मुक्त हो जाइए ।"[86] इस प्रकार एक निर्णय लेने में जब गोविन्द असमर्थ हो जाता है तब निभिषा गोविन्द को उस निर्णय की ओर बढने का सुझाव देती हैं । गोविन्द का व्यक्तित्व निभिषा के व्यक्तित्व के सामने फीका पड जाता है ।

निभिषा भावुक तो है लेकिन शक्ति संपन्न भी । इसलिए जब गोविन्द उसे चोरी छिपे शादी करने का प्रस्ताव रखता है तब निभिषा उस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती क्योंकि ऐसे एक विवश और मजबूर आदमी को वह अपना विश्वास सौंप देना नहीं चाहती है । इस अवसर पर भिज़ेस शर्मा उससे कहती है - "यह गोविन्द पुरुष होकर भी कायर है और तुम नारी होकर भी वीर हो तो इसमें ईर्ष्या की क्या बात है ।"[87]

गोविन्द की शादी दूसरी लडकी से होने पर निभिषा को ज़रूर दुख तो है क्योंकि वह उसे उतना अधिक चाहती थी । लेकिन वह तो अतिभावुक

---

86. निभिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 65
87. निभिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 91

नहीं है । बडे बडे दुखों को भी सहज भाव से झेलने की अपार सहनशक्ति उसमें हैं । उपन्यासकार के ही शब्दों में "अपनी तमाम रोमानियत के बावजूद वह ज़्यादा जिम्मेदार व्यवहार कुशल और दृढ इच्छा शक्ति रखनेवाली हैं ।"[88] इसलिए गोविन्द की शादी के बाद भी निमिषा अपने को बिखरने नहीं देती है । गोविन्द की पत्नी को देखने के लिए वह गोविन्द के घर जाती भी है । और गोविन्द के शादी के बाद भी निमिषा स्नेहभरा निस्संकोच व्यवहार करती है ।

इस प्रकार उपन्यासकार ने निमिषा को एक शिक्षित सुसंस्कृत नारी के रूप में चित्रित किया है । आज की लडकियों को उसके जीवन से बहुत बातें सीख लेनी है क्योंकि उनको भी निमिषा की जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है । तब उन्हें भावुकता की झोंक में अपने को बहा देना नहीं चाहिए । अपने जीवन को बर्बाद नहीं करना है । उन्हें अपने जीवन के नये पथ की खोज करनी है । शायद यही उपन्यासकार का सन्देश है ।

निमिषा उपन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है माला । वह गोविन्द की पत्नी है । अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद गोविन्द शादी करना नहीं चाहता है लेकिन परिस्थितिवश गोविन्द को माला से शादी करनी पडती है । माला दुबली-पतली, सडी-तिकुडी, हड्डियोंवाली लडकी हैं । वह अपढ ही नहीं कुरूप भी है । इसलिए गोविन्द उसे पसन्द नहीं करता है । उसकी उम्र छब्बीस-अट्ठाईस से कम नहीं है । उसकी शादी ठीक समय पर नहीं होने के कारण उसके गालों पर काली काली झाँइयाँ उभर आयी है । उसका

---

88. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 96

व्यवहार निर्मिषा का जैसा सुसंस्कृत नहीं है । माला निर्मिषा को अपना शत्रु मानती है और निर्मिषा और गोविन्द के बीच की मित्रता भी उसे पसन्द नहीं है । गोविन्द ऐसी एक पत्नी को चाहता है जो उसे चित्रकला में प्रेरणादायिनी हो । लेकिन माला चित्रकला को "कागज़ रंगाना" कहती है । गोविन्द माला के स्वभाव में परिवर्तन लाने की बहुत कोशिश करता है लेकिन माला के स्वभाव में कोई भी बदलाव नहीं आता है । उसकी कामक्षुधा को कम करने में भी गोविन्द विफल हो जाता है । इस प्रकार उपन्यासकार ने माला को पूर्ण रूप से एक कुरूप, फूहड नारी के रूप में चित्रित किया है ।

इस पात्र के चरित्र चित्रण में उपन्यासकार ने पूर्वाग्रहों का सहारा लिया है । सभी प्रकार की बुराईयों से युक्त एक नारी का चित्रण प्रस्तुत करके स्वाभाविकता का हनन उपन्यासकार ने किया है । कुरूपिणी और दुबली-पतली हड्डियों का ढाँचा जैसा लगनेवाली औरत में काम-क्षुधा का आरोप करके उपन्यासकार ने बडी गलती की है । काम क्षुधा से पीडित होनेवाली स्त्रियों की शारीरिक ढाँचा साधारणत: उपन्यासकार के विवरण के अनुकूल नहीं है । फिर माला के इस कामोद्दीपक व्यवहार के लिए उपन्यासकार ने जो कारण बताया है वह भी हास्यास्पद है । अश्क के अनुसार उसका कारण यह है कि "वह निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के चारों दीवारों में बंधी थी और पच्चीस-छब्बीस साल की है" यह सब अजीब से कारण लगते हैं । वैज्ञानिक ढंग से विचार करने पर इन विवरणों का कोई विशेष आधार भी नहीं है । उपन्यासकार की असावधानी का यह उदाहरण है । माला जैसे पात्र की सृष्टि कथानक को आगे बढाने के लिए और गोविन्द को देवनगर से भगाने के लिए तथा निर्मिषा-गोविन्द संबन्ध तोडने के लिए कृत्रिम रूप से आयोजित की गयी है ।

कनक भी इस उपन्यास की एक महत्वपूर्ण स्त्री पात्रा है । कनक निमिषा की सहेली है । वह सुखसुविधा और लाडप्यार में पली अपनी बडाई स्वयं करनेवाली लडकी है । उसकी दिलचस्पी स्वयं में केन्द्रित है । कनक उच्च-मध्यवर्ग की है । वह तो चित्रकार है । पर हमेशा किसी अन्य चित्रकार की नकल करती है । निमिषा का निम्न कथन उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है - "तुम्हारे पास रेखाएँ खींचने और रंग भरने की प्रतिभा भले ही हो लेकिन संवेदना और सैंसिविटी का अभाव होने से तुम अच्छे चित्र नहीं बना सकती, जो किसी दूसरे का दुख दर्द महसूस नहीं कर सकता वह अच्छी कृतियाँ नहीं सृज सकता।"[89] कनक गोविन्द के चित्रों की प्रशंसा करती है और वह स्वयं यह बात स्वीकार कर लेती है "प्यार और पीडा के बिना कला का जन्म नहीं होता मेरी ज़िन्दगी में न तो कोई प्यार है, न दुख, न पीडा मैं तो सहज वक्त काटने के लिए शौकिया चित्र बनाती हूँ । मेरे चित्रों में वह बात कैसे आए, जो उसके (गोविन्द के) चित्रों में है ।"[90] गोविन्द के चित्रों की प्रशंसा करने पर भी वह उसे प्यार या विवाह नहीं करना चाहती है क्योंकि वह गर्वीली हैं और अपनी सारी वर्ग गत विशेषताएँ उसमें निहित है । उसमें बेहद दिखावा है । एक दिन वह जिसकी प्रशंसा करती है दूसरे दिन उसकी आलोचना करती है ।

वह आत्ममुग्ध लडकी है । वह तो शौकिया चित्रकार बनना नहीं चाहती, पेशावार चित्रकार बनना चाहती है । चित्र प्रदर्शनी में जब गोविन्द अपनी मरी हुई पत्नी का एक चित्र तक नहीं बेचता है तो कनक अपने माँ का "मदर" शीर्षक वाला चित्र भी बेचती है । वह बहुत बिज़िनेज़ मैंडड है ।

---

89. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 21
90. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 55

लेफ्टिनेण्ट हरीश कनक को प्यार करता है और कनक उसे हल्की ढील भी देती है । चित्र प्रदर्शनी में हरीश कनक का एक चित्र खरीदता है । वैसे कनक के मन में हरीश के प्रति कोई प्यार नहीं है । कनक ऐसे एक पति को चाहती है जो उसका नाम आर्ट के संसार में गूँजा उठाने की क्षमता रखता है । वह जानती है कि हरीश तो कला के बारे में कुछ नहीं जानता है । फिर भी वह हरीश के सामने प्रेम का अभिनय करती है । उसमें बेहद दिखावा है । इस प्रकार कनक में आभिजात्य का मिथ्यागर्व है और पूर्ण रूप से वह ढोंगी लगती है । काम चलाऊ व्यावहारिकता से अपने को जोडनेवाली कनक उस स्त्री की प्रतीक है जो प्रतिभा से पूर्ण न होने पर भी बहानेबाजी के बल पर स्वयं को दूसरों के सामने प्रतिष्ठित करना चाहती है ।

इस उपन्यास के अन्य छोटे मोटे पात्र है गोविन्द का बडा भाई, छोटा भाई सोम और निमिषा के कालेज की प्रिंसिपल मिज़ेज शर्मा आदि । गोविन्द का बडा भाई पुराने संस्कारों में विश्वास रखनेवाला है । स्त्री को शिक्षा देना उसे पसन्द नहीं इसलिए निमिषा से शादी करने से वह गोविन्द को रोक लेता है । उसके मत में - "पढी लिखी लडकियों से शादी कर लेना आसान है ..... दूर के ढोल ही सुहाने लगते हैं । शादी के बाद ही पता चलता है कि उस बाहरी तडक-भडक शिक्षा-दीक्षा के अन्दर क्या कुछ छिपा है ।"[91] गोविन्द के भाई जैसे व्यक्ति समाज के विकास में बाधा डालनेवाले हैं । लेकिन इससे बहुत भिन्न है गोविन्द का छोटा भाई सोम । वह आधुनिक विचारवाला आदमी है । सोम मध्यवर्गीय शिक्षित स्वतन्त्र विचारवाले युवक का प्रतीक है । सोम और उसके बडे भाई में आकाश पाताल का अन्तर है । पुरुषों के तीन रूप गोविन्द और उसके भाईयों के चित्रण के माध्यम से उभर कर आते हैं ।

---

91. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 175-176

वैसे निमिषा उपन्यास की पात्र संरचना सोद्देश्यपरक और स्वाभाविकता से पूर्ण रूप में अनुप्रेरित नहीं है । कहानी कहने की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक पात्र को उभारने के उद्देश्य से दूसरे पात्रों को अस्वाभाविकता का बोझ उठाने के लिए उपन्यासकार ने बाध्य किया है ।

अश्क के पात्रों की मानसिकता पर विचार करते समय हम यह समझ सकते हैं कि अश्क के अधिकांश उपन्यासों के पात्र निम्न-मध्यवर्ग से आए हैं । इस वर्ग की समस्त चारित्रिक विशेषताएँ उनके पात्रों में मिलती हैं । अश्क के पात्रों में विविधता है । अश्क अपने पात्रों को भीतर और बाहर भलीभाँति जानते पहचानते हैं । उपन्यासकार अपने पात्रों की रीति-नीति, भाषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार सभी बातों से हमें पूर्णतया परिचित, कराते हैं । अश्क स्वयं निम्न-मध्यवर्ग परिवार के हैं।* इसलिए वह अपने पात्रों की सारी अच्छाईयों और बुराईयों का यथातथ्य चित्रण करने में सफल हुए हैं । अश्क के सभी पात्र अपने परिवेश की ही देन है । वे पात्र जो विशेषताएँ दिखाते हैं वे सब उनको अपने परिवार या समाज से ही मिली है । अश्क के उपन्यासों में चित्रित निम्नमध्यवर्ग की कुंठा और भटकन समूचे निम्नमध्यवर्ग की कुंठा और भटकन का प्रतिरूप प्रस्तुत करते हैं । लेकिन उनके पात्रों की यह विशेषता है कि चारित्रिकता की दृष्टि से कृत्रिमता का आभास होने लगता है । कहीं कहीं अश्क ने पात्रों को घटनानुकूल बनाकर स्वाभाविकता का भंग कर दिया है और ये पात्र अश्क जी के हाथों की कठपुतलियाँ मात्र रह गये हैं और इन पात्रों के लिए करने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाता । अश्क के अधिकांश पात्र निर्णय लेने में असमर्थ है । उनके उपन्यासों में ऐसे कम पात्र ही मिलते हैं जो संघर्ष से गुज़ार कर आगे बढ पाये हैं ।

---

* अश्क एक रंगीन व्यक्तित्व - कौशल्या अश्क, पृ. 3।

अश्क की रचनाओं का कालखंड स्वतन्त्रता पूर्व भारत की स्थितियों से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के काल खंड तक व्याप्त है । इस कारण पात्रों में और उनकी परिकल्पना में नवीनता का विधान करना अश्क के लिए कठिन कार्य-सा लगता है । अश्क स्वयं पुरानी पीढ़ी के लेखक रहे हैं तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र से प्रयोगात्मकता को स्वीकारना और वैयक्तिक चेतना को उभारना उनके लिए प्रिय विषय नहीं रहा है । वस्तुतः अश्क के उपन्यासों की पात्र संकल्पना में नयी पीढ़ी के लेखकों का सी दृष्टिगत विशिष्टता नहीं दिखाई पड़ती है उसकी प्रतीक्षा भी उनसे नहीं की जा सकती है ।

भाग - II

अश्क के उपन्यासों का परिवेश

अश्क के अधिकांश उपन्यासों का रचनाकाल मुख्य रूप से 1934-40 तक का समय है । इसलिए स्वाभाविक रूप से इस अवधि के सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन का प्रतिफलन उनके सभी उपन्यासों में हुआ है । अश्क के प्रायः सभी उपन्यास निम्न मध्यवर्ग की जीवन गाथा है । उन्होंने अपने उपन्यासों के कथ्य के अनुसार ही परिवेश का सृजन किया है और वह चित्रण अत्यन्त यथार्थ, स्वाभाविक एवं प्रामाणिक बन पडा है । उन्होंने समसामयिक सामाजिक जीवन का चित्रण इसकी समस्त अच्छाईयों एवं बुराईयों के साथ किया है ।

(क) सामाजिक परिवेश

अश्क के उपन्यासों का सामाजिक परिवेश पूर्णतः कथ्य के अनुरूप रूपायित है । उनके उपन्यास समसामयिक सामाजिक गतिविधियों का जीवंत दस्तावेज है । अश्क ने लाहौर, जालंधर, कश्मीर एवं शिमला को अपने उपन्यासों का कथांचल बनाया है । अपने उपन्यासों द्वारा वे इन स्थानों की प्रत्येक गली, दूकान एवं मुहल्लों से हमें पूर्णतः परिचित कराते हैं । उनके उपन्यासों द्वारा वे उस समय के ऐसे एक समाज का यथार्थ चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं जो सभी प्रकार की विपन्नताओं से जकडा हुआ है । उस समाज में व्यक्ति को जीवन भर मेहनत करना पडता था और इसके बावजूद भी उसको दयनीय और पीडाओं से युक्त जीवन बिताना पडता था । "सितारों के खेल" से लेकर "निमिषा" तक की रचनाओं में इस प्रकार की दुविधापूर्ण ज़िन्दगी का चित्रण बिखरा पडा है । अश्क के उपन्यासों के परिवेश पर विचार करते समय उसके स्थूल और सूक्ष्म पक्षों पर ध्यान रखना पडता है । विवरणात्मक शैली को अपनाने

के कारण अपनी रचनाओं की स्थानीयता बनाये रखने के उद्देश्य से परिवेश के स्थूल पक्ष को पहले वे प्रस्तुत करते हैं जिसके अन्दर शहर की गलियाँ, बाग-बगीचे, तालाब-कुएँ और दूकानें आती है जिन से होकर जीवन के सूक्ष्म परिवेश का रूपायन होता है । अश्क की रचना शैली में सूक्ष्मता से अधिक स्थूल पक्षों का समर्थन दिखाई पडता है । इसलिए पात्रों की मानसिक यात्रा की अपेक्षा गलियों और नुकडों से गुज़रनेवाली बाहरी यात्रा का विवरण प्रमुखता को प्राप्त करता है । विषय प्रतिपादन की विशिष्टता इस आधार पर अंकित की जा सकती है ।

अश्क जी के पहला उपन्यास "सितारों के खेल" (1940) को कल्पना की कृति मानना अधिक उचित है । इसके नायक बंसीलाल द्वारा वे तत्कालीन कुंठित व्यक्तित्ववाले असन्तुष्ट निम्नमध्यवर्गीय युवकों का चित्रण करते हैं । अश्क जी तत्कालीन जनजीवन में प्रचलित सामाजिक रीति रिवाज़, विवाह प्रणाली, सामाजिक आदर्श, तलाक आदि पर प्रचलित विभिन्न दृष्टिकोणों को इस में प्रस्तुत करते हैं । लता के माध्यम से इस उपन्यास में तत्कालीन समाज में स्वतन्त्र प्रेम की निष्फलता दिखाकर प्राचीन एवं नवीन सामाजिक परिस्थितियों में किंकर्तव्यविमूढ सी दिखाई पडनेवाली तत्कालीन शिक्षित नारी का द्विधात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हैं । समाज में पुरुषों के हाथ नारी की दुर्दशा का लता के जरिये चित्रण हुआ है । इस उपन्यास का जगत तत्कालीन उत्तरदायित्व हीन युवकों का प्रतिनिधित्व करता है । अश्कजी इस उपन्यास में ठोस सामाजिक चेतना का निरूपण नहीं कर पाये हैं क्योंकि उसमें ऐसी अनेक घटनाएँ दिखाई पडती है जो तत्कालीन सामाजिक परिवेश में अयथार्थ दिखाई पडते हैं ।

अश्क अपने उपन्यास गिरती दीवारें (1947) में जालंधर की गलियों, सडकें, कुएँ की भीड, स्कूल और विद्यार्थी जीवन, बाज़ार और बस्तियाँ,

गली-गलौज, ढकोसले एवं दिखावे का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं । उसमें शिमले के दर्शनीय स्थान, बस्तियाँ, होटल, ढाबे एवं क्लबों का भी वर्णन है ।

"गिरती दीवारें" में समसामयिक समाज में दृष्टिगत उपेक्षा, पीडन, अत्याचार, चरित्र हीनता, पाखंड, शोषण आदि का चित्रण अश्क जी प्रस्तुत करते हैं । पत्नी और विवाहित पुत्रों को भी निर्दयता से पीटने में अपने बडप्पन माननेवाले अत्याचारी, निर्लज्ज एवं उत्तरदायित्वहीन पिताओं का चित्रण इसमें हैं । साथ साथ पुत्र प्रेमी एवं पतिनिष्ठ होने के बावजूद भी स्त्रियों को पुरुषों के दमन का शिकार बनना पडता है । इसमें चित्रित समाज में कई ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किया है जो यौन विकृतियों के कारण उत्पन्न महारोगों का बने हुए हैं । इस उपन्यास में चित्रित सारे के सारे मुहल्ला अपनी समस्त गरीबी, गन्दगी, रोग, शोक, दुश्चरित्रता, अशिक्षा एवं मूर्खता से युक्त दिखाई पडता है । ऐसे सडे हुए समाज के अंगरूप अपने मुहल्ले के बारे में चेतन सोचता है "यदि कहीं उसे अधिकार हो तो वह सारे-के-सारे मुहल्ले को धराशयी करा दे । उसकी नींव तक खुदवा डाले जिसमें सदियों से बीमारियों के कीडे पल रहे हैं । नये सिरे से स्वस्थ लोगों का मुहल्ले बसाये ।"[92]

अश्क जी के "गर्मराख" (1952) में भी आर्थिक तथा नैतिक स्तर पर उखडे हुए तत्कालीन निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का विशद चित्रण प्रस्तुत हुआ है । इस उपन्यास में तत्कालीन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की संकीर्णता तथा डपोरशंखी प्रवृत्तियाँ नंगी होती हुई दिखाई पडती है । गर्मराख के बृहद केनवास में तत्कालीन समाज के बुद्धिजीवी, कविगण, पत्रकार, छात्रगण, अध्यापक, व्यवसायी लोग, अपने अधिकारों के लिए लडनेवाले मज़दूर लोग, उनके नेता जैसे सभी प्रकार के पात्र आते हैं । इस उपन्यास में उस समय के मध्यवर्गीय परिवारों की

---

92. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 482.

अस्तव्यस्तता का खुला चित्रण मिलता है । पैसे के अभाव और नौकरी की अव्यवस्था में अपनी शक्तियों को क्षीण महसूस करनेवाले, सामाजिक प्रतिष्ठा पाने में असमर्थ दिखाई पडनेवाले तत्कालीन निम्न-मध्यवर्गीय युवकों का चित्रण भी इसमें प्रस्तुत हुआ है ।

"बडी बडी आँखें" (1955) में चित्रित देवनगर द्वारा अश्कजी तत्कालीन समाज की भ्रष्टता एवं दांभिकता पूर्ण वातावरण को प्रस्तुत करते हैं । स्वतन्त्रता के बाद भारत में अनेक आदर्शवादी सामाजिक संस्था की स्थापना हुई थी। इन संस्थाओं का व्रत सेवा का व्रत था और ये संस्थायें मानव प्रेम, शान्ति और सेवा का गुणगान करती थी । लेकिन इनके संस्थापक अपने आदर्शों को आवश्यकतानुसार विकृत करते थे । स्वातन्त्र्योत्तर काल के इसी उथल पुथल एवं विकृत परिस्थितियों से युक्त परिवेश का स्वरूप "बडी बडी आँखें" में उभरता है । इस उपन्यास के देवनगर वासियों में निहित वर्गभेद उच्चनीच की भावना चापलूसी, प्रशंसा की भूख, स्वार्थ लोलुपता, ईर्ष्या, बाह्याडंबर ये सभी भावनायें स्वातन्त्र्योत्तर समाज-सुधारवादी संस्थाओं के सदस्यों में भी मौजूद है । इस उपन्यास में चित्रित देवनगर का संस्थापक देवाजी की कथनी और करनी में विशाल अंतर है । वे तत्कालीन ठेकेदार राजनैतिक नेताओं का संपूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं ।

देश विभाजन के बाद के काश्मीर को ही अश्कजी ने "पत्थर-अलपत्थर" (1957) का कथांचल बनाया है । "पत्थर-अलपत्थर" एक सैर बीन है । बाह्य रूप से देखें तो इसका परिवेश प्रकृति सौन्दर्य से युक्त काश्मीर की घाटियाँ हैं । लेकिन उपन्यासकार ने इस सौन्दर्य युक्त परिवेश के अन्दर ही अन्दर तत्कालीन कश्मीरी घोडेवानों के संघर्ष पूर्ण जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उनके इस विषमतापूर्ण वातावरण का कारण उन पर किये जानेवाले

अत्याचार एवं शोषण की प्रवृत्ति है । शहरों से आनेवाले दर्शक लोग कम दामों में अधिक सुख पाने के उद्देश्य से उनको ठीक वेतन नहीं देते हैं । वहाँ के पुलिस लोग भी इस शोषण की प्रवृत्ति के भागीदार है ।

"शहर में घूमता आईना"(1963) में अश्क जी तत्कालीन निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के घिनौने रूप को प्रस्तुत करते हैं । इस उपन्यास में चित्रित समाज यौन भूखडों, पलायनवादियों, पागलों, कायरों, अनुत्तरदायियों, अवसरवादियों, धोखेबाज़ों, हीन ग्रंथियों वाले लोगों का समाज है । इस उपन्यास में चित्रित समाज आर्थिक विपन्नताओं, सामाजिक विषमताओं एवं रूढियों और सांप्रदायिक झगडों से युक्त है । वहाँ के अधिकतर लोग अशिक्षित है । भूख और प्यास ने वहाँ अपना राज्य बसाये हैं ।

"एक नन्हीं किन्दील"(1969) में अश्क जी ने विभाजनपूर्व भारत के महानगर लाहौर के विषमपूर्ण वातावरण को चित्रित करने का प्रयास किया है । इसमें लाहौर की उर्दू पत्रकारिता एवं साहित्यिक क्षेत्र से संबन्धित समाज ही प्रस्तुत है । इसमें दिखाई पडनेवाले देशभक्त पत्रकार या साहित्यकार हर कार्य अपने हित के लिए करनेवाले हैं और संपादक वर्ग तत्कालीन निम्नवर्ग के अशिक्षित निरीह पाठकों के अज्ञान से लाभ उठानेवाले हैं । उसमें चित्रित निम्न-मध्यवर्गीय समाज अर्थाभाव से युक्त है और इस वर्ग के युवा लोगों को तत्कालीन शोषकों के सामने अपनी क्रियाशक्ति को बेचना पडता है । नित्य नये नये नौकरियाँ खोजनी पडती है । तत्कालीन विषमता पूर्ण वातावरण के बारे में उपन्यास में यों कहा गया है "हमारे बीच आज लडाई झगडे, मार-काट, लूट-खसोट, मुकदमेबाजी तथा जाल भाजी का बाज़ार गर्म है, इसका एक मात्र कारण यही विषमता राक्षसी है ।" [93]

---

93. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 589

"बाँधो न नाव इस ठाँव" (1974) उपन्यास के कथानक का आरंभ लाहौर से होता है और इसका अंत शिमले में । इसमें एक ओर अपने पेट भरने के लिए दूसरों को ठगने के अनेक तरीकों को अपनाने वाले मध्यवर्ग है तो दूसरी ओर निम्नवर्ग के लोगों के प्रति उपेक्षा भरा व्यवहार करनेवाले शोषक वर्ग का चित्रण है । लाहौर के प्रत्येक मुहल्ला, होटल, बाज़ार, सडक और सी.पी. मेले आदि द्वारा परिवेश के स्थूल पक्ष को भी अश्क जी प्रस्तुत करते हैं । पंजाब के लोकगीतों और विवाह में होनेवाली रस्मों आदि का विवरण भी तत्कालीन सामाजिक जीवन के स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत करता है ।

अश्कजी के अन्तिम उपन्यास "निमिषा" (1980) में चित्रित समाज भी तत्कालीन समाजगत रूढियों से युक्त है । इसमें चित्रित निम्न मध्यवर्ग का आदमी गोविन्द अपने समाज और परिवार से बंधा हुआ है और इस कारण अपने वैयक्तिक मामलों पर भी निर्णय लेने में वह असमर्थ दिखाई पडता है । उस समाज की रूढि के कारण व्यक्ति को अपने जीवन भर असन्तोष का अनुभव करना पडता है । निमिषा में चित्रित समाज भी आर्थिक अभावों से युक्त मध्यवर्गीय समाज है ।

सामाजिक परिवेश का जो स्वरूप अश्क के उपन्यासों में उभरता है वह अतिरंजनाओं से युक्त होते हुए भी यथार्थ पर आधारित है । उपन्यासों के विषय वैविध्य से भरे हुए है इस कारण कथ्यात्मक विविधता के संदर्भ में समाज के कई पहलू उभरकर आते हैं । अधिकांश निम्न-मध्यवर्ग की ज़िन्दगी की गरीबी, बेरोज़गारी और असहाय अवस्था का चित्रण अश्क प्रस्तुत करते हैं । इन दृश्यों में समसामयिक भारतीय जीवन की विपन्नताओं का, आर्थिक परेशानियों का, नैतिक पतनोन्मुखता का, राजनैतिक भ्रष्टाचार का,

सर्वोपरि शोषण का स्वरूप उभर कर आता है । स्थूल परिवेश गत चित्रण के माध्यम से मुहल्ले, सडकों और गलियों की गन्दगी की कुरूपता का एहसास हमें होने लगता है । वस्तुतः स्थूल परिवेश को उभारकर उसी के बीच से गुज़रनेवाले सूक्ष्म जीवन की विसंगतियों से युक्त मानसिक रुग्णता से आक्रान्त असहाय समाज की सूक्ष्म मनोदशा का परिवेश वे उभारते हैं ।

§ख§ राजनीतिक परिवेश

उपन्यास में राजनीतिक चेतना का निरूपण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वह व्यक्ति जीवन की सीमाओं को लांघकर पूरे समाज या राष्ट्र से संबन्धित समस्याओं को प्रस्तुत करता है । चुनाव, स्ट्राईक, दंगे आदि इसके मुख्य विषय है । अश्क के उपन्यासों में भी तत्कालीन राजनैतिक परिवेश का स्वरूप स्वाभाविक रूप से उभरता है ।

अश्कजी के पहले उपन्यास "सितारों के खेल" में राजनीतिक परिवेश से युक्त दृश्य कम मिलते हैं । "गिरती दीवारें" में 1921 के काग्रेज़ी अधिवेशन का चित्रण है । उपन्यास का नायक चेतन को कविराज के लडके के साथ एक बाँसुरी देखकर अपने बचपन की घटना याद आती है । "प्रधान के जुलूस में वे दोनों §चेतन और उसका मित्र अनन्त§ शामिल हुए । जुलूस काग्रेज़ नगर से पैदल स्टेशन तक गया और पंडित जवहरलाल नेहरू के आने पर फिर बाज़ारों में से होता हुआ चला ।" [94]

---

94. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 498

नये मज़दूर आन्दोलन और उसकी सफलताओं का चित्रण "गर्मराख" के अन्तिम भाग में मिलता है । "गर्मराख" के पात्र हरीश के माध्यम से अश्कजी तत्कालीन राजनैतिक स्थितियों का सत्यचित्र को उभारते हैं । "इस समय हमारा आन्दोलन इस बात को लेकर है कि विदेशी शासन से देश को मुक्त किया जाय, इसके बाद क्या होगा इसकी कल्पना सब की अलग-अलग है - राजे-महाराजे सोचते हैं कि अपनी-अपनी रियासतों के स्वतन्त्र अधिपति होंगे ; सेठ-साहूकार सोचते हैं कि व्यापार उनके हाथ में आयेगा और अंग्रेज़ व्यापारियों के बदले शोषण की आज़ादी उनको मिलेगी ; नौकरी-पेशा वर्ग सोचता है, अंग्रेज़ के जाने पर उसकी उन्नति के मार्ग प्रशस्त हो जायेंगे, जिन पदों पर हिन्दुस्तानी को पर मारने की भी आज़ादी नहीं, वे सब हिन्दुस्थानियों के अधिकार में जायेंगा ;..... महात्मा गाँधी और उनके चन्द अनुयायियों को छोड, शेष सब-के-सब अवसरवादी है । उनकी दृष्टि आज़ादी के बाद बननेवाली सरकारों पर है ।"[95] उक्त कथन द्वारा अश्क जी तत्कालीन स्वार्थी भारतीय नेताओं का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करते हैं जिन में देश की उन्नति की अपेक्षा वैयक्तिक उन्नति की दृष्टि ही विद्यमान है ।

"बडी बडी आँखें" में राजनीतिक चेतना तो अन्तरूढि भावना के रूप में निहित है । राजनैतिक जीवन के आयामों से यह रचना जुडी हुई है । इसमें स्वातन्त्र्योत्तर भारत की आदर्शवादी संस्थाओं के खोखलेपन का चित्रण है । इस उपन्यास में चित्रित देवनगर का संस्थापक देवा जी अनुकरण में गाँधीवादी है । वे स्वप्नशील है । समाज के प्रति उनकी आकांक्षाएँ तो उच्च है । लेकिन वह भी स्वार्थ एवं अवसरवादी है । तत्कालीन भारतीय समाज में विद्यमान स्वजन पालन की भावना देवाजी की आदर्शवादी संस्था में द्रष्टव्य है । इस उपन्यास में

---

95. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 309-310

चित्रित देवनगर तत्कालीन खोखली समाज सुधारक संस्थाओं का ही प्रतीक है । अश्क जी स्वयं इसे राजनीतिक उपन्यास मानकर कहते हैं "उपन्यास को यदि गहरी दृष्टि से देखा जाय तो यह उतना सामाजिक नहीं जितना राजनीतिक है । चूँकि इसमें प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक चर्चा बिलकुल नहीं है । शायद इसीलिए लोगों का ध्येय इस ओर आकर्षित नहीं हुआ ।..... "बड़ी बड़ी आँखें" के रोमानी कथानक में राजनीतिक भावना आत्मा के रूप में विद्यमान है । पूरे का पूरा देवनगर और उसकी व्यवस्था एक विशिष्ट सरकारी ढाँचे का प्रतीक है ।" [96]

समसामयिक समाज में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ रहे विद्रोह एवं आन्दोलनों का रूपांकन अश्क जी के "शहर में घूमता आईना" में मिलता है । "..... चेतन के बड़े भाई ने बताया था कि महात्मागाँधी ने सरकार के साथ ना-मिल वर्तन का नारा दिया है..... सारे देश में आग लग गयी हैं । स्कूल, कालेज बन्द हो रहे हैं । लोग विदेशी कपडा पहनना छोड रहे हैं, शराब पीना छोड रहे हैं ....." [97] प्रस्तुत उपन्यास में इन्कलाब ज़िन्दाबाद के नारे लगानेवाले जुलूस का और उन पर लाठी चलानेवाली पुलिस का विवरण मिलता है । साथ साथ विदेशी कपडों की होली जलाने का भी वर्णन है । "शहर में घूमता आईना" के माध्यम से तत्कालीन अवसरवादी एवं चापलूस और झूठे राजनेताओं पर भी प्रकाश डाला गया है । इस उपन्यास के सेठ हर दर्शन इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । राजनैतिक क्षेत्र के चुनाव में दिखाई पडनेवाले अन्याय का चित्रण इस पात्र के माध्यम से अश्कजी करते हैं । सेठ हर दर्शन व्यापारी है

---

96. उपन्यासकार अश्क - डा. इन्द्रनाथ मदान - पृ. 74

97. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 127

जिसका कांग्रेस से कोई भी संबन्ध नहीं रहा है । वह तो कभी कांग्रेस की मेम्बर नहीं रहा न कभी जेल गया है लेकिन असंब्ली जाने की इच्छा से चुनाव के समय वह कांग्रेस का सदस्य बन जाता है सिल्की कुर्ता छोडकर खादी पहनता है । यदि उसे कांग्रेस की टिकट नहीं मिली तो भी उसे कोई समस्या नहीं क्योंकि वह जानता है कि अन्य किसी पार्टी की ओर से भी किसी न किसी तरह असब्ली जा सकता है । सेठ हरदर्शन के मित्र शशि का कथन है "जेल जाने की प्रतिभा जिसमें हैं उसमें ज़रूरी नहीं कि असंब्ली में बोलने की भी प्रतिभा हो । रही कांग्रेस की मेम्बरी, तो उसमें सिर्फ चार आने लगते हैं । टिकट मिलने की संभावना हुई तो हो जायँगे ।"[98] अंग्रेज़ों के समान तत्कालीन भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में अपने पैर जमाकर उससे लाभ उठानेवाले बनियों की ओर भी इसमें संकेत है । सेठ हरदर्शन का भाई वीरसेन का निम्नलिखित कथन इसका प्रमाण है "अंग्रेज़ी बनिया है, वह इस देश के बनियों से समझौता करके ही जायगा..... और आप कांग्रेस को क्या जनता की संस्था समझते हैं, जनता इसकी मुखौटा है - इसके अन्तर वही बनिया बैठा है । यह कांग्रेस के अधिवेशनों के लिए लाखों रुपये कहाँ से आता है ? इस देश का बनिया ही देता है ..... यह आज़ादी की लडाई इस देश के बनियों में उस देश के बनियों की लडाई है ।"[99]

"शहर में घूमता आईना" में भी गाँधी के अनुकरण करनेवाले झूठे नेताओं एवं समाज सुधारकों का चित्रण है । इस उपन्यास में चित्रित "विधवा सहायक सभा" के संचालक महात्मा बंसीराम एक ऐसा नेता है । लोग उसे "दो आबा के गाँधी" के नाम से पुकारते हैं । महात्मा गाँधी की तरह वे घुटनों

---

98. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 396
99. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 394

से ऊँची धोती बाँधते हैं और बहन सरस्वती के कंधों पर हाथ रखकर वे चलते हैं बात करते समय गाँधीजी की तरह होंटों पर ऊँगली रख लेते हैं ।

"एक नन्हीं किन्दील" में भी काग्रेज़ आन्दोलन का चित्रण मिलता है । "काग्रेज़ आन्दोलन का जमाना था । नित्य स्ट्राईकों और भूख हडतालें होती । शहर के कई गुण्डे हमेशा के लिए गुण्डाई छोडकर स्वातंत्र्य संग्राम में कूद गये थे और जेलें काट रहे थे ।"[100]

अश्क के सभी उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश का आंशिक चित्रण मिलता है । कथा की पृष्ठभूमि को स्वाभाविक बनाये रखने के उद्देश्य से समसामयिक काग्रेज़ी आन्दोलन की तस्वीर वे उभारते हैं । अश्क की दृष्टि बहुत ही समीक्षात्मक रही है । स्वतन्त्रता संग्राम के संबन्ध में और काग्रेज़ियों के कारनामों के संबन्ध में अश्क की दृष्टि विशिष्ट रही है । कई कोणों से उन्होंने काग्रेज़ियों को देखा है और उनकी स्वार्थपरकता और धन और पद को प्राप्त करने की हवस, आदर्शों को तिलांजली देने की प्रवृत्ति आदि का विरोध अश्क ने अवश्य किया है ऐसे प्रसंगों में तीखा व्यंग्य करने से वे नहीं हिचकते । कहीं कहीं उनकी लेखनी गहरी चोट पहूँचाती है जो भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को बडी असुविधा पहूँचाती है ।

§ग§ आर्थिक परिवेश

द्वितीय महायुद्धोत्तर भारतकालीन आर्थिक स्थिति का सफल

---

100. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 89

चित्रण अश्क के उपन्यास प्रस्तुत करते हैं । अश्क के उपन्यासों में मुख्यत: मध्यवर्ग, निम्न-मध्यवर्ग और निम्नवर्ग को ही कथा का केन्द्र बनाया है ।

भारत का सर्वाधिक संघर्षरत वर्ग मध्यवर्ग ही है । समाज में इस वर्ग की स्थिति अधिक विचित्र रही है । अपनी सीमित आय में वह अभिजात वर्ग से होड करना चाहता है, इसलिए यह भावना उसकी कमर को तोड देती है । जीवन संघर्ष उसके चारों ओर फैला हुआ है । अश्क के उपन्यास मूलत: इस वर्ग की सत्य कथा है । अश्कजी के प्राय: सभी उपन्यासों के नायक निम्न-मध्यवर्ग के कमज़ोर इन्सान है । "सितारों के खेल" का बंसीलाल, "गर्मराख" का जगमोहन, "बडी बडी आँखें" का नायक संगीत, "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना", "एक नन्हीं किन्दील" एवं "बाँधो न नाव इस ठाँव का" नायक चेतन और "निमिषा" का नायक गोविन्द इस वर्ग के प्रतिनिधि पात्र बनकर उनके उपन्यासों में प्रस्तुत होते हैं ।

"गर्मराख" में मध्यवर्ग की आर्थिक चेतना का विशद निरूपण है । इस उपन्यास में चित्रित मध्यवर्ग की प्रत्येक समस्या अर्थ से जुडी हुई है । इसके नायक जगमोहन निम्न मध्यवर्ग का एक युवक है । वह पैसे के अभाव और नौकरी की अव्यवस्था में अपनी शक्तियों को क्षीण महसूस करता है । उसकी आकांक्षाएँ धन के अभाव में संपूर्ण नहीं होती ।

'गर्मराख' के एक नारी पात्र द्रौपदी के घर के वर्णन द्वारा तत्कालीन निम्न-मध्यवर्ग की आर्थिक व्यवस्था का अनुमान पाठक कर सकते हैं । "गृहणी के बिस्तर की चादर पर बडे बडे गोल दाग पडे थे जो दूध पीते बच्चे का चमत्कार थे । सब बिस्तरों के तकिये तेल से सने थे, परन्तु इसे तीक्ष्ण धूप में

सूखने के बाद उन में बीमारी के कीटाणु रह जाते होंगे, इसकी संभावना नहीं थी । हाँ आँखों को अच्छे न लगें, यह और बात है । पर निम्न-मध्यवर्ग की आँखें इतनी नाज़ुक नहीं कि ये गन्दी चादरें या तकिये उनमें खटकें । उनकी "खटक" का स्तर भिन्न है ।" 101

"गिरती दीवारें" में जालंधर, लाहौर एवं शिमले के अर्थाभाव से पीड़ित निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगत आर्थिक आतंक व कठिनाईयों को लेखक ने प्रस्तुत किया है । जिसप्रकार शिक्षा के होते हुए भी मध्यवर्ग के युवकों को बेरोज़गारी का शिकार होना पड़ता है और अन्त में विवश होकर अपनी बुद्धि और क्रियाशक्ति को भी कम दामों में बेचना पड़ता है । यह सत्य "गिरती दीवारें", "एक नन्हीं किन्दील" तथा "बाँधो न नाव इस ठाँव" का नायक चेतन प्रस्तुत करता है । उपर्युक्त सभी पात्रों की मनोदशा चेतन के निम्न लिखित विचारों से अभिव्यक्त होती है । "वह जय देव, यादराम सब घोड़े ही तो हैं । कविराज की ख्याति की गाड़ी में जुते हुए हैं । ..... विभिन्न गाड़ियों में जुड़े हुए घोड़े । ..... अपने आराम और सुख की परवाह किये बिना, पसीने से तर, थकन से चूर, दिन-रात काम किये जाते हैं । इस लिए कि उनके प्रभु सफलता की गाड़ियों में बैठे अपने ध्येय तक पहुँच जायँ ।" 102

आर्थिक समस्या मध्यवर्ग के युवकों के सामने विवाह तथा रोमांस से भी अधिक महत्वपूर्ण बन गयी । अश्क जी के "गिरती दीवारें" का

---

101. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 164-165

102. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 402

चेतन, "गर्मराख" का जगमोहन और "निमिषा" का गोविन्द आदि के माध्यम से अर्थाभाव से युक्त तत्कालीन मध्यवर्गीय युवकों का चित्रण करते हैं ।

अश्क जी के "पत्थर-अलपत्थर" में भी निम्नवर्ग के जीवन का चित्रण विविधता, विस्तार एवं गहराई के साथ हुआ है । "पत्थर अलपत्थर" में अश्क जी निम्नवर्ग के एक पात्र घोडावान हसनदीन के माध्यम से तत्कालीन निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति का स्वाभाविक एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं । कश्मीर के मज़दूर वर्ग की दयनीय आर्थिक दशा का यथार्थ चित्रण इसमें हैं । उपन्यास के प्रारंभ में हसनदीन के घर का जो वर्णन मिलता है वह उसकी ही नहीं संपूर्ण निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति का ही परिचायक है । अड्डे पर विसिटरों का बस आने पर उसको घेरकर हलचल मचानेवाले कुलियों का चित्र उपन्यास में यों प्रस्तुत है "फटी कमीज़ें या मैले फिरन पहने, बरसों से नहाये, नंगे पाँव, घुटनों तक मैल से जमी टाँगे लिये, हड्डी के एक टुकड़े के लिए एक-दूसरे को नोच डालनेवाले कुत्तों की तरह आपस में गुँथे जाते थे ।"[103] "बड़ी बड़ी आँखें" का नबी, "गिरती दीवारें" का यादराम आदि के माध्यम से भी तत्कालीन निम्न-वर्गीय लोगों की दयनीय दशा का चित्रण अश्क जी प्रस्तुत करते हैं । "एक नन्हीं किन्दील" में भी निम्नवर्ग के परिवेश का स्पष्ट चित्र है ।

समसामयिक शोषक वर्ग और उनकी प्रवृत्ति का भी उल्लेख अश्कजी के उपन्यासों में पाया जाता है । "गिरती दीवारें" का कविराज रामदास, "बड़ी बड़ी आँखें" का देवाजी, "एक नन्हीं किन्दील" का संपादक वर्ग,

---

103. पत्थर अलपत्थर - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 43

"पत्थर अल-पत्थर" का खन्ना साहब, "बाँधो न नाव इस ठाँव" का लाला हाकिम चन्द, "शहर में घूमता आईना" का दो आबा का गाँधी, आदि के माध्यम से अश्क जी तत्कालीन शोषकों के शोषणवृत्तियों पर प्रकाश डालते हैं । "गिरती दीवारें" का कविराज एक ओर चेतन की बुद्धि का और दूसरी ओर यादराम और मुन्नी जैसे नौकरों की शारीरिक शक्ति का । नायक चेतन कविराज की इस प्रवृत्ति के बारे में सोचता है । "उसने सारे संसार को उसके यथार्थ रूप में देखा । उसने पाया कि उसके इर्द गिर्द जो संसार है उसमें दो वर्ग है - एक में अत्याचारी शोषक है, दूसरे में पीडित और शोषित है ।"[104] "एक नन्हीं किन्दील" का चेतन भी इस शोषण से मुक्त नहीं है । उसको कम वेतन पर समाचार पत्रों में कहानियाँ और लेख लिखना पडते हैं । अनुवाद कार्य करना पडता है । "पत्थर-अल पत्थर" का खन्ना साहब भी उस समय के शोषकों का संपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है । उसकी यह शोषण की नीति कश्मीर की घाटियों तक फैली पडी है ।

"बडी बडी आँखें" के अन्त तक आते आते देवाजी के शोषक का रूप अधिक खुला रहता है । उनके प्रैक्टकल स्कूल के "बिज़िनेज़" में अमीर लोगों से बडी बडी संख्या दाम के रूप में मिलती है इतना ही नहीं देवाजी देवनगर की ऊसर भूमि के खंड-खंड को महँगे दामों में बेचकर अपनी निजी संपत्ति बढ़ाते रहते हैं । वे पास के दरिद्र गाँवों की आर्थिक उन्नति, गरीबों के उद्योग-धन्धे, शिक्षा आदि की चिन्ता से पूर्ण रूप से मुक्त है ।

आर्थिक विषमता की स्थितियों का और उसकी परिवेश जन्य प्रतिक्रियाओं का चित्रण प्रस्तुत करने में अश्कजी काफ़ी आगे दिखाई पडते हैं । उनके सभी उपन्यासों में आर्थिक परिवेश सशक्त भूमिका अदा करता है क्योंकि इनके

104- गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 444

अधिकांश पात्र मध्यवर्ग से या निम्न-मध्यवर्ग से जुड़े हुए है । अर्थ के अभाव के कारण नारकीय जीवन बिताने के लिए अभिशप्त इन पात्रों को अश्क जी ने बड़ी नज़दीकी से देखा है । लगता है कि इनमें से कई पात्र उनके जाने-पहचाने हैं । आर्थिक दबाव के कारण पारिवारिक जीवन का आनंद त्रास में परिवर्तित हो जाता है और इस त्रास के हवनकुण्ठ में जीवन का हवन होने लगता है । आज़ादी प्राप्ति के इर्द गिर्द की स्थितियाँ आर्थिक संकट की विभीषिका को उभारनेवाली रही है । अश्क के अधिकतर उपन्यास इस काल खंड की सृष्टि हैं इसलिए भारतीय निम्न-मध्यवर्ग की आर्थिक परेशानियों का जीता जागता चित्रण प्रस्तुत करने में और उस परिवेश को जीवंतता प्रदान करने में अश्क जी सफल हुए हैं ।

(घ) रूढि, परंपरा और संस्कृति

अश्क जी के उपन्यासों में तत्कालीन समाज के सांस्कृतिक परिवेश का भी सफलतापूर्वक निरूपण यत्रतत्र हुआ है । तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित परंपरागत धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाज़ों, रूढियों आदि का विशद आकलन उनके उपन्यासों में द्रष्टव्य है ।

तत्कालीन धार्मिक रूढवादिता का यथार्थ चित्रण "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना" आदि उपन्यासों में हुआ है । "गिरती दीवारें" के चेतन की माँ, दादा, परदादी गंगादेई जैसे अनेक पात्र है जो धार्मिक रूढियों से ग्रस्त है । अश्क के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों की दयनीय स्थिति का कारण भी यही रूढिवादिता है । नारी लोग क्रूर, अत्याचारी पति को भी परमेश्वर मानकर उनकी सेवा शुश्रुषा करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं ।

"गिरती दीवारें" के चेतन की माँ, "बाँधो न नाव इस ठाँव" के लाला हाकिम चन्द की पत्नि आदि अपने पति से सदैव पिटती रहती है । मगर मुख से वे कुछ भी नहीं कहती है । मूक होकर अपने पति के निर्दय व्यवहार सह लेती है ।

अश्क के उपन्यासों में अनेक धार्मिक अन्ध विश्वासों का चित्रण भी द्रष्टव्य है । "गिरती दीवारें" और "शहर में घूमता आईना" में चित्रित समाज में किसी भी पाप क्षम्य है । लेकिन यदि किसी को मालूम हो जाए कि अमुक व्यक्ति ने गाय का माँस खाया है तो शायद उस मुहल्ले में जीना उसे मुश्किल हो जाता है । "शहर में घूमता आईना" में ऐसे अन्धविश्वासी लोगों का चित्रण है जो रोगों का कोई इलाज न करते हैं । मुहल्लेवाला टाईफाइड को मोतीझारा कहकर उसके इलाज नहीं करते हैं और मोतियों के हारों से माता की पूजा करते हैं और वही हार मरीज को पहनाते हैं । अंधविश्वास और परंपरागत मान्यता लोगों के जीवन को ग्रसती है ।

"गिरती दीवारें" में एक ऐसे समाज का चित्रण है जिसमें धर्म के नाम पर किये जानेवाले समाज-शोषण तथा ढोंग को भी समाज स्वीकृति मिलती है । 'पत्थर-अल पत्थर' में भी तत्कालीन निम्नवर्ग की रूढिवादिता का सफल चित्रण है । इसका हसनदीन को बाबम ऋषि में अटूट विश्वास है । अपनी छोटी आय का एक भाग वह बाबम ऋषि की समाधि में चढ़ता रहता है । हसनदीन और उसकी बूढी माँ के माध्यम से अश्कजी तत्कालीन धर्मावलंबी निम्नवर्ग का यथार्थ चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं ।

"गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना", "एक नन्हीं किन्दील" जैसे उपन्यासों में तत्कालीन रूढिगत नारी का चित्रण है । चेतन की

भाभी चम्पावती अपने देवर के सामने भी सदैव घूँघट डालती है । अपने पति और देवरानी चन्दा के साथ साथ बैठना, बातें करना, भोजन करना आदि उसे रुचता नहीं । "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन की सास भी रूढिगत मान्यताओं से घिरी हुई नारी है । पति उसके साथ न होने पर वह बेटी और दामाद के साथ नहीं रहती है । बेटी के साथ यों रहना वह अपमान की बात समझती है ।

"बड़ी बड़ी आँखें" और "निमिषा" में चित्रित समाज भी रूढिगत समाज है । "बड़ी बड़ी आँखें" के संगीत और वाणी के प्रेम की असफलता का कारण देवनगर की रूढिवादिता ही है । "निमिषा" में भी ऐसा एक रूढिगत समाज का चित्रण है जहाँ अन्तर्जातीय विवाह और प्रेमविवाह की स्वीकृति नहीं दी जाती । उस समाज में स्त्रीशिक्षा भी महत्वपूर्ण बात नहीं है ।

अश्क जी के उपन्यासों में विधवा की अत्यन्त दयनीय स्थिति का भी निरूपण हुआ है । "गिरती दीवारें" की कुन्ती इसका सफल उदाहरण प्रस्तुत करती है । उसकी दयनीय स्थिति का उपन्यास के ये शब्द साक्षी है " बस अब विदा । अब मैं तुम्हारी ओर देख भी न सकूँगी । पति की छत्र-छाया में रहनेवाली स्त्री हँस-बोल सकती है, चाहे तो प्रेम कर सकती है, और यदि चाहे (पति दुर्बल हो और नारी चलती हुई हो) तो सन्तान तक पैदा कर सकती है । समाज उसे कुछ न कहेगा, लेकिन हवधवा ।"[105]

अश्क के उपन्यासों में तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक रीति-रिवाज़ों का विवरण भी मिलता है जो उस समाज की संस्कृति का एक अंग जैसा

---

105. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 197

दिखाई पडता है । "शहर में घूमता आईना" के प्रथम भाग में ब्राह्मणों का क्षत्रियों के वहाँ न्योता खाने का विवरण दिया गया है । "रूल्दू इवेढी में लोटा-बाल्टी लिये खडा था, ज्यों-ज्यों ब्राह्मण आते, वह स्वयं अपने हाथ से अच्छी तरह उनके पैर धोता और उन्हें दालान में ले जाकर बैठाता ।" [106]

"गिरती दीवारें" के अन्तिम भाग में चेतन की साली नीला की शादी के विवरण द्वारा उपन्यासकार तत्कालीन सनातनी सभा में प्रचलित रीति-रस्मों पर प्रकाश डालते हैं । दुल्हों और उनके सगे संबन्धियों को प्रसन्न करने के लिए सेहरा पढना और अधेड और विधुरों को भी शादी के संदर्भ में कन्हा पुकार कर गीत छेडने का विवरण इस में है । इस उपन्यास का नायक चेतन मन ही मन सोचता है "प्रति दिन कान्त-कामिनी तरुणियाँ, अनभिल युवकों, अधेडों अथवा विधुरों के संघ बाँध दी जाती है और ये अपढ स्त्रियाँ अपने गीतों में निरन्तर "कान्ह" और "कन्हैया" बनाया करती है क्या इनके आँखें नहीं ? क्या ये चुप नहीं रह सकती ।" [107]

"निमिषा" में भी समसामयिक हिन्दू समाज में प्रचलित विवाह के रीति-रिस्मों का विशद विवरण है । "..... जब बरात चलने को हुई थी तो कस्बे के किसी सेठ की पली हुई घोडे पर आ गयी थी ..... वेदी पर यज्ञ की समिधाएँ गीली थीं । लगातार धुआँ उठता रहा था । आँखों में पडता रहा था ।" [108] "बाँधो न नाव इस ठाँव" में भी रणधीर की शादी का इसी प्रकार विशद चित्रण मिलता है ।

---

106. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 49
107. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 675
108. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 192

"बाँधो न नाव इस ठाँव" में सी.पी मेले का विशद चित्रण है । वहाँ आनेवाले लोग, उनकी वेषभूषा, सुन्दरी पहाडी स्त्रियों द्वारा गाये जानेवाले गीत । वहाँ के जुआरियों, शराबियों द्वारा गाये जानेवाले गीत अश्लील भाव भरे गीत आदि के विवरण अश्क जी इस उपन्यास में देते हैं । मेले में गाये जाने वाले गीतों द्वारा अश्कजी वहाँ के पहाडी लोगों के सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालते है । पहाडी स्त्रियों के गीत सुनते समय चेतन सोचता है । "..... विवाह-शादी पर, पानी भरते अथवा चक्की पीसते समय, खरास चलाते अथवा ढोर-डंगर हाँकते वक्त भी पहाडिनों अपनी सुरीली आवाज़ में गा उठती होंगी ।"[1]

अश्क ने अपने समस्त उपन्यासों में हिन्दू समाज की रूढियों विश्वासों और परंपराओं का विवरण प्रस्तुत किया है । बहुत सारी रूढियाँ अशिक्षित जनमानस में प्रचलित अन्धविश्वास के कारण अपना स्थान बनाई हुई है । लोग रोग और महामारी के फैलने पर इलाज न करना सारे अपराधों का क्षम्य मानते हुए भी गोमांस भक्षण को सबसे बडा अपराध मानना कटरवादिता का प्रमाण है । उसी प्रकार विवाह की विविध रस्मों का, रीति-रिवाज़ों का वर्णन प्रस्तुत कर परंपरागत मान्यताओं को उन्होंने प्रस्तुत किया है । तेज-त्योहार और मेलों की चर्चा कम हुई है । उसी प्रकार अन्य धर्म के लोगों के साथ मेल मिलाव और संबन्ध की स्थितियाँ नहीं के बराबर है । हिन्दु समाज पर ही आधारित रचना प्रक्रिया मुसलमान, सिक्ख, इसाई जैसे जन समुदायों से जोडकर कथा के विकास को प्रस्तुत करने में असफल रही है । प्रेमचन्द की परंपरा को और भावात्मक एकता की स्थितियों को बरकरार रखने में अश्क ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया है । वस्तुतः हिन्दी उपन्यासों की रचना प्रक्रिया में जन्म लेनेवाली एकांगिता का आरंभ अश्क के उपन्यासों में भी दिखाई पडता है । इस कारण राष्ट्र की मिली जुली संस्कृति का स्वरूप इन उपन्यासों में परिलक्षित नहीं होता है । वैसे

---

109. बाँधो न नाव इस ठाँव भाग ।। - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 245

अश्क की रचना का कैनवास इतना बृहद नहीं है कि उन सभी स्थितियों का समन्वय इसमें हो जाता । सीमित परिवेश, सीमित स्थितियाँ और चुने हुए पात्रों के माध्यम से सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करना एक दृष्टि से असंभव बात है । अश्क इस कारण तीखी आलोचना से बच निकलते हैं ।

अश्क के उपन्यासों के शिल्प तथा भाषाशैली

शिल्प

उपन्यास में अधिक से अधिक रोचकता, आकर्षण और प्रभ विष्णुता लाने के लिए उपन्यासकार अपने उपन्यासों में विभिन्न प्रकार के शिल्पों को अपनाता है । अश्क के उपन्यासों में भी कथाशिल्प का वैविध्य हैं । उपन्यासों में शिल्प विधान की आवश्यकता के बारे में स्वयं अश्क जी का कथन है "..... सिद्धांतों तथा विचारों को सीधे ढंग से ही रखना हो तो इसके लिए उपन्यास लिखने की ज़रूरत नहीं वैसा निबन्ध अथवा व्याख्यान द्वारा बखूबी किया जा सकता है । उपन्यास की आवश्यकता इसलिए पडती है कि वह मनोरंजक ढंग से जीवन को देखने और लेखक के विचारों को जानने में सहायता देता है । ..... कला और शिल्प के इसी उद्देश्य को सदा मैं ने अपने सामने रखा है ।"[110]

अश्कजी के प्रथम उपन्यास 'सितारों के खेल' रूमानी उपन्यास सा लगता है । लेकिन इसे घटना प्रधान उपन्यास भी हम कह सकते हैं । यह उपन्यास अश्क जी की कल्पना ही की उपज है क्योंकि इसमें अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जो अयथार्थ

---

110. उपन्यासकार अश्क - सं. इन्द्रनाथ मदान - पृ. 83

दिखाई पडती है । इसमें पत्र शैली का भी सफल प्रयोग हुआ है ।

"गिरती दीवारें" के वस्तुपक्ष और शिल्पपक्ष दोनों महत्वपूर्ण है । इस उपन्यास, नायक चेतन की युवावस्था से संबन्धित है लेकिन पूर्वदीप्ति पद्धति एवं चेतन प्रवाह पद्धति द्वारा चेतन की बाल्यावस्था से संबन्धित अनेक घटनाओं एवं पात्रों का निरूपण इसमें हुआ है । उपन्यास की घटनाओं में यथार्थता एवं सजीवता है अन्यत्र विवरणात्मक शैली को भी उपन्यासकार ने इसमें अपनाया है । लेकिन उपन्यास की एक कमी यह है कि वह कहीं कहीं सुसंघटित नहीं लगता है और घटनाएँ बिखरी हुए जैसी दिखाई पडती हैं । कहीं कहीं ऐसे अनेक ब्यौरों का विशद विवरण है जिससे पाठक ऊब जाता है । उदाहरण के लिए शिमला के थियेटर में चेतन अभिनेता बनने के लिए जाता है उस संदर्भ में उपन्यासकार सलीम-अनारकली नाटक को भी उपन्यास में प्रस्तुत करता है ऐसे स्थानों पर उपन्यास में शिथिलता आ जाती है और पाठक का मन ऊबाहट से भरपूर जाता है ।

"गर्मराख" यथार्थ शैली में लिखा हुआ समस्या प्रधान उपन्यास है । इसमें भी संस्मरणात्मक एवं विवरणात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है । उपन्यास को अधिक से अधिक रोचक बनाने के लिए अश्क ने व्यंग्य और आलंकारिकता की सहायता ली है । उदाहरण के लिए पण्डित वेदालंकार का व्यंग्य चित्र गर्मराख में इस प्रकार खींचा है "पं. धर्मदेव वेदालंकार रूप रंग और भूषा से न पंडित लगते थे, न धर्मदेव, न वेदालंकार..... वे हाल ही में स्वदेश लौटे कोई इंग्लिस्तान पलट युवा अफसर दिखाई देते थे । पंडित अथवा वेदालंकार कदापि नहीं । वेदालंकार जी के जमाने की यदि कोई बात उसमें शेष रह गयी तो वह था उनका साईकिल पर पिछले पहिए की खूँटी से चढना ।"[111] इस उपन्यास में अनेक शेर और गीतों

---

111. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 47

का प्रयोग भी कई स्थानों पर मिलता है । "बड़ी बड़ी आँखें" अश्क जी का लघु उपन्यास है । इसमें एकसाथ कई प्रकार के शिल्पात्मक प्रयोग हुए है । यह एक संस्मरणात्मक गतिमय उपन्यास है । इस उपन्यास की घटनाओं के निरूपण में श्रृंखलाबद्धता और गति है । इसमें पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग है । अनेक स्थानों पर प्रकृति चित्रण भी है और ऐसे अवसर पर अश्क जी चित्रात्मक भाषा को अपनाते हैं । इसका एक उदाहरण देखिए "आसमान एकदम साफ हो गया था और तारे टिमटिमा रहे थे, लेकिन धरती और आकाश के बीच चारों ओर धुन्ध छायी हुई थी पूरब की ओर चाँदनी की तीन चौथाई टिकिया दो प्रभामण्डलों के मध्य चमक रही थी ।"[112] अश्कजी की चित्रात्मक भाषा देखकर ऐसा लगता है कि वे जो चित्र प्रस्तुत करते हैं उसके यथार्थ बिम्ब पाठकों के समक्ष उभर आता है ।

अश्क जी स्वयं 'पत्थर-अल पत्थर' को अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं क्योंकि वस्तुगत दृष्टि से ही नहीं शिल्प की दृष्टि से भी वह सर्वाधिक संगठित, सुनियोजित एवं संश्लिष्ट दिखाई पड़ता है । इस उपन्यास में यात्रावर्णन की शैली भी आ गयी है । इसमें प्रयुक्त भाषागत प्रयोग में स्थानीय रंग उभरते हैं । इस उपन्यास में अश्क जी ने प्रतीक पद्धति को भी अपनाया है । उपन्यास में चित्रित हसनदीन कश्मीर की घाटी के निरीह, गरीब मजदूरों का प्रतीक है तो खन्ना साहब वहाँ आनेवाले पत्थर दिलवाले कंजूस विजिटरों का प्रतीक है । इस उपन्यास की अन्य एक विशेषता है व्यंग्य एवं हास्य का प्रयोग ।

"शहर में घूमता आईना" के शिल्प विधान को लेकर आलोचकों में मतभेद हैं । कुछ आलोचक इसे उपन्यास कहते तो अन्य कुछ आलोचक इसे कहानियों का संकलन मानते हैं । इस उपन्यास का शिल्प एक नया प्रयोग है और अपनी निजी

---

112. बड़ी बड़ी आँखें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 83

विशेषताएँ रखता है । इस शिल्प द्वारा उपन्यासकार चौंबीस घंटे की अवधि के अन्तर अतीत और वर्तमान के अनेक घटनाएँ, स्थान, पात्र और स्थितियाँ को एक साथ जुडाने का प्रयास करते हैं और इस प्रयास में वे सफल हुए भी है । इसमें भी रिपोर्ताज विवरणात्मक जैसी अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है । "शहर में घूमता आईना" में भी व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग अधिक प्रभावशाली बन पडा है । विधवा सहायक सभा के संस्थापक पर किया गया तीखा व्यंग्य इसका एक सफल उदाहरण है । "..... दिमाग तो वे लोग महात्मा गाँधी का कहाँ से लाते उसके पास न महात्मा गाँधी की करुणा थी, न सहानुभूति, न जन-मानस की परख, न देश और समाज की समझ उनका सारा ज़ोर सिर मुँडाने, अध नंगे पहले, मौनव्रत रखने, प्राकृतिक चिकित्सा करने, उबाले सिंघाडे या आलू या दही खाने, तकली चलाने अथवा अगले टूटे दाँत दिखाने आदि में लगता था ।"[113] उपन्यासकार चेतन के मित्र अनन्त के माध्यम से भी उपन्यास के अन्य पात्रों और स्थितियों पर करार व्यंग्य करते हैं ।

"एक नन्हीं किन्दील" भी अनेक शिल्पगत विशिष्टताएँ रखनेवाला एक उपन्यास है । इस उपन्यास में उन्होंने ऐसे अनेक शिल्पों को अपनाया है जिनका प्रयोग पहले उपन्यासों में नहीं हुआ है । डायरी शैली का प्रथम प्रयोग इसमें दिखाई पडता है । पात्रों की मानसिकता, स्थितियाँ और घटनाओं के चित्रण करने में और कथानक के विकास में यह शैली उपयोगी दिखाई पडती है । उदाहरण के लिए लाहौर की पत्रकारिता से संबंधित जीवनलाल कपूर, चौधरी ईश्वरदास, मस्त, तीर शाही ऐसे अनेक पात्रों के बारे में चेतन अपने डायरी में लिखता है । "चौधरी ईश्वरदास (ईश्वरदासा), आर्यसमाज के मशहूर रोजाना

---

113. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 262

अखबार 'समाज' के एडीटर है, लम्बे ऊँचे, छै फुट तीन इंच के मज़बूत जवान । दफ्तर में दाखिल होते ही सामने मेज़ पर अपनी अलसाई आँखों को लिए हुए सीधे स्तून से जमे दिखाई देते है । अगर वे कुछ और लंबे होते या कमरे की छत कुछ नीची होती तो लगता कि वही छत को थामे हुए है ।"[114] पूर्वदीप्ति के माध्यम से भी अश्कजी चेतन के वर्तमान और अतीत से संबान्धत पात्रों और घटनाओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं । इस उपन्यास में चित्रित कश्मीरी लाल दाग, भूतना जैसे पात्र इसका उदाहरण है ।

"बाँधो न नाव इस ठाँव' दो खण्डों में प्रकाशित एक बृहदाकार उपन्यास है । इसमें भी कई कला-शिल्पों का प्रयोग हुआ है जैसे पत्र शिल्प, स्वप्न शिल्प, कथा के भीतर कथा, लोक गीतों का प्रयोग आदि । उपन्यास के नायक चेतन अपने मित्र अनन्त और पत्नी चन्दा को जो पत्र लिखता है उनमें चेतन की बदलती मानसिक स्थिति और लाहौर में उसके जीवन संघर्ष आदि की ओर संकेत है । "बाँधो न नाव इस ठाँव में अश्क जी एक कथा के अन्दर दूसरी कथा को प्रस्तुत करते हैं । लेकिन इनमें से पहली कथा को वे अपूर्ण नहीं छोडते हैं । उदाहरण के लिए चेतन जब शिमला के जेल में बंद हो जाता है तब उसे वह बन्दरवाली कथा याद आती है जिसे उसने बचपन में पढा था । स्वप्न शिल्प के द्वारा भी अश्कजी पात्रों की मनस्थिति पर प्रकाश डालते हैं कि वह बहुत बीमार है,..... मरने को है । उसकी पत्नी उसे देखकर रोती रहती है और वह पत्नी के आँसू पोंछने के लिए हाथ उठाना चाहता है । लेकिन वह कर नहीं सकता । "चेतन को इन उदास, करुण, अध-जगी-अध-सोयी अवस्था के सपनोंमें बडा रस मिलता है। वह फिर बीमार बन जाता है - मरणासन्न । पर उसकी पत्नी अथवा चन्द्रा वहीं नहीं आती ।

---

114. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 169

एक अस्पष्ट छाया - एकदम सफेद साडी में लिपटी, अलंकारविहीन, पर हँसती-मुस्कुराती - उसके सामने आती है । धीरे धीरे वह छाया स्पष्ट रूप ले लेती है । चेतन पहचान जाता है - कुन्ती । लेकिन वह कुछ नहीं कहती - केवल उसके सामने आकर खडी हो जाती है ।"[115] इस उपन्यास का एक पूरा अध्याय सी. पी मेले में गाये जानेवाले लोक गीतों से भरा है । उन गीतों में वहाँ की सभ्यता, संस्कृति और जन जीवन मूर्त हो उठा है । एक नन्हीं किन्दील की तरह इस उपन्यास में भी कहीं कहीं घटनाओं का अनावश्यक विस्तार सा दीख पड़ता है । उदाहरण के लिए उपन्यास के प्रारंभ में चित्रित नीलामकारों के कारनामों के वर्णन में अनावश्यक विस्तार आ गया है । ऐसे ब्यौरों से पाठक ऊब जाता है । इसमें गीतों की बहुलता है जिसके प्रति साधारण पाठक को दिलचस्पी नहीं हो सकती ।

अश्क का अन्तिम उपन्यास निमिषा आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ उपन्यास है । शिल्प की दृष्टि से इसमें कोई भी नवीनता नहीं । इस उपन्यास में भी पत्रशिल्प का खूब प्रयोग है । निमिषा और गोविन्द एक दूसरे को जो पत्र भेजते है उन पत्रों के माध्यम से उपन्यासकार पात्र और परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं ।

इस प्रकार देखें तो अश्कजी की शैली पूर्णतया यथार्थवादी सजीव एवं प्रभावशाली है । उनके उपन्यासों की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता हास्य-व्यंग्य है । वे अपने व्यंग्य चित्रों द्वारा पाठकों का ध्यान समाज की विरूपताओं की ओर आकर्षित कराते हैं । अश्क के उपन्यासों में ऐसे अनावश्यक और निर्जीव ब्यौरे आते हैं जिनको बिलकुल काट निकालने पर भी उपन्यास में कोई कमी नहीं दिखाई

---

115. बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग ।। - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 288

पड़ती । लेकिन इसके बारे में अश्क जी का कथन है । "उपन्यास को मैं उपन्यास ही देखना चाहता हूँ कहानी नहीं । कहानी में जहाँ मैं कथानक को महत्व देता हूँ वहाँ उपन्यास में मुझे कथानक के बदले पात्रों का चारित्र-चित्रण, उनके मन में क्षण-क्षण उठते बदलते विचार, दैनंदिन घटनाओं का घात-प्रतिघात और ज़िन्दगी के असंख्य छोटे छोटे ब्यौरों का चित्रण भाता है ।"[116] अश्क के उपन्यासों का केनवास एक सीमा तक विराट है । उनका उद्देश्य खण्डित जीवन का चित्रण नहीं है बल्कि जीवन की संपूर्णता को प्रस्तुत करना है । परन्तु ऐसा करते समय अनावश्यक विवरणों का प्रवेश हो जाता है जो पाठक को ऊबाहट से भरता है ।

अश्क के उपन्यास रेखाचित्रों और संस्मरणों का समुच्चय है । रेखाचित्रों के माध्यम से पात्रों के बाहरे आपे को प्रस्तुत करने में और उनका चरित्रोद्घाटन करने में वे सफल हुए हैं । अश्कजी अपने उपन्यासों में इसकी कथानक से अधिक वातावरण का चित्रण और पात्रों के मानसिक विकास के चित्रण को अधिक महत्व देते हैं ।

अश्क के "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना", "एक नन्हीं किन्दील", "बाँधो न नाव इस ठाँव" इन चारों उपन्यास एक ही कथा श्रृंखला की विभिन्न कड़ियाँ है । इसलिए इन उपन्यासों में घटनाओं का आवर्तन हुआ है । उनके चारों उपन्यासों में दिखाई पड़ने वाली ऐसी घटनाओं के आवर्तन से पाठक ऊब जाता है । उदाहरण के लिए चेतन बीमार बनकर नीला के घर में लेटते समय नीला से उसे जो प्यार और सेवा शुश्रुषा मिलती है इसका विवरण "गिरती दीवारें" में है जिसे "शहर में घूमता आईना" में भी लेखक ने दुहराया है ।

---

116. ज़्यादा अपनी कम पराई - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ.155

चेतन के बचपन से संबन्धित अन्य कई घटनाओं का आवर्तन भी उनके अन्य उपन्यासों में हुआ है ।

इस प्रकार अश्क ने विविध शैलीगत प्रयोगों के माध्यम से अपनी रचना प्रक्रिया को प्रभावात्मक बनाने का प्रयास किया है परन्तु इस प्रयास में उनको पूर्ण सफलता मिली है ऐसा नहीं कहा जा सकता । पुनरावृत्ति दोष से कथा बच नहीं पायी हैं क्योंकि एक ही कथाक्रम को चारों उपन्यासों तक खींच लेना स्वाभाविक रूप से प्रभाव की सृष्टि में बाधक है । शैली के विविध प्रयोगों को स्वीकार कर उपन्यासों को जीवन्त बनाने की कोशिश के बावजूद भी विवरणात्मकता और फैलावट के कारण जागृत नहीं हो पाते । इस कारण लेखकीय दृष्टि से तादात्म्य स्थापित करने में और आस्वादन की स्थितियों को सक्षम बनाने में शैली असफलता का अनुभव करती है । पत्रकारिता, पूर्वदीप्ति, डायरी और चेतना धारा का प्रयोग जिस ढंग से हुआ है वह आंशिक प्रभाव की सृष्टि करता है और सम्यक और संपूर्ण प्रभाव की सृष्टि में यह शैलियाँ कहीं कहीं एक दूसरे से मेल नहीं खाती । कभी कभी शैलीगत प्रयोगात्मकता कटी कटी सी लगती है । इन कमियों के बावजूद कथ्य के विशेष संदर्भों को रखते हुए और इनके रचनाकार की विशेषताओं को आंकते हुए यह कहा जा सकता है कि अपनी पीढ़ी की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए अश्क की शैलीगत प्रयोगात्मकता एक सीमा तक सफल हुई है ।

अश्क की भाषा शैली

अश्क जी की भाषा संकेतात्मकता, मनोरंजकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखती है । उनकी भाषा में जीवंतता ताज़गी और प्रयोग की नवीनता रहती है । उनकी भाषा कथा, परिवेश एवं पात्रों के अनुकूल है ।

अश्क के उपन्यासों की भाषा जन भाषा है । वे अपनी भाषा के द्वारा वर्ग विशेष के वास्तविक चित्रण करने में सफल हुए हैं । उदाहरण के लिए "बड़ी बड़ी आँखें" का देवाजी, "निमिषा" का गोविन्द जैसे लोगों की भाषा शहरी लोगों की भाषा के अनुरूप है तो "पत्थर अल पत्थर" का हसनदीन, "निमिषा" की माला, "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन की सास जैसे पात्रों की भाषा में तो आंचलिकता है । अश्क जी की भाषा पूर्ण रूप से भावानुकूल है । उनके "बड़ी बड़ी आँखें", "निमिषा" जैसे उपन्यासों की भाषा अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक पुष्ट एवं परिमार्जित है ।

अनेक भाषाओं की जानकारी होने के कारण इनके उपन्यासों की भाषा बहुरंगी है । उनमें अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्दों का बाहुल्य है । हिन्दी में आने के पूर्व अश्क जी उर्दू के प्रतिष्ठित लेखक थे । इसलिए उनके उपन्यासों में हिन्दी-उर्दू मिश्रित शब्दावलियों की कमी भी नहीं है । लेकिन इस प्रयोग से भाषा की स्वाभाविकता या प्रवाहमयता में कोई रुकावट नहीं आयी है । वाक्यों में विशदता आ जाने के कारण सरलता स्वाभाविक रूप से आ गई है । दार्शनिक भावों से युक्त भाषा का प्रयोग भी हुआ है । "शहर में घूमता आईना", "बाँधो न नाव इस ठाँव" के प्रथम भाग आदि में ऐसी ही भाषा का प्रयोग हैं । उनके उपन्यासों में फारसी-हिन्दी, उर्दू-फारसी, हिन्दी-उर्दू, अंग्रेज़ी-उर्दू, हिन्दी-अंग्रेज़ी जैसे संकर शब्दों का भी बाहुल्य है । उन्होंने शब्दों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके अपने उपन्यासों में इनका प्रयोग किया है, जो अनुचित नहीं लगता है ।

अश्क ने अपने उपन्यासों में अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी आदि भाषाओं के वाक्यों का भी प्रचुर प्रयोग किया है ।

अंग्रेज़ी वाक्य

"लव अट फस्ट साईट"[117] {गिरती दीवारें, पृ. 231}

"दे आर आल एक्सप्लाइटर्स"[118] {गर्मराख, पृ. 222}

"आई डोंट थिंक इट पॉसिबल टु मेक अ डाई फॉर नस्तलीक स्क्रिप्ट"[119] {एक नन्हीं किन्दील, पृ. 449}

"आई एम प्राउड ऑफ यू..... आई आम श्योर एवरी थिंग विल बी आँल राइट।"[120] {निमिषा, पृ. 162}

पंजाबी वाक्य

"खाँनाँ बैरवंत पँर खाँयाँ पीछें लगी हो रहँती है।"[121] {गर्मराख, पृ. 78}

"ओ भूतनी देया पुत्तरा, कल जद मैं चक्रवर्ती नियाण नूँ किह सी ताँ तू सुत्ता पिया सें।"[122] {एक नन्हीं किन्दील, पृ. 256}

"नै अग्ग बाल के चाह बना देन्नी आँ इक-इक गिलास पी लैगाँ"[123] {बाँधो न नाव इस ठाँव भाग। - पृ. 131}

अश्क ने हिन्दी अंग्रेज़ी और पंजाबी मुहावरों और कहावतों का भी प्रचुर प्रयोग अपने उपन्यासों में किया है।

हिन्दी मुहावरा

सिर से पैर तक कान बने थे[124] {सितारों के खेल - पृ. 141}

उसके मुख पर स्याही पुत गई[125] {गर्मराख - पृ. 424}

"अपने पांव धोती कोई बांदी नहीं कहाती ।"[126] (एक नन्हीं किन्दील, पृ. 779)

"मन में लड्डू फूट रहे थे"[127] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग दो, पृ. 171)

अंग्रेज़ी मुहावरा

"अ मैन कैन डू ह्वाट अ मैन हैज़ डन"[128] (एक नन्हीं किन्दील, पृ. 779)

"गोड हेल्प्स दोज़ हू हेल्प देमसेल्प्स"[129] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग दो, पृ. 103)

"आल दैट ग्लिटर्सइज़ नोट गोल्ड"[130] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग II, पृ. 459)

पंजाबी कहावत

"माँ-पेउ दियाँ गालां, दुद्ध-घेउ दियाँ नालां"[131] (गिरती दीवारें, पृ. 100)

"लोक्कां नूं लोक्कां दी, गिगड़ी नू जोचकाँ दी"[132] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग-I, पृ. 488)

"जिस कारण पौधा साडा, ओसे कारन रेया उधाडा"[133] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग II, पृ. 336)

हिन्दी कहावत

"जिस गाँव जाना नहीं, उसकी राह काहे पूछना ।"[134] (गर्मराख, पृ. 134)

"बिन धरती घर भूत का डेरा"[135] (शहर में घूमता आईना, पृ. 54)

"भोजन में तेसे पडे, धन की कैसी आस"[136] (एक नन्हीं किन्दील, पृ. 309)

"चोर चोर मौसरे भाई"[137] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग-1, पृ. 349)

"धरती में समा गये थे या आसमान में उड गये थे"[138] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग 11, पृ. 249)

अश्क जी ने हिन्दी पंजाबी लोकोक्तियों का भी अपने उपन्यासों में संदर्भानुकूल प्रयोग किया है ।

हिन्दी लोकोक्ति

"पान क्यों सड़ा ?
भुर्ता क्यों पड़ा ?
थोडा क्यों अडा ?"[139] (पत्थर अल पत्थर, पृ. 110)

पंजाबी लोकोक्ति

"बहु कम्म करन नूँ कही
बहू सुज्ज भडोला जही
बहू खान नूँ कही
दो सज्जरियाँ दो बही"[140] (गिरती दीवारें, पृ. 236)

"दीदार बाजी ते रब्ब राजी"[141] (गर्मराख, पृ. 89)

लोकगीत, कलागीत, संस्कृत के श्लोक, उर्दू शेर आदि के प्रयोग से भी अश्क जी के उपन्यासों की भाषा अधिक समृद्ध हुई है । अश्कजी के "बाँधो न नाव इस ठाँव" का एक पूरा अध्याय ही उन्होंने पहाडी गीतों से भरा दिया है ।

पंजाबी गीत

"कोठे ते टुकर पया,
पहले लांके नो हों माहिया, हुन काहनू तू मुकर गया ।"[142]
(सितारों के खेल - पृ. 60)

"आप गाँधी कैद हो गया
सानू दे गया खदर दा बाणा"[143] (शहर में घूमता आईना, पृ. 128)

"दन्द मोतियाँ दे दाने
न हस्स जान, डिग जाग ने
ओ तेरे दन्द मोतियाँ दे....."[144] (बड़ी बड़ी आँखें, पृ. 44)

पंजाबी लोक-गीत

"पैर धो के झाँझरां पाउन्दी, मेलदी आउन्दी मैं शौंकन
ओये-होये, मैं शौकन मेले दी ।"[145]
(बाँधो न नाव इस ठाँव भाग ।।, पृ. 248)

पहाड़ी गीत

"बाज़ार विकेन्दी तर वे
ओ ते बुड्ढेया, तूँ छेत्ती मर वे
मैं छुटकार पावाँ
ओ तीं भावाँ
प्रीत चोरी-छिप्पे फेर मैं नभावाँ ।"[146]
(बाँधो न नाव इस ठाँव - भाग ।।, पृ. 161.)

"बीबा, न जा।
वे मैं हरदम नौकर तेरी आँ
बीबा न जा
ये बीबा न जा ।"[147] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग-II, पृ. 240)

हिन्दी कविता

"ममता से मन हो उठता है,
लौट पड़ूँ चरणों में विह्वल
पर मेरी लज्जा की बेड़ी,
कर देती है गति को निश्चल "[148] (गर्मराख, पृ. 422)

"बीज बो दिये बेचैनी के
तू ने मन-प्रांगण में बाले
खेल तुम्हारे लिए रहा यह
यहाँ पड़े जीवन के लाले "[149] (एक नन्हीं किन्दील, पृ. 626)

"बस
दर्शन दर्शन मेरा
माली लाख करें रखवाली
भँवरा गूँजे डाली डाली
फूल - फूल पर डेरा
बस
दर्शन दर्शन मेरा"[150] (बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग-I, पृ. 427)

शेर

"मत सहल हमें समझो, फिरता है फलक बरसों
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलते हैं" [151]

(शहर में घूमता आईना, पृ. 245)

"कर्ज की जीते थे हम, लेकिन समझते थे कि हो
रंग लायगी हमारी फाकामस्ती एक दिन" [152]

(बाँधो न नाव इस ठाँव भाग-1, पृ. 538)

"वक्त-ए-आखिर है, तरुल्ली हो चुकी
अब करेगी मौत चारासाजियाँ" [153] (निमिषा, पृ. 19)

संस्कृत के श्लोक

"वेदाविनाशितं नित्यं य एनमज मव्ययम्
कथं स पुरुषः पार्थ क घातयति हन्ति कम्" [154]

(शहर में घूमता आईना, पृ. 178)

"यां चिन्तयाभि सततंमयि सा विरक्ता
साप्यान्य मिच्छति जनंस जनोऽन्यरक्तः" [155] (गर्भराख - पृ. 413)

"आहार, निद्रा, भय, मैथुनं च सामान्यमेतद्
पशुभिर्नराणाम्
धर्मोहि तेषामधि को विशेषः धर्मेणहीना पशुभः समाना" [156]

(बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग-1, पृ. 647)

अश्क के उपन्यासों में अनेक स्थानों पर चित्रात्मक शैली का प्रयोग मिलता है । इस प्रयोग से परिवेश और पात्रों के स्वरूप को स्पष्टता मिल गयी है । चित्रात्मकता से भाषा सौन्दर्य पूर्ण भी बन जाती है । उदाहरण देखिए,

"दूर, बहुत दूर खजूर के एकाकी पेड के पीछे, जो उस निर्जन के सूनेपन को चुनौती देता हुआ-सा खडा था, सूरज डूब रहा था । बडा बडा और पीला-पीला-पेड का ऊपर का सिरा ऐसे लग रहा था जैसे उस पीली कुंदनी थाली पर अंकित हो।"[157]

{बडी बडी आँखें - पृ. 69}

"उसकी रेशमी सलवार और जेम्पर, दोनों छातियों को नुमाईयाँ करती हुई जम्पर की चौडी फ्रिल, उसके चेहरे के पाउडर, उसके गालों पर झलकती काली झाँइयाँ, उसके होटों पर फैली हुई खून के रंग की सुर्खी - लगता था, जैसे उसने अभी अभी किसी का खून पिया हो ।"[158] {निमिषा - पृ. 286}

अश्क के उपन्यासों में बिंबों की कमी भी नहीं है उन्होंने परंपरागत और मौलिक दोनों प्रकार के बिम्बों का प्रयोग किया है ।

"प्राची की पलकों में स्वर्ण विहान् ने अंगडाई ली"[159]

{सितारों के खेल, पृ. 49}

"चौथ का चाँद किसी कुबडे की तरह लेटा हुआ था"[160]

{गिरती दीवारें, पृ. 210}

"पंख फैलाये उडने को प्रस्तुत सफेद कबूतरी सी"[161] {गर्मराख, पृ. 143}

"उस रात चन्दा उसे उत्तरी ध्रुव के उस बर्फानी घर जैसी लगी"[162]

{पृ. 540}

"पहाड़ियाँ गहरी हरी भूंगिया हो गई थी"[163]

(बाँधो न नाव इस ठाँव, भाग ।।, पृ. 479)

अश्क जी के उपन्यासों में प्रतीकों का प्रयोग भी यत्रतत्र मिलता है । वे प्रतीक के लिए प्रतीक का प्रयोग नहीं करते हैं या उनके प्रतीक आरोपित नहीं लगते हैं । इनका प्रयोग हमें स्वाभाविक ही लगता है । उदाहरण के लिए "गिरती दीवारें" के निम्नलिखित पंक्तियों को ले सकते हैं । "क्षण भर के लिए रुक कर चेतन उन मोटे-मोटे बन्दरों को देखने लगा । वे कभी एक और कभी दोनों हाथों से दाने चुग रहे थे । उनके कंठ की थैलियाँ फूल रही थीं और कुछ दूर पर उनके दुर्बल भाई उन दोनों को अरमान भरी दृष्टि से तक रहे थे । चेतन चुपचाप खड़ा बन्दरों को देखता रहा और देखते देखते उसके सामने वे बन्दर मोटे-मोटे सेठ जमींदार, नवाब, राजे, अफ्सर और नेता बन गये और चनों के दाने चाँदी-सोने के सिक्के । और चेतन ने अपने आप को उसमें पाया जो कविराज के पीछे-पीछे विवशता से दुम हिलाते हुए चले जा रहे थे"[164] (गिरती दीवारें, पृ. 409) इन वाक्यों में सभी प्रतीक स्पष्ट है ।

संक्षेप में अश्क के उपन्यासों की भाषा शैली जीवन्तता से युक्त है । कथ्यात्मकता में आयी हुई कमी और कथा की अस्वाभाविकता आदि को ढकने में उनकी भाषा शैली कामयाब हुई है । भाषा में प्रवाहात्मकता है । उर्दू के बहुप्रचलित शब्दों के साथ हिन्दी के शब्दों को भी जोड़कर जन भाषा का जो स्वरूप अश्क ने उभारा है वह उनकी लोकप्रियता का एक और कारण है । शुद्ध साहित्यिक संस्कृत शब्दयोजना का सहारा कहीं भी उन्होंने नहीं लिया है । इसी प्रकार भाषा शैली में मुहावरों का जो स्थान है उसको भी भली भाँति आँकने

का प्रयास उन्होंने किया है । चित्रात्मकता और बिंबात्मकता का सहारा लेकर स्थितियों को और दृश्यों को समझाने में अश्कजी किसी के पीछे नहीं है । यद्यपि विवरणात्मक आलेखन शैली को उन्होंने अपनाया है फिर भी इसी के अन्तर ज़रूरत के अनुसार पूर्वदीप्ति शैली, पत्र शैली, डायरी शैली आदि को भी उचित स्थान मिला है ।

पुरानी पीढ़ी के लेखक होने के नाते शैलीगत प्रयोगात्मकता की नव्यता अश्क में नहीं दिखाई पड़ती वैसे उनकी विषय भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय इर्द-गिर्द घूमते हैं कथा की विश्वसनीयता और नगर परिवेश के नये स्वरूप दोनों की कमी अश्क के उपन्यासों में पायी जाती है । अश्क यह महसूस करते हैं कि संप्रेषणीयता लेखन की सबसे प्रमुख विशेषता है और इसकारण उपन्यासों की भाषा और शैली को स्वाभाविकता से युक्त बनाने का प्रयास अश्क ने आद्यन्त किया है ।

अध्याय - 3

अश्क के उपन्यास - सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में :-

समाज अपने हित के लिए सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है । ये मूल्य समाज की प्रकृति के अनुसार बनाये जाते है और इसका लक्ष्य समाज के सर्वाधिक मंगल है । अश्क के अधिकांश उपन्यासों की घटनाकाल स्वतन्त्रता के पूर्व का समय है । स्वतन्त्रता के बाद के भी उनके कुछ उपन्यास हैं इसलिए एक लंबी अवधि के मूल्यों का स्वरूप और विश्लेषण इनके उपन्यासों में दिखाई पडता है । अश्क के उपन्यासों में एक ओर ये मूल्य अपनी परंपरागत प्रकृति को लेकर प्रस्तुत हुए है तो दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के अनुसार नये रूप धारण करने लगते हैं । उनके उपन्यासों में यत्रतत्र रूढिवाद का विरोध मिलता है । साथ साथ सामाजिक जीवन के उन्नयन के लिए आवश्यक नये मूल्यों की स्थापना की ओर संकेत भी मिलता है ।

अश्क के उपन्यासों में नैतिकता

प्रत्येक समाज में नैतिक मूल्यों की विशिष्ट परंपरा रहती है । नैतिकता के अभाव में समाज में पापाचार बढ जाता है और अराजकता की स्थिति उत्पन्न होती है । समाज की उच्छृंखलता पर नैतिक मूल्यों का नियंत्रण रहता है । लेकिन सामाजिक परिवर्तन के साथ ही मानवीय विचारधारा में परिवर्तन आता है और नैतिक धारणाएँ बदलती रहती है । समाज से स्वीकृत मूल्य कालान्तर में अस्वीकृत भी हो सकते हैं । परंपरागत नैतिक मूल्यों को बदलने में परिस्थितियों ने अपनी गंभीर भूमिका अदा की है । जीवन का

यथातथ्य चित्रण करनेवाला साहित्यकार अपनी रचनाओं में बदलते नैतिक मूल्य के स्वरूप का अंकन करता है और नये जीवन बोध की व्याख्या भी करता है । अश्क जी के उपन्यासों में भी नैतिकता की भावना एक सीमा तक परिवर्तित होती दिखाई पडती है ।

अश्कजी के "गिरती दीवारें" का चेतन, "गर्मराख" और "एक नन्ही किन्दील" का "चातक" आदि स्त्री-पुरुष संबन्धों की विकृतियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । चेतन सबसे पहले कुन्ती के प्रति आकर्षित होता है लेकिन बाद में शहर में आकर वह प्रकाशो पर हाथ रखता है । दूसरी ओर केसर को वासना का शिकार बनाना चाहता है । वह जानता है "इधर उधर खेतों में मुँह मारना, उगती बढती पौध को दूषित करना, पकडे जाने पर दंड पाना, अपमानित होना" सभ्य, सुरक्षित एवं सुसंस्कृत मानव के लिए उचित नहीं है । वह जानता है कि उसका विवाह कुछ महीनों में ही होनेवाला है, इसलिए दूसरी स्त्री के बारे में सोचना भी पाप है लेकिन शादी के बाद भी चेतन अपनी साली नीला को हस्तगत करना चाहता है, और कविराज के नौकर यादराम की पत्नी मुन्नी से आँखें लडाने का प्रयास करता है । अपने इस नैतिक पतन के बारे में वह जानता भी है "मैं डर रहा था कि मैं गिर रहा हूँ । अपने चरित्र से गिर रहा हूँ और मैं ने सोचा कि दूसरों की क्यारियों में मुँह मारने की आज्ञा देने की अपेक्षा मन के इस उद्दण्ड पशु को अपनी निज क्यारी बना दूँ । पर कदाचित मन के इस पशु को दूसरे की खेतियों में मुँह मारना अधिक रुचता है ।"[165] बीच बीच चेतन नैतिकता की दुहाई अवश्य देता है किन्तु इस पात्र के माध्यम से अश्क ने विकृत नैतिक मूल्यों से युक्त मानसिकता का चित्रण प्रस्तुत किया है ।

---

165. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 286

इसी प्रकार "गर्भराख" का चातक भी नैतिक विच्छृंखलता का परिचय देता है । मन पसन्द लडकी से शादी नहीं कर पाने के कारण एक विचित्र मानसिकता का शिकार वह बनता है । किसी भी लडकी की फोटो तक देखने पर वह उससे प्रेम करने लगता है । लडकियों के साथ खूब मिलने-जुलने की एक मात्र इच्छा से वह संस्कृति समाज की स्थापना करता है । उधर "एक नन्ही किन्दील" का चातक भी निम्मो के साथ बहिन के बहाने से स्वच्छन्द व्यवहार करता है । उसके संबन्ध में चेतन का विचार यहाँ प्रासंगिक है । "शायद चातक जी उसके वैसे ही सहोदर होंगे, जैसे हमारे निम्न-मध्यवर्ग में धर्मभाई । सीधे प्रेमी को यह वर्ग बरदाश्त नहीं करता । भाई के पर्दे में चाहे प्रेमिका का हाथ अपने हाथ में लिये घण्टों बैठे रहो ।"[166] यहाँ पर नैतिक दृष्टि में आये हुए परिवर्तन का स्वरूप झलकता है । धर्मभाई के लिबास में छिपे प्रेमी के स्वरूप की ओर सूचना देने में अश्क समर्थ हुए है ।

इसी प्रकार "निमिषा" का गोविन्द और "गर्मराख" का जगमोहन भी कोई नैतिक मूल्य आर्जित नहीं कर पाये हैं । गोविन्द निमिषा को चाहता है किन्तु उसे अपनाने के बदले परिवार एवं समाज के भय से, अपनी झूठी मान मर्यादा एवं कायरता के कारण वह निमिषा से शादी नहीं कर पाता है । इसी प्रकार जगमोहन भी सत्या से शारीरिक संबन्ध तक बनाया रखता है लेकिन उससे शादी करने के लिए तैयार नहीं है । सत्या का विवाह एक दूसरे आदमी से होता है । शिथिल हो जानेवाली दाम्पत्य जीवन संबन्धी परंपरागत नैतिक मान्यताओं पर भी अश्क जी ने विचार किया है । अब यह आवश्यक नहीं है कि जिससे प्रेम हो उसी से विवाह भी और जिससे विवाह हो उससे प्रेम भी । विवाह पूर्व यौन संबन्धों में भी नयी पीढी कोई अनैतिकता नहीं देखती है ।

---

166. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 654
* स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण - हेमेन्द्र पानेरी पृ. 184.

"शहर में घूमता आईना" में चेतन का मित्र अनन्त भी नैतिकता को जीवन का कोई गुण नहीं मानता है । औरतों के बारे में उसका मत है "उनका एक ही काम है । जो पुरुष उसे काम नहीं लेता वह पुरुष नहीं है । प्रेम-प्रेम सब बकवास है ।"[167] बड़ी बड़ी आँखों का तीरथाराम का चरित्र भी इसप्रकार है उसके घर में बीवी होने के बावजूद भी इस तथ्य को छिपाकर वह देवनगर के देवाजी की पुत्री वाणी से प्रेमसंबन्ध स्थापित करना चाहता है ।

"शहर में घूमता आईना" के चेतन के पिता शादी राम भी ऐसा एक पात्र है जो शराब पीना, जुआ खेलना और बिना कारण के पत्नी बच्चों को पीटना अनैतिक नहीं मानता है । अपनी पत्नी के सामने अपने घर में शादीराम अपने मित्र की पत्नी को रखैल के रूप में रखता है और शादीराम की पत्नी लाजवती को लच्छमा की सेवा-शुश्रुषा तक ही करनी पड़ती है । "शहर में घूमता आईना" के देसराज भी ऐसा एक पात्र है।वह इतने हेयवृत्ति का है कि कामतुष्टि के लिए वह अपनी बेटी के साथ भी यौन संबन्ध रखता है । पुण्य स्थानों का तीर्थाटन करने के बाद वह अपने आप को पाप से मुक्त अनुभव करता है और वही समाज में पुनः प्रतिष्ठित हो जाता है । ऐसी स्थितियों को मूल्यच्युति ही माना जाता है ।

इसी तरह "गिरती" के माई जीवां और कुछ विधवाएँ धर्म एवं साधुसन्तों की सेवा में लगी रहती है और इसी सेवा की आड में पुरुषों की वासना का शिकार बनती है । भयानक यौन रोगों से वे पीडित हो जाती है । धर्म के ठेकेदार ब्रह्मचारी साधु-महात्मा भी भ्रष्ट जीवन जीने वाले है इन सबका कारण विकृत सामाजिक आदर्श ही है ।*

---

167. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ.116

* प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना - डा. अमरसिंह, पृ. 173.

एक नन्ही किन्दील में भी स्त्री पुरुष संबन्धों से जुडी हुई अनैतिकता का चित्रण मिलता है । लाला निश्चिन्तराम की पत्नी और लाला का मित्र देवव्रत के बीच अनैतिक संबन्ध पनपता है । और लाला की सुन्दरी पत्नी , प्यार भरे एक शब्द या एक लज्जाभरा आलिंगन से ही अपने प्रति लाला की शंकाओं को एकदम दूर कर देती है । आँखें रखते ही लाला अन्धा हो जाता है ।

विवाह से पूर्व कन्या का माता बनना अनैतिक और अवैध कार्य है परन्तु बदलती हुई सामाजिक स्थितियों में विवाह पूर्व संबन्धों से जन्म लेनेवाले सन्तान को भी छलकपट के आधार पर मान्यता मिलती है । "गर्मराख" की शान्ता देवी और "शहर में घूमता आईना" के चेतन के पिता शान्दीराम के मित्र फकीरचन्द की बीवी इसके उदाहरण हैं । शान्ता देवी विवाह के पहले एक व्यक्ति से प्रेम करती है और उससे गर्भवती होती है । लेकिन उस आदमी की शादी शान्तादेवी से नहीं होती है । शान्ता के घरवाले शान्ता की शादी तुरंत करवा देते हैं । लेकिन आठ पांउड का पहला बच्चा उसके सात ही महीने पैदा होता है । उसी प्रकार फकीरचन्द की बीवी भी शादी से पहले गर्भवती होती है । चेतन के पिता, फकीरचन्द की बीवी को दूसरों की नज़र बचाकर अपने क्वार्टर में लाता है और प्रसव के बाद बच्चे को अनाथालय में भरती कर देता है । बच्चे की माँ फिर दुल्हिन बनकर फकीरचन्द की बीवी बन जाती है ।

समसामयिक जीवन की टूटती हुई नैतिक मान्यताओं को दिखाने के लिए अश्क जी ने अपने उपन्यासों में स्ववर्ग रति का भी चित्रण किया है । "शहर में घूमता आईना" में इसके कतिपय उदाहरण मिलते हैं । बिल्ला, जगना, प्यारू जैसे जालन्धर के मशहूर गुण्डे जो अखाडे के पहलवान भी है लडकियों की

अपेक्षा सुन्दर लडकों पर अधिक आकर्षित है । चेतन का पिता शादीराम भी कृष्ण राधा का नृत्य करनेवाले लडकों पर आकर्षित होता है । स्वयं चेतन में भी यह प्रवृत्ति है परन्तु संस्कारों का संयम ने उसे दबा रखा है ।* अमीचन्द के मामा सोहनलाल बुढापे में भी उसकी दूकान पर कोई न कोई सुन्दर लडका अवश्य रखता है और मुहल्ले में यह स्थिति आ जाती है कि मुहल्ले की औरतें अपने छोटे लडकों को उसकी दूकान में भेजने में भी संकोच करती है ।

परंपरागत नैतिक दृष्टिकोण वेश्यावृत्ति के प्रति घृणा का भाव रखता था लेकिन इसके प्रति आज हमारा दृष्टिकोण बदल रहा है । आज वेश्याओं के प्रति नयी पीढी को घृणा से अधिक सहानुभूति है । रेलगाडी में वेश्याओं को देखकर चेतन की जो स्थिति है इसका चित्रण "गिरती दीवारें" में अश्क जी करते हैं "उन वेश्याओं के प्रति एक विचित्र सहानुभूति से उसका मन प्लावित हो उठा । साल भर के थके, टूटे शिथिल अंग को लेकर अपने शरीर को बेचकर उन्हें भूखे हिंस्र पशुओं की दया पर छोडने के बाद ये बेचारी क्लान्ति की मारी कुछ समय आराम करने जा रही हैं ।"[168]

इस प्रकार अश्क ने अपने सभी उपन्यासों में नैतिक मान्यताओं के विघटन की तस्वीर उभार कर रखी है । स्त्री और पुरुष के बीच होनेवाले अवैध संबन्धों की जो स्थितियाँ उपन्यासों में उभर आयी है वह उत्तर भारत की सामाजिक व्यवस्था का अंग बन गयी है । पुरुष की स्वार्थता, कामुकता, स्त्री की अशिक्षा और असहाय अवस्था इस प्रकार के अवैध संबन्धों का आधार बन जाती है । यौन विकृति की अभिशप्तता को, मठ और मन्दिर के स्त्री-समाज

---

168. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ. 390

* साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - डा. घारूकान्त देसाई, पृ. 22-23

को नाटकीय बना देती है । छोटे लडकों के प्रति भी पुरुष-पशुओं द्वारा किये जानेवाले अत्याचार, गुण्डों के कारनामे आदि समाज के अन्धेरे से युक्त पक्ष को सामने रखते हैं । सभ्यता के विकास के साथ मानव का उत्थान नहीं, पतन होता है । संस्कृति, सामाजिक व्यवहार की नीति दोनों मनुष्य को आगे बढाने में असमर्थ है । अश्क ने सुधारात्मक ढंग से कोई सुझाव नहीं रखा है क्योंकि वे मानते हैं कि यह असंभव है ।

स्त्री पुरुष संबन्ध - मूल्य संदर्भ और विघटन की स्थितियाँ

स्त्री-पुरुष संबन्ध की चर्चा में मुख्यत: दो प्रकार के संबन्ध आ जाते हैं । वैवाहिक संबन्ध और प्रेम संबन्ध । विवाह के बारे में भारत में प्राचीन काल से ही यही परंपरा चली आयी है कि पति परमेश्वर है । इस प्रकार परंपरागत वैवाहिक मूल्यों में विवाह को आत्मिक संबन्ध, पूर्वनिश्चित संबन्ध, अटूट संबन्ध आदि के रूप में स्वीकृति मिली है । वर्तमान शिक्षा और स्वतन्त्र चेतना के उदय तथा यूरोपीय प्रभाव के कारण हमारे परंपरागत वैवाहिक मूल्य आज तीव्र गति से परिवर्तित हो रहे हैं । अश्क के उपन्यासों में इन दोनों स्थितियाँ हमें प्राप्त होती है । इनके कुछ उपन्यासों में एक ओर परंपरागत स्त्री-पुरुष संबन्धों की प्रतिष्ठा के अन्तर्गत समाज के प्राचीन आदर्शों एवं मान्यताओं का यथातथ्य रूप प्रस्तुत है तो दूसरी ओर नवीन दृष्टिकोण भी व्यक्त किया गया है ।

परंपरागत मूल्यों के आधार पर स्त्री-पुरुष संबन्धों की विवेचना अश्क ने अपने उपन्यासों के माध्यम से की है । "गिरती दीवारें" के चेतन की माँ "गर्मराख" के हरीश की माँ, "एक नन्ही किन्दील" के चेतन की

सास आदि पातिव्रत्य के आदर्श-अनुयायी दिखाई पडती हैं । चेतन की माँ उसके क्रूर, अत्याचारी, शराबी एवं जुआरी पति को भी देवतुल्य मानती है और उसके विरुद्ध कुछ सोचना भी पाप समझती है । चेतन का अविवाहित रहना उसे खलता है इसलिए वह परंपरा की दुहाई देकर उसे विवाहित कराने का प्रयत्न करती है । चेतन की सास भी पति के पागल हो जाने के उपरान्त अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व को बनाये रखने के साथ ही साथ परंपरागत आदर्शों को महत्व देती हुई कहती है "बेटा, मेरा घर वहीं है, जहाँ मेरा पति है । जेठ और उनके बेटे-बेटियों की गुलामी मैं ने बहुत कर ली है । उनकी गुलामी करने और बदले में दो "टुक्कर" और दस ताने-मोहने पाने के बदले दस अँगुलियों से कमाती हूँ, अपना पेट पालती हूँ और चन्दा के पिता की सेवा करती हूँ ।..... मैं उनकी कोई मदद नहीं कर सकती, पर हफ्ते में दो बार उन्हें देख तो आ सकती हूँ और कौन जानता है, मेरी सेवा से भगवान खुश हो जाय और उन्हें ठीक कर दें ।" [169] "गर्मराख" की हरीश के पिता एक दुनियादार आदमी है । वह वेतन से चार पाँच और कई बार आठ दस गुना तक कमाता है।जो कुछ कमाता है इसका एक छोटा भाग मन्दिर में भी अदा करता है । लेकिन हरीश की अपढ माँ, जो धर्म परायण और भोली भाली है अपने पति को दया-माया की मूर्ति सत्यवादी और पुण्यात्मा समझती है । इसी प्रकार "बाँधो न नाव इस ठाव" के लाला हाकिम चन्द की पत्नी भी अपने पति द्वारा बुरी तरह पिटने पर भी कोई शिकायत नहीं करती है सब कुछ सह लेती है ।

युवा पीढी के होने पर भी "गिरती दीवारें" की चन्दा में यही परंपरागत मूल्य दिखाई पडता है । अपनी माँ और सास के समान वह भी पति पर पूर्ण विश्वास करती है । पति की खुशी के लिए वह अपने को उसके रहन-

---

169. एक नन्ही किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 562

सहन और तौर-तरीकों के अनुसार ढालती है । पति के कहेनुसार घूँघट छोडती है । अपनी साली नीला के प्रति तनिक भी संशय की भावना नहीं रखती है । चन्दा को अपने पति पर अटूट विश्वास है ।

आधुनिक विचारवाली लता भी विवाह के प्राचीन मूल्यों में विश्वास रखती है । वह स्वतन्त्र प्रेम में विश्वास नहीं रखती । "सितारों के खेल" उपन्यास के अन्तिम भाग में विवाह के मूल्य के बारे में लता जो कुछ कहती है अपने ही अनुभवों से कहती है । "मेरी तरह स्वतन्त्र रहकर न भटकना । प्रकृति ने जिस उद्देश्य से पुरुष-स्त्री का सृजन किया है उसी उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग सबसे अच्छा मार्ग है ।"[170] इस संबन्ध में लता के पिता का विचार भी पुराना है उनके अनुसार "मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ ।..... और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है ।"[171]

"सितारों के खेल" का डा. अमृतराय नयी पीढी के होने पर भी पुराने आदर्श का है । उसने पहले एक पडोसिन लडकी से प्रेम किया था, लेकिन ऐसी एक अपढ और गँवार लडकी से शादी करना वह नहीं चाहता है । डा. जानता है कि ऐसी एक लडकी भावी डाक्टर की सहचरी होने के कदापि योग्य नहीं । इस प्रकार यहाँ वैवाहिक संबन्धों में कुल मर्यादा की दृष्टि को भी विशिष्ट महत्व दिया गया है । वैवाहिक संबन्ध बराबर कुल में होना ही

---

170. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 235
171. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 53

उचित माना जाता है । अपने कमदर्जेवाले कुल से वैवाहिक संबन्ध त्याज्य माना जाता है । डा॰ अमृतराय के अनुभवों के अनुसार स्त्री पुरुष संबन्धों में अत्यावश्यक चीज़ है वफादारी । "सुन्दरता और सलीके के अतिरिक्त एक तीसरी वस्तु भी है जो नारी में होनी आवश्यक है वह और है वफ़ादारी - अपने प्रेमी अथवा पति के प्रति प्रेम होने के साथ-साथ उन्नति तथा अवनति में उसीसे लौ लगाये रखने की भावना ।"[172]

अश्कजी के उपन्यास "निमिषा" का नायक पात्र गोविन्द का मित्र रूपकृष्ण आधुनिक कलाकार है । इतने आधुनिक विचारवाले होने पर भी वह डाइवोर्स के मूल्य को नहीं मानता है । परंपरागत वैवाहिक मूल्यों को ही वह सराहता है । रूपकृष्ण कहता है "अव्वल तो हमारे देश में डाइवोर्स की वैसी सहूलत नहीं, फिर हम विदेश में तो नहीं रहते कि एक डाइवोर्स किसी दूसरी डाइवोर्सी से शादी कर ले ।" [173]

नवीन सामाजिक चेतना के अन्तर्गत प्रेमसंबन्धी समस्याओं को नितान्त वैयक्तिक स्तर पर स्वीकार कर इनका हल प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा संबन्धों को नई दिशा प्रदान कर परिवर्तित मूल्यों को परिभाषित करने के प्रयत्न भी किये गये हैं । संबन्धों में उत्पन्न तनाव तथा मूल्यहीनता का प्रसार आधुनिक स्थितियों में व्यक्ति के परिवर्तित चिन्तन को प्रस्तुत करता है । ऐसे परिवर्तित होते हुए मूल्यों का निरूपण भी अश्कजी के उपन्यासों में हुआ है ।

---

172. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 111

173. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 212

नयी पीढी, स्त्री-पुरुष के बीच पति-पत्नी संबन्ध के बदले संगी और संगिनी का नाता अधिक पसन्द करती है । "गिरती दीवारें" और "एक नन्ही किन्दील" का चेतन अपनी पत्नी के साथ ऐसा एक संबन्ध बनाना चाहता है । वह पत्नी से कहता है "यदि तुम मुझ-सी अध्ययन शील बन जाओ चन्दा, साहित्य में तुम्हें भले-बुरे की तमीज़ हो जाय तो हमारे बीच पति-पत्नी के बदले संगी और संगिनी का नाता स्थापित हो जाएगा, हम एक-दूसरे को भली-भाँति समझते जायेंगे और दिन प्रतिदिन हमारे प्रेम की ज़ंजीर मज़बूत होती जाएगी ।"[174] "निमिषा" का गोविन्द भी ऐसी एक संगिनी को चाहता है "केवल सौन्दर्य से मेरा काम नहीं चल सकता । मुझे पढी-लिखी हमदर्द संगिनी चाहिए, जिसे कला-कौशल में रुचि हो, जो मुझे समझ सके, मेरे आर्ट को समझ सके ।"[175] गर्मराख का हरीश भी स्त्री-पुरुष संबन्ध को संगी-संगिनी के रूप में देखना पसन्द करता है ।

स्त्री-पुरुष संबन्धों के संदर्भ में "निमिषा" उपन्यास की नायिका निमिषा की मान्यताएँ सर्वथा व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पक्ष में हैं । वह स्त्री-पुरुष संबन्ध में विश्वास को ही प्रमुखता देती है । वह व्यक्ति स्वातन्त्र्य की समर्थिका है । विवाहोपरान्त उसकी स्वतन्त्रता पर विघ्न आना वह नहीं चाहती । वह कहती है "विवाह के सिलसिले में मेरे विचार दूसरे हैं । अग्नि के सामने चार मन्त्र पढ लिये जायँ, चार बच्चे हो जायँ तो उसे विवाह नहीं कहते । जब तक दिल ही एक सूत्र में न बँधे तो विवाह कैसा ? ..... लोगों की आँखों में एक होकर भी यदि पति-पत्नी वास्तव में एक न हुए तो विवाह कैसा ?"[176]

---

174. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 287
175. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 184
176. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 135

"सितारों के खेल" का जयदयाल भी पति-पत्नी संबन्धों में पूरी स्वतंत्रता, स्वच्छन्दता चाहता है । कालेज के वाद विवाद में वह अपना मंतव्य यों प्रस्तुत करता है । "प्रकृति की ओर देखिए ..... कहीं ऐसी कैद नहीं, कहीं ऐसा बन्धन नहीं ; तितली फूल-फूल पर बैठती है, एक ही फूल के साथ नहीं पिरो दी जाती, तो फिर पत्नी हो क्यों पति के साथ इस तरह बाँध दी जाय कि मृत्यु के सिवा यह बन्धन टूट ही न सके ।" 177

बहुत पढी लिखी न होकर भी "गिरती दीवारें" की नीला भी विवाह के बारे में यही मान्यता रखती है । उसे उसके जीजाजी से बहुत प्यार है । लेकिन वह जानती है कि सामाजिक बन्धनों के कारण वे शादी नहीं कर सकते और नीला दूसरी शादी करना नहीं चाहती भी है । वह अपने जीजाजी से पूछती है "क्यों जीजाजी, जब लोग ब्याह के बाद ब्याह को कोसते हैं तो वे क्यों करते हैं शादी ? न करें ? सुख से रहें । मैं तो कभी न करूँगी ।" 178

अश्क के उपन्यासों में तथाकथित रूढियों का विरोध कर स्त्री-पुरुष प्रेम संबन्धों को नवीन संदर्भों से जोडा गया है । हरीश की विचारधारा इस कोटि की है। वह कहता है "यह छिपकली-सा प्रेम हमारी वासना, अज्ञान और उसी कारण स्त्री-पुरुष के सहज संबन्ध पर लगी वर्जनाओं के कारण है । ऐसा प्रेम न रहेगा । ये इन्द्रजाल टूटते हुए जा रहे हैं । जब भी हम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हुए नर-नारी के परस्पर संबन्धों में भी स्वतन्त्रता आयेगी ।" 179

---

177. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 24

178. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 303

179. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 438

वर्तमान शिक्षा, स्वतंन्त्र चेतना तथा यूरोपीय प्रभाव के फलस्वरूप प्रेम विवाह की संभावनाएँ बढती जा रही है । अश्क जी "निमिषा" उपन्यास के ओम द्वारा इस नये मूल्य को भी चित्रित करते हैं । ओम अपने बडे भाई से कह देता है "मैं ऐसे अरेंज्ड मैरिज नहीं करूँगा । यह अँधे कुएँ में तीर मारना मुझे पसन्द नहीं ।"[180]

इसप्रकार अश्क जी के उपन्यासों में ऐसे अनेक पात्र मिलते हैं जिनका प्रेम या वैवाहिक संबन्ध टूटने की स्थिति में है । 'गर्मराख' की शान्तादेवी और उसका पति, 'एक नन्हीं किन्दील' के रामानन्द-चम्पावती एवं कवि चातक और उसकी पत्नी, "निमिषा" उपन्यास के गोविन्द - माला इन सबके संबन्ध टूटने की स्थिति में है । लेकिन सामाजिक बन्धनों के कारण वे एक दूसरे से मुक्त नहीं हो पाते किसी न किसी तरह संबन्ध को आगे बढाते रहते हैं । उन संबन्धों में परंपरागत विश्वास या आदर्श कहीं गायब दिखाई दे रहा है । मूल्य परिवर्तन के रूपायित होने की पूर्व स्थिति पात्रों में हैं । संबन्ध कुछ अनमिने रिश्ते मात्र हैं । इसका कारण यह भी है कि उन उपन्यासों में दो-तीन स्त्री पात्रों के अलावा बाकी सब न तो शिक्षित है न क्षमतायुक्त ही । दबी सिसकियाँ और मौन प्रतिशोध पात्रों को खामोशी से बाँध देते हैं ।

अश्क के उपन्यासों में परिवार और संबन्धों की शिथिलता

परिवार समाज की आधारभूत इकाई हैं । संस्कृति के सभी स्तरों पर पारिवारिक संघठन का अनिवार्य अस्तित्व रहा है । लेकिन समय और

---

180. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 176

परिस्थितियों के अनुसार इस संस्था में भी परिवर्तन आ रहा है । पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, व्यक्ति का आर्थिक स्वातंत्र्य, धर्म में अनास्था आदि के कारण आज हमारे पुराने पारिवारिक मूल्य शिथिल हो रहे हैं । आज परिवार के सदस्यों में पारस्परिक स्नेह, सहयोग और सुरक्षा का अभाव बढ रहा है । अश्क के उपन्यासों में भी समसामयिक संदर्भ में टूटते हुए दिखाई पडनेवाले पारिवारिक मूल्यों का आभास मिलता हैं । अश्क के उपन्यासों में ऐसे बहुत ही कम परिवार मिलते हैं जो स्वस्थ जीवन बिता रहे हो ।

परिवर्तित युग के व्यक्ति स्वातंत्र्य और स्वार्थ की भावना ने हमारे परंपरागत संयुक्त परिवार के मूल्यों पर बहुत ठेस पहूँचाया है । "गिरती दीवारें" और "शहर में घूमता आईना" के चेतन का परिवार इसका सफल उदाहरण प्रस्तुत करता है । चेतन के पिता शादीराम एक क्रूर शराबी, जुआरी पति है लेकिन चेतन की माँ अत्यन्त सहनशीला पत्नी है । घर और बच्चों को वह किसी न किसी तरह सँभाल लेती है । शादीराम इतना क्रूर पिता है कि वह अपने विवाहित बेटों को भी पीटता है । उसकी मार-पीट के भय से आहत होकर उसका बडा बेटा रामानन्द एक बार दिल्ली भाग गया था । शादीराम को अपने पिता का भी भय नहीं है क्योंकि घर में कमानेवाला एक ही व्यक्ति शादीराम है । इसकी इच्छा पर घर का सारा काम होता रहता है । शादीराम की स्थिति अन्त में इतनी दयनीय हो जाती है कि उसके द्वारा उसकी पत्नी को पीटने पर बेटों को उस पर हाथ उठाना पडता है । ऐसे कलुषपूर्ण वातावरण में चेतन घर छोडने तक विवश हो जाता है । "वह चाहता था कि बर्बरता के इस तांडव को और न देखे, उन काँपा देनेवाली गालियों को और न सुने और मुहल्ले में घर घर होनेवाली चर्चा से दूर भाग जाय ।"[181] चेतन के घर में चेतन की माँ

---

181. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 204

और रामानन्द की झगडालू पत्नी चम्पावती के बीच भी हमेशा लडाई-झगडा होता रहता है ।

"गर्मराख" के दुरो के घर का वातावरण भी हमेशा अशान्तिपूर्ण है । दुरो की माँ की मृत्यु दुरो के बचपन में ही हुई थी और दुरो इस कारण अपनी माता की बहिन के साथ रहती है । मौसी उसे तब तक प्यार करती रहती है जब तक उसे अपना बच्चा नहीं होता । बाद में दुरो की स्थिति दासी की सी हो जाती है । उस घर में दुरो के मौसे का स्नेह ही दुरो का एकमात्र सम्बल है । लेकिन झगडालू मौसी को अपने पति पर सन्देह होने लगता है और उस परिवार की भी स्थिति हमेशा अशान्तिपूर्ण रह जाती है । "निमिषा" उपन्यास की नायिका निमिषा के चाचा और चाची के बीच भी निमिषा के कारण मन-मुटाव की स्थिति आ जाती है । निमिषा अनाथ होने के कारण उसका चाचा उसे देखता संभालता है जो उसकी चाची को पसन्द नहीं है ।

"एक नन्हीं किन्दील" के चेतन और चन्दा के बीच के संबन्ध में भी बीच बीच दरारें दिखाई पडती हैं क्योंकि चन्दा की माँ वही शहर में नौकरानी बनती है जहाँ चेतन और चन्दा रहते हैं । बहुत मनाने पर भी चेतन की सास उनके पास नहीं रहती है और इस बात को लेकर चेतन और चन्दा के बीच तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है ।

इसी प्रकार "एक नन्हीं किन्दील" के रामानन्द और चम्पावती के पारिवारिक जीवन भी सन्तुष्ट नहीं । चम्पावती किसी भी छोटी बात पर भी झगडा करनेवाली है और कुछ वर्ष के लिए वे दोनों अपना संबन्ध बनाये

रखते हैं । लेकिन अन्त में जब चम्पावती यक्ष्मारोगी बन जाती है तब रामानन्द उसकी ओर देखता तक नहीं । चेतन और चन्दा उसकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं । चम्पा से दूर रहने के लिए रामानन्द हर दिन सिनेमा देखने चला जाता है ।

अर्थाभाव के कारण भी पारिवारिक मूल्य शिथिल होते हुए दिखाई पडते हैं । "एक नन्हीं किन्दील" उपन्यास में लाहौर का चेतन परिवार इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है । चेतन का बडा भाई रामानन्द, उसकी पत्नी चम्पा, चेतन की पत्नी चन्दा और चेतन ये चार लोग दो ही कमरेवाले एक घर में रहते हैं । अपनी झगडालू भाभी और निकम्मे भाई से चेतन ऊब जाता है । चेतन को अपने भाई के परिवार का भी खर्च स्वयं उठाना पडता है । इन समस्याओं को लेकर दोनों भाईयों के बीच का संबन्ध शिथिल हो जाता है ।

संयुक्त परिवार की संकल्पना कितनी भी महान क्यों न हो उसका सबसे बडा दोष यह रहा है कि परिवार का कोई सदस्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता । इसका सबल उदाहरण "निर्मिषा" उपन्यास के गोविन्द का परिवार है । गोविन्द और निर्मिषा के प्रेम संबन्ध को लेकर गोविन्द के घर में झगड़ा होता है । घरवालों के आनिष्ट के कारण गोविन्द निर्मिषा से शादी नहीं करता है । लेकिन इसका नतीजा यह निकलता है कि बाद में माला के साथ गोविन्द का जीवन अत्यन्त अशान्तिपूर्ण बन जाता है । इस प्रकार परंपरागत सम्मिलित परिवार में व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अपने व्यक्तित्व का बलिदान करना पडता है ।

परिवार के सदस्यों में दिखाई पडनेवाली वैयक्तिक मूल्यच्युति भी सम्मिलित परिवार की प्रथा पर आघात पहुँचाती है । इसका प्रत्यक्ष

उदाहरण "शहर में घूमता आईना" में मिलता है । इसमें भागो धर्मचन्द की बीवी है । क्षयरोग के कारण भागो के वृद्धपति धर्मचन्द की मृत्यु होती है । इसके बाद धर्मचन्द का छोटा भाई मुकन्दीलाल भागो और उसके बच्चों को अपनी छत्रछाया में संभालता है । पहले ही मुकन्दीलाल ने उसके दूसरी विधवा भाभी को अपनाया था । लेकिन बाद में इन दोनों के स्त्रियों के बीच झगडा होता है और भागो जो जाति से खत्री है तेलू ब्राह्मण के साथ भाग जाती है । इसी प्रकार "बाँधो न नाव इस ठाँव" में भी एक डाक्टर परिवार का चित्रण है । डाक्टर साहब साठ का विधुर है । उसके तीन लडके और दो लडकियाँ है । छोटे लडका किशन के सिवा बाकी सब लोगों की शादी हुई है । डाक्टर को पेंशन आ जाती है और पचास हज़ार का कैश-सर्टिफिकेट उन्होंने खरीद रखी हैं । डाक्टर की शादी एक युवती से होती है और उन दोनों की आयु में दुगुने का फर्क है । डाक्टर की इस युवा पत्नी से डाक्टर के छोटे बेटे के अलावा अन्य सब नफरत करते हैं । डाक्टर और उसकी पत्नी का संबन्ध आत्मीयता से मुक्त है और बाद में डाक्टर की पत्नी और किशन के बीच नया संबन्ध पैदा होता है ।

संक्षेप में कहें तो समसामायिक भारतीय समाज में दिखाई पडनेवाले पारिवारिक संबन्धों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में अश्क जी बहुत सफल हुए है । तत्कालीन समाज में दिखाई पडनेवाले अर्थतत्व इन रिश्तों के बीच प्रवर्तमान है । संबन्ध अर्थ के आधार पर बन नहीं पाते । ये टूटकर बिखरते हैं । पारिवारिक संबन्ध भी अर्थ और अर्थहीनता की स्थितियों में डवाँडोल होते दिखाई पडते हैं । पति-पत्नी, पिता-पुत्र और भाई-बहन के रिश्ते भी धन और दौलत के आधार पर मोड लेने को बाध्य होते हैं । दूसरे शब्दों में अश्क के उपन्यास इस परिवर्तन के सन्धिकाल में समाज में दिखाई पडनेवाली मानासकता के स्वरूप की झलक प्रस्तुत करते हैं ।

अर्थ की प्रतिष्ठा

इस वैज्ञानिक युग में अर्थ ही सर्वमान्य तत्व बन गया है और इस संपूर्ण विश्व में आज अर्थ-संघर्ष व्याप्त है । आर्थिक समृद्धि द्वारा शक्ति का संचय होता है और शक्ति से सत्ता चलती रहती है । अर्थ की प्रतिष्ठा समाज में विभिन्न विषमताओं को जन्म देती है । अश्क जी के उपन्यासों में भी निम्न एवं मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याओं का विशद निरूपण मिलता है । इनके उपन्यासों में चित्रित इन दोनों वर्गों की प्रत्येक समस्या अर्थ से जुडी हुई है । प्रेम, विवाह, पारिवारिक संबन्ध, सामाजिक संबन्ध जो भी हो सब का आधार अर्थ ही दिखाई पडता है । अर्थ के अभाव में इन संबन्धों में मन मुटाव की स्थिति उत्पन्न होती है ।

आधुनिक समाज में किस प्रकार प्रेम की नियामिका शक्ति अर्थ बन गयी है अश्क जी के प्रायः सभी उपन्यास इस तथ्य का समर्थन प्रस्तुत करते हैं । "गर्मराख" के युवाकवि वसन्त के विचारों से भी इस सत्य को स्पष्ट कर देता है कि आर्थिक समस्या मध्यवर्गीय प्रेमियों को किस प्रकार आक्रान्त कर रही है । "प्रेम से उसे इनकार नहीं....., प्यार का विलास इस निर्धनता में सुखद नहीं । प्रेम यदि कुछ क्षणों के लिए उन्हें अपने वातावरण की अपरूपता भुला देगा तो उसकी परिणति के पश्चात् उस वातावरण की भयंकरता और भी द्विगुणित होकर उनकी समस्त सुन्दर भावनाओं का गला घोंट देगी ।" [182]

"गर्मराख"के जगमोहन की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । वह पहले सत्या के प्रति आकर्षित हो जाता है । आर्थिक अभाव में सत्या उसे

---

182. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 177 - 178

सहायता पहुँचाती है । बाद में जगमोहन दुरो से प्रेम करता है । लेकन वह निरन्तर यह सोचता रहता है "मुझे दुरो का ध्यान छोड देना चाहिए, ... इसमें असफलता, निराशा और व्यथा के सिवा कुछ हाथ न आयेगा ..... जबतक वह अपनी शिक्षा समाप्त नहीं कर लेता, प्रेम के चक्कर में न पडेगा ।"[183] वह दुरो के सामने अपने प्रेम को प्रकट कर नहीं पाता । अपनी शोचनीय आर्थिक स्थिति में विवाह उसे बेडी जैसा नज़र आता है ।

"निमिषा" उपन्यास की कनका उच्च मध्यवर्ग की है । वह भी अर्थ को अपने प्रेमी का एक अवश्य गुण मानती है । गोविन्द के बारे में वह निमिषा से कहती है "प्रेम करने के लिए क्या वह सडा टीचर ही रह गया मेरे लिए, जिसे रहने को धोबियों की गली के सिवा कोई जगह नहीं मिली । मुझे उसे प्रेम नहीं:..... प्रेम तो मैं सात जन्म उससे नहीं कर सकती । जिस कमरे में वह रहता है वहाँ दस मिनट बैठना मेरे लिए दूभर हो गया ।"[184]

विवाह के मंजिल पर भी अर्थ एक ज़रूरी चीज़ है । "गिरती दिवारें" का चेतन निम्न-मध्यवर्गीय परिवार का है । उसकी सगाई कुछ दिनों के अन्दर होनेवाली है लेकिन अपने आर्थिक अभाव के कारण वह शादी नहीं करना चाहता है । वह सोचता है कि उसका वेतन कुछ बढ जाय तब शादी करेगा । उसके अनुसार "विवाह काफी जिम्मेदारी का काम है और इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए सबसे ज़रूरी वस्तु रुपया है जो अभी तक उसके पास नहीं ।"[185]

---

183. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 215

184. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 55 - 56

185. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 174

आर्थिक असन्तुलन के कारण अनेक प्रेम संबन्ध विवाह में परिणित नहीं हो पाते हैं । इसके अनेक उदाहरण अश्क जी के उपन्यास प्रस्तुत करते हैं । जगमोहन का मित्र वसन्त की समस्यायें लगभग जगमोहन की सी है । वह भी अपनी पढाई के लिए साधन की खोज में है । इसलिए वह अपने भावी ससुर के सामने यह प्रस्ताव रखता है कि शादी के बाद वह वसन्त के खर्च का प्रबन्ध करें । जब ससुर तैयार नहीं होता है तब वसन्त सगाई तोड देता है । आर्थिक अभाव के कारण ही "एक नन्हीं किन्दील" के कश्मीरीलाल के जीवन का सर्वनाश होता है । कश्मीरीलाल की सगाई एक जगह हुई थी । लेकिन जब मेट्रिक पास किये उसे दो वर्ष हो गये और उसे नौकरी न मिली तो लडकीवालों ने सगाई तोड ली और प्रेम की असफलता में उसने और किसी से सगाई नहीं की । उसकी मानसिक स्थिति बिगड जाती है और युवावस्था में ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।

पुरुष पात्रों के समान नारी पात्रों के लिए भी आर्थिक अभाव के कारण विवाह एक बडी समस्या-सी बनी गयी है । "गिरती दीवारें" की चन्दा की सहेली अपनी बडी आयु के बावजूद अविवाहित है जिसका कारण दहेज प्रथा है । इस उपन्यास की नीला का विवाह भी ऐसी एक विधुर अधेड उम्र के आदमी से इसलिए होता है कि वह एक बडी रकम वेतन के रूप में पाता है । यह शादी उसकी तीसरी शादी है । अर्थ की सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण लडकी वाले लडके-लडकी की उम्र का अन्तर देखकर भी अनदेखा किया करते हैं ।

अर्थ तत्व के कारण भाई और भाई के बीच का संबन्ध टूटता है । "एक नन्हीं किन्दील" का चेतन और उसके भाई के बीच का संबन्ध इसका उदाहरण है ।

अर्थाभाव से युक्त निम्न - परिवार के पति-पत्नी सन्तान को भी नहीं चाहते हैं । आर्थिक स्थिति के खराब होने के कारण "एक नन्हीं किन्दील" का चेतन पिता बनना भी नहीं चाहता । वह सोचता है "लेकिन क्या वह स्वयं भी पिता बनना चाहता है ?.....वह उस वक्त तक पिता नहीं बनना चाहता, जब तक वह आर्थिक रूप से अपने होनेवाले बच्चे के उचित लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के योग्य न हो ।"[186] उसी प्रकार "निमिषा" उपन्यास का गोविन्द भी बच्चों को जन्म देना और उनका पालन पोषण करना एक लग्ज़री मानता है । वह अपनी पत्नी से कहता है "बच्चे मुझे अच्छे लगते हैं लेकिन आर्टिस्ट के नाते बच्चों को मैं अपने लिए लग्जरी स्ययाशी मानता हूँ, जिसे मैं आज एफोर्ड नहीं कर सकता । कल मेरे पास खूब पैसा आ जाय तो चार पाँच बच्चों से भी मुझे गुरेज न होगा । लेकिन आज एक भी हो, मैं यह पसन्द नहीं करूँगा ।"[187] और गोविन्द पत्नी माला से उसके गर्भस्थ शिशु को नष्ट करने के लिए भी कहता है ।

शिक्षित होने पर भी साधनाहीन व्यक्तियों को नौकरी मिलना आज भी सामाजिक व्यवस्था में बड़ा कठिन कार्य है । अश्क जी ने अपने उपन्यासों में इसकी ओर भी इशारा किया है । गर्मराख के जगमोहन के मन में शिक्षा के प्रति उपेक्षा भाव है क्योंकि उसे लगता है कि "मैं ने एम.ए. कर भी लिया तो क्या तीर मार लूँगा ।"[188] वह जानता है कि किसी न किसी प्रकार एम.ए. कर लेने पर भी उसे नौकरी नहीं मिलेगी । इसलिए वह सत्या

---

186. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 388
187. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 277
188. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 351

से कहता है "अव्वल तो अपनी इस साधन-हीनता से मुझे विश्वास नहीं कि मैं एम.ए. की यह नदी पार कर जाऊँगा । फिर पार कर भी गया तो थर्डक्लास एम.ए. करके क्लर्की करने की अपेक्षा एम.ए. किये बिना भी क्लर्की की जा सकती है ।"[189] निम्न-मध्यवर्ग के युवक पैसे के अभाव और नौकरी की अप्राप्यता के कारण स्वयं शक्तिहीन महसूस करते हैं । धन के अभाव में उनकी आकांक्षाएँ पूरी नहीं होती है ।*

अर्थ का सबसे अधिक प्रभाव राजनीति के क्षेत्र में पडता है । "शहर में घूमता आईना" में इसका निरूपण हम देख सकते हैं । धन के बल पर राजनीतिक दलों को खरीदा जा सकता है सेठ हरदर्शन का कांग्रेसी बनना इसका उदाहरण है ।

आधुनिक समाज में आर्थिक शोषण नया मूल्य बन गया है । तत्कालीन समाज में प्रचलित शोषण की प्रवृत्ति का निरूपण भी अश्क जी के उपन्यासों में हुआ है । उनके सारे उपन्यासों में कतिपय शोषकों का रूप द्रष्टव्य है । इनमें प्रमुख है "गिरती दीवारें" का कविराज । वह नये प्रतिभावान साहित्यकारों की प्रतिभा को सस्ते दामों में खरीदकर महँगे दामों में बेचनेवाला साहित्यिक व्यापारी है । उसकी कारोबारी वृत्ति की फंसा नौकरों पर ही नहीं उससे मिलनेवाले सभी व्यक्तियों पर पडता है । इसी प्रकार लोगों से सम्मान और दाद पाने के लिए दूसरे कवियों की कविताओं को सुनानेवाले "बाँधो न नाव इस ठाव" के हूनर साहब का भी वास्तविक रूप शोषक का है । "बडी बडी आँखें" का देवाजी भी इसी शोषण के तरीके को अपनाता है । देवाजी अपने भाषण की

---

189. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 352

* हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनों का प्रभाव - डा.पी.के.पद्मजा, पृ. 207.

चपेट में लोगों को आकर्षित करता है । लेकिन उसकी कथनी और करनी में आकाश पाताल का अन्तर है । देवनगर और इसका प्रैक्टिकल स्कूल देवाजी के लिए धनोपार्जन मार्ग ही है । "पत्थर - अलपत्थर" में भी इस शोषण की प्रवृत्ति का पर्दाफाश हुआ है. । "एक नन्हीं किन्दील" का संपादक वर्ग भी पत्रकारिता के क्षेत्र में दिखाई पडनेवाले शोषकों को प्रस्तुत करते हैं । इसप्रकार अश्कजी के उपन्यासों में शोषण को एक नये मूल्य के रूप में अपनानेवाले बहुत सारे पात्र दिखाई पडते हैं ।

अश्कजी के उपन्यासों में ऐसे एकाध पात्र भी मिलते हैं जो इस मूल्यच्युति के विरुद्ध आवाज़ उठाना चाहते हैं । आर्थिक अभाव में व्यक्ति को दबते पिसते देखकर "गिरती दीवारें" के चेतन के मन में संपन्न वर्गों के यह वर्गवादी प्रवृत्ति के प्रति आक्रोश की भावना भटक उठती है । लेकिन वह खुलकर इसका विरोध नहीं करता है । गर्मराख का हरीश इस दृष्टि से एक सशक्त पात्र दिखाई पडता है । वह युग की इस मूल्यहीनता एवं सामाजिक विकृतियों का विरोध करता है । युगव्यापी शोषण वृत्तियों को बदलने के लिए वह समाजवादी व्यवस्था को उपयुक्त मानता है और वह मानवीय मूल्यों का पक्षधर है ।

इस तरह अर्थ को एक सबल तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करके अश्क ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि बदलती सामाजिक स्थितियों में अर्थ ही निर्णायक तत्व है जो सभी प्रकार के संबन्धों को बनाने और मिटाने में सक्षम होता है ।

नारी के प्रति दृष्टिकोण

नारी जीवन संबन्धी परंपरागत आदर्शों में तीव्र परिवर्तन इस युग की एक बडी विशेषता है । पुराने समाज में परंपरागत गार्हस्थ्य एवं

पातिव्रत्य के परिवेश में नारी का जीवन बहुत कुंठित था । आज भी वह पूर्ण रूप से मुक्त या स्वतन्त्र नहीं है । फिर भी उच्चशिक्षा और नारी स्वातन्त्र्य की भावना के कारण वह इस संकुचित दायरों से निकलकर स्वच्छन्द जीवन की ओर अग्रसर होती रहती है । अश्कजी के उपन्यासों में भी नारी विषयक पुराने और नये मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है ।

समाज में नारी संबन्धी परंपरागत पातिव्रत धर्म का विशेष मूल्य यह रहा है कि चाहे पति कैसा भी हो पत्नी को सदाचरणवाली, पति-सेवी और एकनिष्ठ होना चाहिए । अश्क जी के "गिरती दीवारें", "शहर में घूमता आईना" और "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन की माँ लाजवती ऐसी एक परंपरागत रूढिवादी नारी है । वह सदैव अपने क्रूर पति के अत्याचारों का शिकार बनी रहती है । अपने निर्दय पति को वह अपनी समस्त आस्था, प्यार और आदर-सत्कार देती है । स्वप्न में भी वह पति की बुराई नहीं सोचती है । इस प्रकार पतिव्रत धर्म ऐसी स्त्रियों की आदत-सा बनने के कारण उपन्यासकार ने "गिरती दीवारें" में इसप्रकार बताया है "बचपन ही से उन्हें बताया जाता है कि पति अन्धा काना, लूला लंगडा, निर्धन, शराबी, जुआरी-कैसा भी क्यों न हो पत्नी के लिए परमेश्वर है, उसकी अवज्ञा करना महापाप है । इसलिए पतिव्रत-धर्म उनके स्वभाव का एक अंग बन जाता है ।"[190]

"गर्मराख" और "एक नन्हीं किन्दील" के चातक की पत्नी भी इस प्रकार पति की क्रूरताओं का शिकार बनी रहती है । वह फूहड, कुरूप और अशिक्षित है । "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन की सास भी ऐसी एक पतिव्रता

---

190. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क , पृ. 123

पत्नी है । अपने पति के पागल हो जाने पर वह एक सेठ के घर की नौकरी करके उससे मिलनेवाली आमदनी से अपने पति की सेवा-शुश्रुषा करती है । युवा पीढी के होने पर भी चेतन की पत्नी चन्दा परंपरा से बंधी नारी है । वह अपने पति की आज्ञाओं का पालन करती है । उसके विरोध में कुछ नहीं कहती ।

अश्क के उपन्यासों में पुरुष वर्ग के ऐसे अनेक पात्र आते हैं जो पत्नीत्व को ही नारी का एकमात्र आदर्श मानते हैं । "सितारों के खेल" का जगत आधुनिक विचारवाला है लेकिन वह भी नारी का परंपरागत रूप ही देखना चाहता है । लेखक के शब्दों में "वह चाहता था, ऐसी पत्नी जो उसको देवता माने, उसकी आज्ञा को वेद-वाक्य समझे, उसके लिए जीवन तक अर्पण कर दे, जो पतिव्रता हो और जो उसकी सेवा को ही स्वर्ग समझे ।" [191] जगत पहले लता से प्रेम करता है । लेकिन जब वह समझ लेता है कि लता स्त्री स्वातन्त्र्य की पक्षधर है और वह अपनी एक अलग अस्तित्व को बनाये रखना चाहती है तब जगत लता के साथ अपना संबन्ध तोड देता है क्योंकि वह जानता है कि ऐसी एक स्त्री के साथ वह स्वस्थ-जीवन बिता नहीं सकेगा । "सितारों के खेल" के डा॰ अमृतराय शिक्षित होने पर भी परंपरागत आदर्शों को माननेवाली लडकी से शादी करना चाहता है ।

"निमिषा" के नायक गोविन्द का मित्र रूपकृष्ण एक आधुनिक कलाकार है । उसकी शादी एक फ्रांसीसी आर्टिस्ट लडकी से हुई थी, लेकिन वह भी नारी की शोचनीय स्थिति के बारे में इस प्रकार कहता है "यहाँ तो अगर कोई मर्द औरत को छोड देता है तो औरत के लिए उम्र भर अकेली ज़िन्दगी

---

191. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ॰ 57

जीने और तकलीफ पाने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रहता ।"[192]

युग परिवर्तन के अनुसार नारी के प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है, उसमें भी परिवर्तन हो रहा है । नारी के प्रति यह परिवर्तित दृष्टिकोण भी अश्क के उपन्यासों में यत्रतत्र मिलता है । अश्क जी के उपन्यास "सितारों के खेल" के प्रथम भाग में कालेज के वाद विवाद का चित्रण है । इसमें मिस बाली नारी के प्रति पुराने दृष्टिकोण का खुलकर विरोध करती है "नारी को बराबर का अधिकार मिलेंगे और शताब्दियों की दासता से स्वतन्त्र होकर वह सुख की साँस लेगी और देश की प्रगति में बराबर का योग देगी ।"[193] पुरुष द्वारा स्त्री पर किये जानेवाले अत्याचारों का लता भी खुलकर विरोध करती है "पुरुषों का क्या अधिकार है कि वे स्त्री पर किसी तरह का अत्याचार करें । स्त्री-पुरुष में कोई अन्तर नहीं है ।..... यदि पुरुष उससे दुर्व्यवहार करें तो उन्हें भी अधिकार है कि पुरुषों के साथ वैसा ही सलूक करें ।"[194]

"एक नन्हीं किन्दील" का चेतन भी नारी के प्रति नवीन दृष्टि रखनेवाला है । वह अपनी अशिक्षित पत्नी को शिक्षित और सभ्य बनाने की कोशिश करता है । उसे स्कूल भेजता है, बाजा सिखाता है । "सितारों के खेल" का जयदयाल भी स्त्री के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण को परिवर्तित कर नये मूल्यों की स्थापना करने की ओर संकेत देता है । वह कहता है "पुरुषों के

---

192. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 212
193. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 19
194. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 58

बनाये हुए पातिव्रत धर्म ने बहुतेरे अत्याचार ढाये हैं । अब ज़रा स्त्रियों की स्वतन्त्रता को, अपनी-अपनी पसन्द को, तलाक को, कोर्टशिप को भी अपने करिश्मे दिखाने दीजिए ....."[195]

इसी प्रकार "गर्मराख" का कवि चातक जो अपने वैयक्तिक जीवन में स्त्री स्वातन्त्र्य को कोई महत्वपूर्ण चीज़ नहीं मानता है । वह भी अपनी कथनी में नारी के उद्धार का पक्षधर है । वह कहता है "हमारा सामाजिक जीवन जितना संकीर्ण और कुंठित है इसका कारण वे झूठी वर्जनाएँ हैं, जो स्त्री पुरुषों के मध्य खड़ी है । हमें उनको ढोना होगा । तभी हमारे देश की नारी अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर, अपनी शक्ति देश के उद्धार हेतु लगा सकेगी और सच्चे अर्थों में हमारी संस्कृति का पुनरुत्थान होगा ।"[196] "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन की बूढ़ी सास जो अब तक अपने जेठ परिवार की दया पर रहती थी अन्त में अपने बुढापे में वह भी नारी स्वतन्त्रता के नये मूल्य की स्थापना करती है ।

"निमिषा" का नायक गोविन्द भी नारी का पुरुषों की गुलामी में रहने से सहमत नहीं है । नारी का यों गुलाम रहने के कारणं वह नारी की अशिक्षा और आर्थिक अस्वतन्त्रता ही मानता है । वह कहता है "इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि हमारे देश की अधिकांश औरतें अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित है और मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक - सभी रूपों से पुरुषों पर आश्रित है । इसलिए समाज के जुल्म का ज्यादातर नतीजा उन्हीं

---

195. सितारों के खेल - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 23

196. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 67

को भुगतना पडता है । पढी-लिखी लडकी नौकरी करके इज्ज़त के साथ ज़िन्दगी बिता सकती है । अनपढ के सामने चाहे-अनचाहे एक ही व्यक्ति के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रहता ।"[197] गर्मराख का हरीश भी समाज में नारी की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहता है । उसके मत में "नारी "भोनी-मात्र" न रहकर सहचरी और संगिनी बनेगी और समाज के विकास में अपना पूरा योग देगी ।"[198] अश्कजी के ये विचार नारी के प्रति उदात्त मूल्यों को ही प्रस्तुत करते हैं ।

"शहर में घूमता आईना" का शादीराम भी नारी को पुरुष के साथ के झूठे बन्धन को तोडने की चेतावनी देता है । भागो जो जाति से क्षत्री है ब्राह्मण तेलू के साथ भाग जाती है और यह कार्य उस संपूर्ण जर्जर समाज को पचता नहीं । इसके बारे में चेतन यों सोचता है । "अपने समवयस्क मनचीते आदमी के साथ (वह ब्राह्मण ही सही) भाग गयी तो क्या बुरा किया उसने .....लेकिन क्या नारी की भी कोई जाति होती है, नदी या धरती की कोई जाति होती हैं ?"[199]

इस प्रकार अश्क जी के उपन्यासों में नारी के प्रति दृष्टिकोण परंपरागत होते हुए भी उनकी स्थिति में सुधार लाने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं । अशिक्षा और अरक्षा की शिकार नारी, पुरुष की कामपूर्ति का साधन बनकर प्रस्तुत होती है । परन्तु निमिषा जैसे उपन्यासों में नारी का कर्मरत पक्ष उभरकर सामने आता है । नये विचारों से प्रभावित नारी को स्वीकारने में पुरुष की हिचक भी उपन्यासों में कहीं कहीं दिखाई पडती है । पुरुष की

---

197. निमिषा - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 263
198. गर्मराख - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 438
199. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 372

कायरता और संघर्ष करने की क्षमता हीनता ऐसे संदर्भों में दर्शनीय है । "निमिषा" उपन्यास का गोविन्द, "सितारों के खेल" का जगत आदि इसके उदाहरण को प्रस्तुत करते हैं ।

व्यक्ति, समाज और मान्यताएँ

सामाजिक मूल्यों का महत्व उसकी उपयोगिता में हैं । लेकिन जब सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति स्वातन्त्र्य के खिलाफ खडी हो जाती है या सामाजिक व्यवस्था से व्यक्ति कुंठित हो जाता है तब समाज या जीवन के प्रति उसके मन में प्रबल अनास्था पैदा हो जाती है । धर्म, समाज, ईश्वर आदि के प्रति पूर्ण अस्वीकार की दृष्टि उसमें पैदा होती है । इस स्थिति का भी सफलता पूर्वक निरूपण अश्क जी के उपन्यासों में हुआ है ।

मानव अपनी अनास्था की स्थिति में ईश्वर के अस्तित्व पर प्रहार करता है । ईश्वर के प्रति यह आक्रोश मानवीय अस्तित्व एवं व्यक्ति स्वातन्त्र्य की दिशा से संबद्ध है । मोह भंग और अनास्था की स्थिति में ईश्वर के प्रति ही नहीं समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता, अनाचार, विकृति पूर्ण आचरण आदि पर भी वह प्रहार करता है । "गिरती दीवारें" का चेतन ऐसा एक पात्र है । शिक्षित होने पर भी उसको एक समाचार पत्र का उपसंपादक बनना पडता है । और अपनी मनपसन्द लडकी से उसकी शादी नहीं होती है । चेतन अनुभव करता है कि इन सबका कारण सामाजिक व्यवस्थाओं में दृष्टिगत विकृतियाँ ही है । अपनी महत्वाकांक्षाओं के बावजूद भी वह निस्सहाय एवं अधीर दिखाई पडता है । उसका मन समाज के प्रति आक्रोश की भावना से भर उठता है "उसका जी चाहा कि कहीं उसे अधिकार हो तो वह सारे के सारे मुहल्ले धराशयी करा दे । उसकी नीवें तक खुदवा डाले जिनमें सदियों से बीमारियों

के कीडे पल रहे हैं । नये सिरे से स्वस्थ लोगों की मुहल्ला बनाये । किन्तु दूसरे क्षण उसे खयाल आया कि मुहल्ला खोदने से क्या होगा । अशिक्षा, गरीबी, बेकारी न तो गरीबों का प्रत्येक मुहल्ला ऐसा बना रखा है । सारे देश की जीर्ण-पुरातन दीवारों को गिराकर नये देश, नये समाज, नयी नस्ल का आविर्भाव करना होगा ।" [200]चेतन के मन में समाज की थोथी मान्यताएँ रूपी दीवारों को गिराने की आशा है । लेकिन वह कुछ नहीं कर पाता ।

धर्म में अनास्था और ईश्वर में अविश्वास आधुनिक पीढी में रोग की भाँति व्याप्त हो रही है । ईश्वर के प्रति पूर्ण अस्वीकार की दृष्टि "शहर में घूमता आईना" के नायक चेतन में मिलती है । इसका नायक चेतन कहता है "मुझे भगवान न सर्वशक्तिमान दिखाई देता है, न न्यायशील, न सर्वज्ञ, न मुझे आवागमन में कोई तथ्य दिखाई देता है, न कर्मफल में, मुझे ये सब सिद्धांत आदमी की सीमित बुद्धि और मृत्यु के चमत्कार दिखाई देते हैं ।"[201] "बाँधो न नाव इस ठाव" के प्रथम भाग में भी ईश्वर के प्रति यह पूर्ण अस्वीकार की दृष्टि हम देख सकते हैं । अपने चारों ओर दिखाई पडनेवाले शोषक लोगों के शोषण की प्रवृत्ति और उनके चंगुल में फँसे हुए गरीबों की स्थिति देखकर ईश्वर में चेतन की आस्था टूट जाती है । वह मोक्ष प्राप्ति में भी विश्वास नहीं रखता है । चेतन सोचता है "जिसे दो जून पेट भरने का जुगाड करने के लिए इस स्वार्थी दुनिया में लोहा लेना पडता है, वह अपने शोषकों से प्रेम कैसे करे ? और यह सब भगवान ने रचाया है तो वह कैसे भगवान में कैसे आस्था रखे ? .....मोक्ष.....मोक्ष.....मोक्ष सारे धर्मशास्त्र उसी की प्राप्ति की दुहाई देते हैं पर यदि भगवान ने मोक्ष की

---

200. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 482

201. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 318

प्राप्ति ही व्यक्ति का चरम ध्येय बनाया है तो उसने यह दुनिया बनायी ही क्यों, आवगमन का चक्कर चलाया ही क्यों ?"[202]

इस वैज्ञानिक युग का मानव धार्मिक अन्धविश्वासों, रूढियों और आडंबरों में विश्वास नहीं रखता है । वह कहीं कहीं इसका खुलकर विरोध करता है । अब उसको उन पुराने रीति-रस्मों पर विश्वास रखना मुश्किल-सा हो गया है । अपने समाज में व्याप्त पुराने झूठे रीति-रस्मों का "गिरती दीवारें" का चेतन यों विरोध करता है "क्या कभी ऐसा समाज न बनेगा जो इन रस्मों से आज़ाद हो या जहाँ ये रस्में देखें सुनें अनुभव करें और समय के अनुसार अपना चोला बदलती रहे ।"[203] "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन में भी यह प्रवृत्ति द्रष्टव्य है । जब चेतन की भाभी चम्पावती क्षयरोग से ग्रस्त हो जाती है उसका पति रामानन्द उस समय उसकी सेवा-शुश्रूषा करने के बदले यह कहकर उससे बचता है कि चम्पा की जन्म कुंडली में ऐसी ही लिखने के कारण उसकी स्थिति ऐसी हुई है । लेकिन चेतन इसका विरोध करता है "..... मेरा इन पत्रियों-वत्रियों में कोई विश्वास नहीं..... इन ज्योतिषियों की भविष्यद्वाणियाँ अँधेरे के तीर होती है और संयोग से निशान पर लगती है ।"[204]

इसी प्रकार "शहर में घूमता आईना" के शादी राम के द्वारा अश्क जी जोग साधना का भी विरोध करते हैं । पंडित लाला मणिराम के बेटे अमीरचन्द के बुरे कारनामों को देखकर शादीराम लाला मणिराम से पूछता

---

202. बाँधो न नाव इस ठाँव भाग । - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 59
203. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 676
204. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 301

है "क्या दाढी बढाये बिना ब्रह्म के दर्शन नहीं होते ..... आपकी यह साधना किस काम में आयेगी, यदि जो साला अपने खून से बने लडके को नहीं साध सकता वह ब्रह्म को क्या साधेगा, जो इस ज़िन्दगी का नहीं बना सकता, वह अगली ज़िन्दगी क्या बनायेगा ?"[205]

आज मानव की पाप-पुण्य संबन्धी विचारधारा भी बदल रही है । कोई भी कर्म को वह पाप या पुण्य नहीं मानता है उसके सारे कर्म के बारे में उसकी बुद्धि यह सोचती है कि वह पाप नहीं करता है और पुण्य भी । वह केवल वे कार्य करते हैं जो उसे करना पडता है । "एक नन्हीं किन्दील" के चेतन को एक समाचार पत्र में काम मिलने के लिए झूठ बोलना पडता है और उस पत्र का संपादक इस बहाने से उसे नौकरी नहीं देता है चेतन जानता है कि वह संपादक स्वयं कोई मूल्य को महत्व नहीं देनेवाला है । चेतन सच-झूठ की बातों में उलझ जाता है । वह सोचता है " शास्त्रों में लिखा है - सत्य मेव जयते - सत्य की जय होती है - कहाँ ? .... किस सत्य की जय होती है ? विजेता अपने पक्ष को सत्य का पक्ष बना लेते हैं ।"[206] अन्त में चेतन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है "ये सारे बुनियादी सच-झूठ रिलेटिव है । इजाफी है । एक फरीक का सच दूसरे का झूठ होता है और जो हार जाता है, वह ज़रूरी नहीं कि हमेशा झूठा हो । जीत जानेवाले हमेशा हकीकत को अपना सच साबित करने के लिए तोड-मरोड लेते है ।"[207]

---

205. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 453
206. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 270
207. एक नन्हीं किन्दील - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 275

जब व्यक्ति निराश हो जाता है तब उसे अपने धर्म द्वारा बनाये हुए सारे आदर्श खोखले दिखाई पड़ते हैं और वह अपनी निजी मान्यताओं पर पहुँचता है । "शहर में घूमता आईना" के चेतन को भी कर्मवाद की पुरानी मान्यतायें खोखली लगती है । वह मानता है कि यदि कर्म करने में आदमी निष्काम है तो हज़ारों, लाखों की हत्या वह कर सकता है झूठ, छलकपड, प्रवंच सबका उपयोग कर सकता है । वह सोचता है कि यदि आदमी इस जन्म में कुकर्म करता है और अगले जन्म में उसे इसका फल मिलने का भय है तो वह आत्महत्या कर पुर्नजन्म के दुश्चक्र को तोड सकता है और मुक्त हो सकता है । उसके मत में आदमी का ध्यान न पूर्वजन्म की ओर होना चाहिए या न आगामी जन्म की ओर वह जालंधरी मल जोगी से कहता है, "न्याय-अन्याय, सुख-दुख पुण्य-पाप, भले-बुरे की तुलना इन्सान ही करता है और मैं समझता हूँ कि इन्सान को पिछले या अगले जन्म की चिन्ता छोड इसी जन्म को बेहतर, सुखद न्यायपूर्ण, शान्त बनाने वाले नये धर्म को विकसित करना चाहिए ।"[208]

अश्क जी ने अपने उपन्यासों में वैयक्तिक मान्यताओं को समाज, धर्म, कर्मवाद और पाप-पुण्य की अवधारणाओं की पृष्ठभूमि में आँकने का प्रयास किया है । समूचे जीवन बोध को रूपायित करनेवाली दृष्टि वहाँ जन्म लेती है जहाँ व्यक्ति अपनी असफलताओं को व्याख्यायित करने में असमर्थ होता है । धर्म पर जन्म-पुनर्जन्म पर जीवन की विसंगतियों पर विचार करने के लिए वह बाध्य हो जाता है । अश्क के पात्र इस परिवेश में स्वतन्त्र चिन्तन के लिए मज़बूर होते हैं और उनके विचार सारगर्भित होकर दार्शनिक सूक्तियों का स्थान ग्रहण करते हैं ।

---

208. शहर में घूमता आईना - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 320

इस प्रकार अश्क जी के उपन्यासों में समकालीन भारतीय परिवेश का और मूल्यात्मक विघटन का विशद चित्रण मिलता है । अपने उपन्यासों में उन्होंने मानव के वर्ग बोध तथा गाँधीवाद की सारहीनता का विवेचनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है । मध्यवर्गीय जीवन और उसके संघर्ष ही उनकी रचनाओं का केन्द्र विषय है । अश्क जी का विचार है कि आज नहीं तो कल युग बदलनेवाला है तो क्यों न हम समय रहते ही अपने को समाज और परिस्थिति के अनुसार बदलें । इस विचार से प्रेरित होकर अपनी रचनाओं में वे निरन्तर पुराने सामन्ती मूल्यों को उपहासात्मक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं और नये मूल्यों की प्राणवत्ता और सार्थकता को उभारते हैं ।

उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक प्रतिक्रिया और उसके विकासमान तथा परिवर्तनशील स्वरूपों का गंभीर अध्ययन-मनन किया है । उनके उपन्यासों में समकालीन यथार्थ के अर्थ एक सीमा तक खुलते दिखलाई देते हैं ।

सामाजिक मूल्यों का जो स्वरूप अश्क के उपन्यासों में उभरता है वह समय सापेक्ष परिवर्तन की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के आसपास के समाज को पृष्ठभूमि में रखकर उस काल की गरीबी बेरोज़गारी, और अशिक्षा की कहानी कहते हुए मूल्य परिवर्तन की दिशाओं का सही संकेत देने में अश्क जी एक सीमा तक सफल हुए है । यद्यपि परिवर्तन की दिशाएँ पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हो रही है फिर भी कुछ ऐसी रेखाएँ व्यक्त होती है जिनके अन्दर मूल्य अपना नया अर्थ ढूँढ रहे हैं । लेखकीय दायित्व का रंग मूल्य और सामाजिक स्थितियों के साथ जुडकर पाठक को नया दिशा बोध देता है ।

अध्याय - 4

मूल्य - समाज और लेखकीय दृष्टि

समसामयिक भारतीय समाज - अश्कजी के उपन्यासों के संदर्भ में

अश्कजी के अधिकांश उपन्यासों का घटनाकाल 1935 के बाद का समय है । उनके कुछ उपन्यासों में स्वातन्त्र्योत्तर भारत का चित्रण भी मिलता है । अश्क जी के उपन्यासों से तत्कालीन भारत की पहचान हमें मिलती है । उनके उपन्यासों के सारे पात्र भारतीय है और इन उपन्यासों का परिवेश भी भारतीय परिवेश है । अश्क जी के उपन्यासों की कथावस्तु के विकास में तत्कालीन युग चेतना का महत्वपूर्ण योगदान है । अपनी अनुभूतियों को युग और उसकी समस्याओं के परिपार्श्व में रखकर ही वे उनका सफल चित्रण करते हैं ।

स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय समाज कुल मिलाकर एक अभावग्रस्त समाज था । इसका मुख्य कारण तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था, अविकास की स्थिति और बेरोज़गारी थी । अश्क जी के सारे के सारे उपन्यासों में बेरोज़गारी से पीड़ित युवा लोगों और उनकी मानसिकता का विशद निरूपण मिलता है । 'गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्हीं किन्दील', 'बाँधो न नाव इस ठाँव', 'पत्थर-अलपत्थर' इन सभी उपन्यासों में इस समस्या का चित्रण है ।

उस समय भारत में शोषण वृत्ति का भी बोलबाला था । एक ओर अंग्रेज़ शासक तत्कालीन गरीब, निरीह भारतीय जनता का शोषण कर रहे थे तो दूसरी ओर भारतीय शोषक वर्ग द्वारा यह कार्य पूर्ण हो रहा था ।

अश्क के प्रायः सभी उपन्यासों में नित नित नये नये शोषण के तरीकों को अपनाने वाले उच्च-मध्य वर्गीय लोगों की शोषण नीति का विशद चित्रण है ।

नारी की स्थिति के बारे में कहें तो तत्कालीन भारतीय नारी स्वतंत्र नहीं थी । वह घर की चारों दीवारों में बन्धनी थी । स्त्री-शिक्षा का प्रचलन नहीं था । घर में उसकी स्थिति दासी की जैसी थी । नारी लोगों को अपने पति के कामातुरता एवं क्रूरता का शिकार बनना पडता था । अशिक्षा के कारण नारी सभी प्रकार की रूढियों से घिरी हुई थी । वह अपने क्रूर पति को भी परमेश्वर मानने के लिए बाध्य थी । धर्म और समाज ने उसे अपने बन्धनों में जकडकर रखा था अश्क जी के अधिकांश उपन्यासों में तत्कालीन रूढिगत नारी का यथातथ्य निरूपण भी द्रष्टव्य है ।

अश्क जी के उपन्यासों में चित्रित तत्कालीन भारतीय समाज आर्थिक विपन्नताओं से बुरी तरह घिरा हुआ है । तत्कालीन मध्यवर्गीय लोगों का जीवन बहुत कष्ट पूर्ण था । वे यही चाहते थे कि थोडा अधिक पढ लिखकर वे भी समाज का आदर-सम्मान प्राप्त करें । उनके मन में उच्च वर्ग के बनने की प्रबल आकांक्षा थी । लेकिन आर्थिक अभाव के कारण उनके जीवन में कोई भी गति नहीं दिखाई पडती थी । उनकी सारी समस्याओं का मूल कारण यही आर्थिक विषमताएँ हैं । निम्न-मध्य वर्गीय युवा के आर्थिक अभाव की स्थिति उनके वैवाहिक जीवन में भी बाधा उत्पन्न करती थी । आर्थिक समस्याओं के कारण कई युवा-युवती लोग वैवाहिक जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे ।

तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित परंपरागत रूढियों का विशद आंकन अश्क जी के उपन्यास में मिलता है । उस काल में प्रेम विवाह,

अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह स्वीकार्य नहीं थे । अनमेल विवाह का भी प्रचलन था । पारिवारिक जीवन भी टूटने की स्थिति में थे । पति-पत्नी संबन्धों के बीच दरारें पड रही थी । इनके बच्चे किसी भी पथप्रदर्शन के अभाव के कारण अनियंत्रित जीवन बिता रहे थे । युवा लोग ही नहीं विधवा स्त्रियाँ भी अनैतिक जीवन बिता रही थी और वे कोई न कोई रोगों का शिकार बनकर स्वयं को नष्ट कर रही थी ।

अश्कजी के उपन्यासों में चित्रित तत्कालीन समाज की धार्मिक परिस्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी । धर्म के नाम पर भी शोषण की वृत्ति मौजूद थी । तत्कालीन धर्म में परंपरागत रूढियों, अन्धविश्वासों एवं बाह्याडंबरों का प्रचलन था । एक ही धर्म की विभिन्न जातियों के बीच शत्रुता की भावना दिन प्रतिदिन बढ रही थी । अश्क जी के उपन्यासों में तत्कालीन हिन्दु-मुस्लिम संघर्ष का एकाध चित्रण भी मिलता है ।

तत्कालीन भारतीय राजनैतिज्ञों के कुरूप चेहरों को भी अश्क जी हमारे सामने ला खडा करते हैं । "शहर में घूमता आईना", "बडी बडी आँखें" जैसे उपन्यासों में ऐसा चित्रण मिलता है । "बडी बडी आँखें" में स्वातन्त्र्योत्तर समाज में दिखाई पडनेवाली सर्वोदयी संस्थाओं के खोखलेपन को नंगा करके वे हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं और समझाते हैं कि हमारे जन नेता एवं समाज सुधारक लोक कल्याण के व्रत को लेकर बैठते हैं लेकिन उनका वेष छद्म है । भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तथा तत्कालीन सामाजिक जनक्रान्तियों का सम्यक परिचय भी उनके उपन्यासों में मिलता है ।

इस प्रकार अश्क जी के उपन्यासों में एक ऐसा समाज चारों

ओर फैला पडा है जिसमें हर आदमी टूटने को अभिशप्त है । समाज के दुखी, निरीह सतत सताये जानेवाले पात्रों की बेबसी एवं निरीहता को वे हमारे सामने स्पष्ट कर देते है । देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप दृष्टिगत राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के साथ जनजीवन के बाह्य एवं आन्तरिक रूप का यथार्थ चित्रण अश्क के उपन्यासों में मिलता है । उनकी कृतियाँ सामाजिक अनुभवों से पूर्ण हैं क्योंकि वे तत्कालीन वातावरण से अत्यधिक प्रभावित है ।

वैसे समाज शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो साहित्य का समकालीन जीवन बोध से संबद्ध होना अनिवार्य है । लेखक अपनी संवेदनाओं को अनुभवों के आधार पर रूपायित करता है और अनुभव यथार्थ के स्तर से जुडे रहते हैं । अश्क के उपन्यासों में प्रतिबिंबित समाज एक सीमा तक उनके वैयक्तिक अनुभवों से जुडा हुआ है । हो सकता है कि उन्होंने उसकी गहराई तक जाने का प्रयास नहीं किया है । फिर भी ऊपरी दृष्टि से देखने पर समाज की कुरूपताओं की तस्वीर आर्थिक सीमाबद्धता से जुडकर उभरती है । मध्यवर्गीय समाज के नाम पर जिस समूह को उन्होंने प्रस्तुत किया है वह संपूर्ण रूप से भारतीय मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करता । अधिकांश पात्र निम्न-मध्यवर्ग के हैं जिनकी सबसे प्रमुख समस्या रोज़ी रोटी की रही है । उसके बाद आनेवाली यौन समस्यायें आक्रोश की सीमा तक न पहूँचकर दबी हुई कुंठाओं का रूप धारण कर लेती है और यह कुंठा निराशाग्रस्त मनस्थिति को जन्म देती है । काल की सापेक्षिकता की दृष्टि से देखने पर पात्रों का यह आचरण स्वाभाविक लगता है क्योंकि मूल्यों को तिरस्कृत कर वैधता को चुनौती देकर काम-वासना की पूर्ति करने की हिम्मत और शक्ति उस काल के समाज में नहीं थी क्योंकि समय उसके अनुकूल नहीं था । वैयक्तिक अनुभवों का समर्थन, भोगा हुआ यथार्थ का प्रस्तुतीकरण, मूल्य तिरस्कार

की स्थिति का समर्थन आदि अश्क के तत्कालीन समाज में नहीं दिखाई पडती, फिर भी ऐसी स्थितियों पर विशेष ध्यान देने की रुचि अश्क में निहित है । इस कारण अश्क के उपन्यासों में प्रतिबिंबित होनेवाला समाज एक कटा-सा समाज है जो आर्थिक विपन्नता, रोटी की समस्या, निम्न-मध्यवर्ग की विवशता आदि स्थूल सत्यों का उद्घाटन करता है ।

वैसे पात्रों की मानसिक द्वन्द्वात्मकता पर, मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन पर अश्क ने अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया है । व्यक्ति के अन्तर्मन का विशद विश्लेषण प्रस्तुत करनेवाली परिस्थितियों का चित्रण उपन्यासों में प्रभावात्मक ढंग से नहीं हुआ है । घटनाओं के प्रवाह में, रोमांचकारी स्थितियों के प्रदर्शन में पडे रहनेवाले उपन्यासकार को मानसिक पीडा की गहराईयों को छूने का अवसर नहीं मिला है । समाज के अन्तर्विरोधों को बाहरी दृष्टि से देखते समय उपन्यासकार अन्तर्मन की व्यथाओं को ज़्यादातर अनदेखा कर देते हैं । "गिरती दीवारें " को छोडकर अन्य उपन्यासों में कहीं भी मानसिक पीडा की अन्तर्धारा प्रभावात्मक नहीं हो पाती है । अश्क पुरानी परंपरा का अनुसरण करते हुए रचना धर्मिता को समाज सापेक्ष बनाते हुए मूल्यों को बरकरार रखते हुए आगे बढना चाहते हैं यद्यपि उन्हें मालूम है कि मूल्य अब बरकरार नहीं रहेगी । इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक दृष्टि उपन्यासकार की विवशता का बोधक बन जाती हैं । जहाँ वह समाज को नियमबद्ध बनाये रखना चाहता है और खुद यह जानता है कि उसका सपना सफल नहीं हो सकता । इस कारण मूल्य परिवर्तन की स्थितियों की ओर, समाज के झुकाव की ओर परोक्ष रूप से वे सूचनाएँ देते हैं, और कहीं कहीं यह सूचनाएँ प्रत्यक्ष रूप को धारण कर लेते हैं ।

संक्षेप में अश्क ने एक ऐसे समाज को उपन्यासों के माध्यम से

हमारे सामने प्रस्तुत किया है जो अभावग्रस्त है, पीड़ित है, जर्जर है रूढ़िगत है, अस्वतन्त्र है और नियमों को तोड़ने के लिए बाध्य है । ऐसी स्थिति में आगे की दृष्टि का निर्धारण करने का दायित्व वे युवा-पीढ़ी के लोगों पर छोड़ देते हैं जो बिलकुल सार्थक लगता है । वस्तुतः समाज शास्त्रीय दृष्टि से और एक सफल अध्येता की दृष्टि से अश्क ने समाज की सच्चाई को काल सापेक्षता की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करके अपने दायित्व को भली भाँति निभाया है ।

अश्क के उपन्यासों में परिवर्तन की सूचनाएँ

मूल्य परंपरागत मान्यता के स्वरूप को लेकर उपस्थित होता है जबकि समाज उसके यथार्थ पक्ष को प्रस्तुत करता है और लेखकीय दृष्टि रचनात्मकता के स्तर पर उस यथार्थ का मूल्यांकन करती है । समाज का ढाँचा एक सीमा तक मूल्यों पर प्रतिष्ठित रहता है और मूल्य परंपरागत मान्यताएँ और सम-सामयिक आवश्यकताएँ दोनों के बीच से गुज़रकर अपना स्वरूप निर्धारित करते हैं । ऐसी स्थिति में मूल्य कभी कभी आदर्शात्मक सीमा रेखाओं से जुड़ते हैं और यह आदर्श समसामयिकता से टक्कर लेकर या तो परिवर्तित होते हैं या संपूर्ण रूप से तिरस्कृत हो जाते हैं । समाज की यथार्थ स्थिति मूल्य और सामाजिक सत्य के घात-प्रतिघातों से जन्म लेती है । इस कारण सामाजिक यथार्थ मूल्य निष्ठता पर संपूर्ण रूप से स्थिर नहीं हो सकता क्योंकि ऐसे कई विरोधी तत्वों का समन्वय समाज में होता है, जो मूल्य प्रतिष्ठा की आदर्शात्मकता का भंग कर देता है 1 उधर समाज की इस विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए रचनाकार अपने पात्रों को आयामित करने के लिए बाध्य हो जाता है ।

अश्क ने यथार्थ के उस स्वरूप को आंकने का प्रयास किया है

जो प्राचीन मूल्य के सांगत्य पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं । वैसे अश्क का रचनाकाल वह संधिकाल है जहाँ प्राचीन मूल्य अपनी प्रासंगिकता को नष्ट कर रहे थे और नये मूल्यों का विकास धीमी गति से हो रहा था । संधिकालीन रचना होने के कारण, पूर्ण रूप से किसी एक पक्ष का समर्थन असंभव था । समाज की रूढिगत स्थितियों की अप्रासंगिकता को पूर्ण रूप से समझते हुए भी उनका डटकर विरोध करना लेखकीय शक्ति के बाहर की बात रही है । इस कारण अश्क ने बडी ही सूक्ष्मता के साथ अपने दायित्व को निभाने का प्रयास किया है । अश्क के सामने एक ऐसा समाज था जो आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के चित्रण के काबिल नहीं था । लेकिन एक ऐसा स्वरूप उसमें झलकता था जो परिवर्तन के काबिल था । इस कारण अश्क के प्रमुख उपन्यास "गिरती दीवारें', 'शहर में घूमता आईना', "निमिषा' जैसे उपन्यासों में समाज के प्रति लेखकीय दृष्टि अधिक सजग दिखाई पडती है ।

पात्रों के माध्यम से जिस समाज का अंकन अश्क ने किया है वह तत्कालीन समाज की जीवन्तता का स्वरूप उपस्थित करते हुए पाठक के सामने बुनियादी सवालों को खडा कर देता है । ये सवाल व्यक्ति की नैतिक अवधारणाओं से जुडते हैं और समसामयिक समस्याओं की जडों तक पहुँचने की कोशिश करते हैं । उदाहरण के रूप में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की ज़िन्दगी को प्रस्तुत करते समय और उनकी समस्याओं का उद्घाटन करते समय लेखक का यह दृष्टिकोण रहा है कि आर्थिक विषमता के कारण निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों के व्यक्तियों की मानसिकता पंगु हो गयी है सभी प्रकार के अपराधों का और कुंठाओं का वह समाज शिकार बन गया है । निम्न-मध्यवर्ग की स्थिति का जो जायज़ा उन्होंने प्रस्तुत किया है वह एक सीमा तक यथार्थपूर्ण लगता है । "गिरती दीवारें" का चेतन "गर्मराख" का जगमोहन आदि इसके सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । अश्क की यह दृष्टि इस सत्य का उद्घाटन करती हुई यह कहती है कि आर्थिक

परेशानियाँ व्यक्ति की मानसिकता को विकृत बना देती हैं और समाज में अनेक समस्याओं को जन्म देती है ।

दूसरी ओर स्त्री और उसके अस्तित्व से संबन्धित कई सवालों को अश्क ने बुनियादी तौर पर उठाने का प्रयास किया है । अशिक्षित और पीडित नारी समाज के लिए अभिशाप ही है । जब तक समाज इनका उद्धार नहीं करता तब तक जनकल्याण की संभावना नहीं हो सकती । "गिरती दीवारें" की लाजवती, "निर्मिषा" की माला आदि इसके उदाहरण प्रस्तुत करती है जबकि "गिरती दीवारें" की नीला सारी बातों को जानकर भी अनजान रहती है क्योंकि उसमें संघर्ष करने की क्षमता नहीं । एक सीमा तक स्त्रियों की इस दुर्गति के लिए अश्क ने पुरुषों को जिम्मेदार ठहराया है ।

उसी प्रकार शोषण की समस्या को भी सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास अश्क ने किया है । शोषण अर्थ के स्तर पर सेक्स के स्तर पर और प्रतिभा के स्तर पर होता है । इस सामाजिक सत्य का उद्घाटन "गिरती दीवारें" का कविराज रामदास, "बडी बडी आँखें" का देवाजी, "पत्थर-अलपत्थर" का खन्ना साहब, "एक नन्हीं किन्दील" का संपादक वर्ग, "गिरती दीवारें" का शादीराम आदि करते हैं ।

"शहर में घूमतर आईना" गलियों से, नुक्कडों से घूमता हुआ यथार्थ की उस जीती-जागती तस्वीर को प्रस्तुत करता है, जहाँ समसामयिक सत्य का प्राथमिक स्वरूप अपनी भयानकता को दिखाता है । गलियाँ और गलियों में घूमनेवाले चेहरे आईने के अन्तर इस तरह प्रतिबिंबित होते हैं कि सामाजिक

सत्य समसामयिक संदर्भों से जुडता हुआ अपने विकृत स्वरूप को दिखाने लगता है । यह विकृति मानवीय चरित्र की विकृति है जो समय की चपेटों को सहकर अपनी स्वाभाविकता को नष्ट कर बैठी है । गुण्डे, राजनैतिक नेता, समाज को धोखा देनेवाले व्यक्ति, अर्थ के आधार पर अपने को उच्च स्थापित करनेवाले लोग मुखौटे लगाकर घूमनेवाले लोग, भूख और गरीबी से पीडित कंकाल, बेरोजगारी के शिकार युवालोग, मानसिक संघर्षों के कारण संतुलन खो बैठने वाले पागल आदि इस आईने में दिखाई पडते हैं ।

वस्तुतः अश्क यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यह एक ऐसा अजायब घर है जहाँ के लोग आर्थिक विपन्नता एवं सामाजिक विषमताओं के कारण पागल बनते जा रहे हैं । ऐसे पागलों को अपने शिकार बनानेवाले शोषक वर्ग की भी स्थिति का बडा ही प्रभावात्मक चित्रण इस उपन्यास में मिलता है ।

अश्क की लेखनी दायित्वपूर्ण रचना की सीमारेखाओं से आबद्ध लगती है । लेखन को जिम्मेदारी और सोद्देश्य परकता से जोडने में अश्क किसी के पीछे नहीं है । अश्क ने कहा है - "मैं सदा इस बात की कोशिश करता हूँ कि अपनी अनुभूतियों की सच्चाई और खरेपन तथा कला और शिल्प की सौष्ठता के साथ अपने वर्ग और समाज का चित्रण करूँ - समाज के हित और कल्याण के लिए ।"[209] "सितारों के खेल" से लेकर "निमिषा" तक के उपन्यासों पर विचार करने से लगता है कि समाज के स्वरूप को रेखांकित करते समय उनमें परिवर्तन लाने की दृष्टि हमेशा प्रवर्तमान होती रही है । समाज की रूढियों, उसकी विषमताएँ, अर्थ संबन्धी समस्यायें, परिवार की उलझनें नारी की समस्यायें आदि पर बडी ही पैनी दृष्टि से अश्क ने विचार किया है । स्थितियों में अतिशयोक्ति भले ही मिल जाय कथ्य

---

209. ज़्यादा अपनी - कम परायी - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 75

भले ही अविश्वसनीय बन जाय लेकिन अन्तिम रूप में जिस बात को लेखक समझाना चाहते हैं वह दायित्व बोध से लदा हुआ ठहरता है । परोक्ष रूप में अश्क ने समाज के सही स्वरूप को प्रस्तुत कर परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर किया है । उन्होंने लिखा है - "साधारण जन रूढिवादी है । ..... उसका {साहित्यकार} का कर्तव्य है कि उन्हें {रूढियों को} तोडे और बेहत्तर जीवन का निर्देश दे।यह न कर सके तो उन रूढियों की व्यर्थता की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करें, ताकि बदलाने वाले उन्हें बदले, नये नियम बने ।"[210]

अश्क की प्रतिबद्धता एवं लेखकीय दृष्टि

प्रतिबद्धता की दृष्टि से विचार करें तो अश्क की रचनाएँ एक ऐसे लेखन की तस्वीर प्रस्तुत करती हैं जो स्पष्टतया सामाजिक प्रतिबद्धता से जुडा हुआ है । "शहर में घूमता आईना" एक ऐसा उदाहरण है जिसमें समसामयिक जीवन बोध के परिवर्तनात्मक दृश्य संपूर्ण रूप से झलक उठते हैं । मूल्य बोध, शोषण की स्थिति और सामाजिक चेतना में आये हुए परिवर्तन, रूढिगत ह्रासोन्मुख परंपरा के स्वरूप आदि को सूचित करनेवाले दृश्य प्रतिबद्धात्मक लेखन के श्रेष्ठतम उदाहरण है । इन्हीं उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए अश्क की रचना दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता की ओर ज़ोर देती है । लेखकीय दृष्टि की सीमाएँ वहाँ प्रकट होती है जहाँ साठोत्तरी रचना की स्थितियाँ और भी कडे परिवर्तन की ओर मूल्य निषेध की संभावनाओं को उजागर करती हैं । अश्क और नयी पीढी के बीच यह अन्तर दिखाई पडता है कि नयी पीढी मूल्यों की सम्पूर्ण नकारात्मकता को स्वीकारती है जबकि अश्क आंशिक विरोध ही प्रकट कर पाते हैं । वे सिर्फ

---

210. हिन्दी कहानियाँ और फैशन - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ.124

समस्याओं को ही सामने लाते हैं उसका हल प्रस्तुत नहीं करते हैं और रूढिवादिता तथा शोषण के खिलाफ क्रान्ति नहीं मचाते हैं इसका कारण यह है कि अश्क लेखक को पर्दे के पीछे ही रखना चाहता है । वे कहते हैं "जो कुछ कहा जाए वह पात्रों के माध्यम से कहा जाए । लेखक जहाँ तक संभव हो स्वयं उसमें न कूदें न जल्स में पडे न भाषण झाडे"[211] जो भी हो मध्यवर्ग की विविध समस्याओं को इस तरह उठाकर उनकी कुरीतियों और बुराईयों का विशद चित्रण करके पाठक के मन में उन बुराईयों को दूर करने की प्रबल इच्छा जगाना उनका लक्ष्य है । नयी पीढी और अश्क के बीच दृष्टिकोण का अंतर पीढ्गित और रचनागत अन्तराल के कारण ही प्रकट होता है ।

इस प्रकार उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी रचनाधर्मिता को प्रतिबद्धात्मक क्षितिजों से जोडकर एक ऐसे इन्द्रधनुषी प्रभाव की सृष्टि की है जिसकी गहराई में मानवीय संवेदना के सातों रंग इस तरह विलीन हो जाते हैं कि उनको ढूँढने के लिए पाठक को पुनः उस क्षितिज की ओर देखना पडता है जहाँ परंपरा, विश्वास मूल्यबोध और परिवर्तन एक दूसरे से गले मिलते हैं ।

अश्क की रचना दृष्टि सीमाएँ और संभावनाएँ

अश्क की रचना दृष्टि की सबसे बडी कमी उनके उपन्यासों की विवरणात्मकता है । घटनाओं में विविधता ज़रूर है लेकिन उनके उपन्यासों में ऐसे अनेक प्रसंग बीच बीच में आये हैं जो कथा के विकास के लिए सहायक नहीं है और इन अनावश्यक प्रसंगों के कारण पाठकों के हाथों से बीच बीच कथा सूत्र

---

211. गिरती दीवारें - उपेन्द्रनाथ अश्क - भूमिका, पृ. 22

छूट जाता है । उनके उपन्यासों में अनेक स्थानों पर घटनाओं का आवर्तन हुआ है । कहीं कहीं विवरणात्मकता और फैलावट के कारण पाठक ऊब जाते हैं । छोटी छोटी घटनाओं से भरकर उन्होंने अपने उपन्यासों के चित्रपट को विस्तृत करने का प्रयास किया है । फिर भी वे उनमें गहराई नहीं ला पाते । कहीं कहीं कथा अविश्वसनीय-सी लगती है ।

अश्क जी के उपन्यासों में पात्रों की बहुसंख्यकता है इस कारण कई पात्र स्वाभाविकता से युक्त नहीं दिखाई पडते हैं । कथानक को आगे बढाने के लिए कई पात्रों का आयोजन कृत्रिम रूप से हुआ है । अश्क के पात्र सर्वत्र निर्णय लेने में असमर्थ दिखाई पडते हैं । ये पात्र कहीं कहीं उपन्यासकार के हाथों की पुतली मात्र रह जाते हैं । ऐसे स्थानों पर लेखक के वैयक्तिक विचार उनकी रचना प्रक्रिया से मेल नहीं खाते । कृपया टिप्पणी 211 देखिए । "सितारों के खेल" और "पत्थर - अलपत्थर" के सिवा अश्क जी के अधिकांश उपन्यास एक ही ढाँचे में ढले जैसे दिखाई पडते हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में भोगा हुआ यथार्थ का चित्रण करने का दावा किया है । अन्य आलोचकों ने भी इस ओर संकेत किया है " अपने सभी उपन्यासों में वे (अश्क) स्वयं है, उनका परिवार है, संगी-साथी है, उनको अपने बचपन, शिक्षा-दीक्षा, विवाह, विवाह-विच्छेद, जीवन-संघर्ष आदि हू-ब-हू चित्रित है ।"[212] परन्तु अश्क जी का यह यथार्थ चित्रण सीमित दायरे के अन्तर जीवन के अनुभवों को बाँधकर रखने का प्रयास मात्र लगता है । विविधात्मकता का अभाव और चारित्रिक विशेषताओं की पुनरावृत्ति त्रुटियाँ बनकर उभरती है । इनका अन्तिम उपन्यास "निमिषा" आत्मकथात्मक लगता है । "पत्थर-अलपत्थर" के सिवा उनके अधिकांश उपन्यासों के परिवेश और स्थितियाँ हिन्दू समाज तक ही सीमित दिखाई पडती है इसलिए अपने उपन्यासों में राष्ट्र की मिली जुली संस्कृति का स्वरूप उभारने में वे एक सीमातक असमर्थ रहे हैं ।

---

212. उपन्यासकार अश्क - चन्द्रशेखर कर्ण - पृ. 88

लेखन की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यह कहना पडता है कि अश्क की दृष्टिगत और शैलीगत उपलब्धियाँ उनको प्रथम कोटि का उपन्यासकार नहीं बना पाती क्योंकि जीवन के प्रति जिस अन्तर्दृष्टि की जरूरत है उसका आंशिक प्रतिपादन ही उनकी रचनाओं में मिलता है । उपन्यासों को मनोरंजन के साधन के रूप में अधिक प्रमुखता प्रदान करना साहित्यिक स्तर को बनाये रखने में बाधक साबित होता है । अश्क के पाठक अधिकतर निम्न-मध्यवर्ग के या मध्यवर्ग के ही रहे हैं । ऐसे पाठकीय वर्ग को सामने रखकर रचना करने के कारण कथ्यात्मकता में समस्याओं का विधान अधूरी स्तर का रह गया है । जीवन के अन्य बहुस्तरीय पक्षों का और आधुनिक अवबोध का चयन करने में अश्क काफ़ी पीछे रह जाते हैं । उस दृष्टि से उनको आगामी पीढी की मनोकांक्षाओं का चित्रकार माना नहीं जा सकता । खेद की बात है कि 'गर्मराख' के हरीश को छोडकर इतने सारे उपन्यासों में कहीं भी परिवर्तन के लिए संघर्ष करनेवाले प्रगतिवादी पात्र दिखाई नहीं पडते । कल की ज़िन्दगी को, आगामी समाज को, राष्ट्र की बुनियादी स्वरूप को आंकने वाले पात्रों का अभाव उपन्यासकार की वैविध्यात्मक दृष्टि की और जागरूक चेतना की कमी का एहसास कराते हैं । शायद इसी कारण ही अश्क उन सफल उपन्यासकारों की पंक्ति में अग्रणीय नहीं हो पाते जिन्होंने देश और जीवन के सम्यक बोध को मानवीय स्तर पर उभारकर रखने का प्रयास किया था ।

वस्तुतः अश्क से उपर्युक्त बातों की प्रतीक्षा करना भी उचित नहीं लगता क्योंकि अश्क का रचनाकाल समाज को उन पाठकों की दृष्टि से देखना चाहता है जो बीती हुई पीढी के रहे हैं और जो अधिक सौम्य और कम तीव्र रहे है । कुल मिलाकर अश्क की रचना की सीमाएँ यह सूचित करती हैं कि उन्होंने आम आदमी के मनोरंजन के लिए ही अपनी रचना धर्मिता को

रूपायित किया था । इसलिए उनके उपन्यासों में बड़े बड़े दर्शनों के लिए वैचारिक संघर्ष के लिए, सामाजिक परिवर्तन की संभावना के लिए उचित स्थान देने की संभावना ही नहीं थी । इस कारण अश्क की रचना प्रक्रिया और लेखन की विशिष्टता एक सीमित आवर्तन चक्र के अन्दर घूमती दिखाई पड़ती है । उसके लिए उनका दोषी ठहराना भी उचित नहीं है । वस्तुतः अश्क के रचना के रंग, कैनवास और तूलिका एक दूसरे से इस तरह बंधे हुए है कि उन चित्रों में नयी अर्थवत्ता के आदर्शों की तलाश करना अन्वेषण की सीमारेखाओं को भंग करना होगा ।

उपसंहार

अश्क के उपन्यासों के समीक्षात्मक विवेचन के उपरान्त उनके सामाजिक मूल्यों की अवधारणा पर विचार करते समय निम्नलिखित निष्कर्षों की ओर बढना स्वाभाविक है ।

अश्क ने समसामयिक जीवन की विविधता को वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक प्रसंगों से जोडकर देखने का प्रयास किया है ।

अपनी रचना प्रक्रिया में व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के संबन्ध, उन संबन्धों को व्याख्यायित करनेवाला परिवेश उस परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले पात्र आदि के माध्यम से यह सूचित किया गया है कि समसामयिक मूल्य परंपरागत आदर्श निष्ठ मूल्यों से काफी दूर चले गये हैं । व्यक्ति की विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया को, उसकी आर्थिक स्थिति, परिवार की निम्नतम स्थिति, शिक्षा की कमी, रूढिवादिता, शोषण, स्वार्थता और मानसिक असन्तुलन आदि से जोडकर अश्क ने प्रस्तुत किया है । इस कारण मूल्यों का स्वरूप उपन्यासों में समसामयिक व्यवहार के आधार पर उभरता है ।

दूसरी ओर ये मूल्य जनजीवन की स्वाभाविकता को इसलिए भंग करते हैं कि व्यक्ति को अपनी प्राचीन मान्यताओं पर विश्वास नहीं । नारी अशिक्षा, रूढि, आर्थिक गुलामी, निर्णयहीनता और दिशाहीनता से आक्रान्त होकर इस तरह दबी पडी रहती है कि उसका कोई अस्तित्व ही नहीं । नारी को इस दयनीय स्थिति से मुक्ति दिलाना परोक्ष रूप में उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है ।

नारी के प्रति अश्क जी का दृष्टिकोण नया है । वे नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व चाहते हैं । अपने उपन्यासों में वे स्त्री शिक्षा पर भी ज़ोर देते हैं ।

अश्क जी के अनुसार आज सबसे प्रमुख तत्व अर्थ बन गया है । मूल्यों को परिवर्तित करने में अर्थ का बड़ा हाथ है । पारिवारिक संबन्धों एवं प्रेम संबन्धों का आधार भी अब अर्थ बन गया है ।

उसी प्रकार शोषण को आधार बनाकर एक नये मूल्य का उदय दिखाया गया है । शोषक सत्ता एवं अर्थ के बल पर मज़दूरों तथा स्त्रियों का ही नहीं बुद्धिजीवियों की प्रतिभा का भी शोषण कर रहे हैं ।

अश्कजी सामंतवादी परंपराओं और मान्यताओं का विरोध करते हैं । वे विचारों से प्रगतिशील हैं । वे समाज में दृष्टिगत ऐसी सभी स्थितियों एवं तत्वों का विरोध करना चाहते हैं जो समाज के विकास में बाधा पहुँचाते हैं । धर्म संबन्धी या नारी संबन्धी जो भी हो वे निरन्तर सभी पुराने सामन्ती मूल्यों का उपहास करते हैं और नये मूल्यों की ओर संकेत देते हैं, रूढियों तथा दूषित परंपराओं की व्यर्थता की घोषणा करते हैं ।

उधर पुरुष के जीवन की स्थितियों को नारीकेप्रेम, वासना, आर्थिक शोषण, भावोन्माद और अशिक्षा के संदर्भों से जोडकर उसकी मानसिकता को प्रस्तुत करने का भी प्रयास अश्क ने किया है । पुरुष के प्रपीडन से और अपने अनिर्णय से दुख भोगने के लिए मज़बूर की जानेवाली स्त्रियों की ज़िन्दगी की कई झलकें अश्क के उपन्यासों में प्राप्त होती है ।

जहाँ तक व्यक्ति और समाज के मूल्य संबन्धों की बात है अश्क ने यह स्वीकारा है कि व्यक्ति के सुधार से समष्टि का सुधार भी संभव है । उचित शिक्षा, आर्थिक आज़ादी आदि से स्त्री को युक्त करके पुरुष की समभागिनी बनाकर सामाजिक कुरीतियों का और शोषण का बडी सीमा तक निषेध किया जा सकता है जिससे मूल्यों की स्थिति में एक सीमा तक स्वस्थता लायी जा सकती है ।

इस प्रकार अश्क जी के उपन्यासों में रचनाकालीन यथार्थ को उजागर करने का प्रयास दृष्टिगत है । वे अपने उपन्यासों में यत्रतत्र रूढिवाद का विरोध करते हैं साथ साथ सामाजिक जीवन के उन्नयन करने वाले नये मूल्यों की ओर संकेत भी करते हैं । कुल मिलाकर स्वातन्त्र्योत्तरकालीन जीवन के प्रारंभिक स्वरूप में दिखाई पडनेवाले मूल्य परिवर्तन की स्थिति का बीज रूप, अश्क के उपन्यासों में विद्यमान है ।

प्रस्तुत शोधात्मक अध्ययन के अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि मूल्य-सापेक्षिकता के प्रति अश्क ने जागरूकता प्रदर्शित की है । मूल्यों के संबन्ध में अश्क की अवधारणा संधिकालीन सामाजिक चेतना के अनुकूल रूपायित हुई है । अति आधुनिकता के बोध से मुक्त एक सामाजिक परिवेश को प्रस्तुत कर उसी के बीच जीवन बितानेवाले लोगों की मूल्य परिकल्पना के बनते बिगडते ढाँचों को और उनकी छाया को अंकित करने में निस्संदेह अश्क सफल हुए हैं ।

सहायक ग्रंथ सूची

अश्क के उपन्यास

1. सितारों के खेल - नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1940
2. गिरती दीवारें - वही, प्र. सं. 1947
3. गर्मराख - वही, प्र. सं. 1952
4. बड़ी बड़ी आँखें - वही, प्र. सं. 1955
5. पत्थर-अल पत्थर - वही, प्र. सं. 1957
6. शहर में घूमता आईना - वही, प्र. सं. 1963
7. एक नन्हीं किन्दील - वही, प्र. सं. 1969
8. बाँधो न नाव इस ठाँव (भाग 1 व 11) - वही, प्र. सं. 1974
9. निमिषा - वही , प्र. सं. 1980

संदर्भ-ग्रंथ

10. उपन्यासकार अश्क - सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान
नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र. सं. 1960

11. उपन्यासकार अश्क - चन्द्रशेखर कर्ण
क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी
दिल्ली, प्र. सं. 1981

12. छठे दशक की हिन्दी कहानी - डॉ. अरूणा गुप्ता,
इन्द्रनाथ प्रकाशन,
दिल्ली, प्र. सं. 1989

13. ज्यादा अपनी कम परायी - उपेन्द्रनाथ अश्क,
नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र. सं. 1959

14. बदलते मूल्य और आधुनिक
हिन्दी नाटक - डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत,
मंथन पब्लिकेशन्स,
रोहतक, प्र. सं. 1983

15. साठोत्तर हिन्दी कहानी :
मूल्यों की तलाश डॉ. वसुदेव शर्मा,
सहयोग प्रकाशन
दिल्ली , प्र. सं. 1990

16. साहित्य मुखी - रामधारी सिंह दिनकर,
उदयाचल प्रकाशन,
राजेन्द्र नगर, प्र. सं. 1968

17. साहित्य और सामाजिक मूल्य - डॉ. हरदयाल
विभूति प्रकाशन,
दिल्ली, प्र. सं. 1985

18. साहित्य का समाजशास्त्र - डॉ. नगेन्द्र,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली, प्र. सं. 1982

19. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास:
मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी,
संधी प्रकाशन,
जयपुर, प्र. सं. 1974

20. स्वाधीनताकालीन हिन्दी
साहित्य में जीवन मूल्य - डॉ. रामगोपाल शर्मा दिनेश
रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशियल साइंसेज़
दिल्ली, सं. 1993

21. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य - डॉ. मोहिनी शर्मा,
साहित्यागार
जयपुर, सं. 1986

22. हिन्दी कहानियाँ और पैशन - उपेन्द्रनाथ अश्क,
नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र. सं. 1964

* अन्य संदर्भ ग्रंथ

23. अश्क एक रंगीन व्यक्तित्व - श्रीमती कौशल्या अश्क,
नीलाभ प्रकाशन,
इलाहाबाद, प्र. सं. 1961

24. अश्क का कथा साहित्य - डॉ. अहिबरन सिंह,
कौशिक साहित्य सदन,
दिल्ली, प्र. सं. 1974

25. अश्क के उपन्यास : कथ्य और शिल्प - डॉ. वीणापाणि,
क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी,
दिल्ली, प्र. सं. 1988

26. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना - डॉ. पीताम्बर सरोदे,
अतुल प्रकाशन,
कानपुर सं. 1987

27. उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ अश्क - डॉ. कुलदीप चन्द गुप्त,
पंचशील प्रकाशन,
जयपुर, प्र. सं. 1979

28. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासा में सामाजिक चेतना - डॉ. अमरसिंह जगराम लोधा,
अमर प्रकाशन,
दि. सं. 1985.

29. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास - भूपन सिंह भूपेन्द्र,
श्याम प्रकाशन,
जयपुर, प्र. सं. 1987

30. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - डॉ. पारूकान्त देसाई,
सूर्य प्रकाशन,
दिल्ली.

31. साहित्य मूल्य और प्रयोग - डॉ. वैजनाथ सिंहल
संजय प्रकाशन,
दिल्ली, प्र. सं. 1985

32. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियाँ - डॉ. भगीरथ बडोले,
स्मृति प्रकाशन,
प्र. सं. 1983 ई.

33. हम कहे आप कहो - डॉ. शुकदेव सिंह, डॉ. मोहन सपरा,
डॉ. रणबीर रांग्रा और
डॉ. राजेन्द्र होकी
सुबोध प्रकाशन,
प्र. सं. 1985

34. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र,
राजकमल प्रकाशन,
दि. सं. 1982.

35. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डॉ. त्रिभुवन सिंह,
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
च. सं. रामनवमी 2022 वि.

36. हिन्दी उपन्यास में व्यक्तिवादी चेतना - डॉ. एन. केजोसफ
जवाहर पुस्तकालय,
मथुरा (यू. पी.),
प्र. सं. 1989

37. हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोलनों का प्रभाव - डॉ. पी. के. पद्मजा, पंकज पब्लिकेशन्स, गाजियाबाद, प्र. सं. 1986

38. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया, अमित प्रकाशन, प्र. सं. 1973

39. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - डॉ. खेलचन्द आनन्द, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1978

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना - जनवरी, मार्च 1973.
2. नया प्रतीक - फरवरी, 1977
3. भाषा - मार्च-जून, 1983.